पाठ्यक्रम समिति **BASL -101**

प्रो0 दामोदर राम त्रिपाठी,
गंगानाथ झा शोधपीठ,
संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रो0 एच0पी0 शुक्ल,
निदेशक, मानविकी
विद्याशाखा उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

प्रो0पुष्पा अवस्थी, संस्कृत विभाग
एस0एस0जे0परिसर,कुमॉऊ विश्वविद्यालय,
अल्मोड़ा

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक प्राध्यापक ,संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि 0, हल्द्वानी

डॉ0 ब्रजेश पाण्डेय,एसो0प्रो0
महिला डिग्री कालेज, हल्द्वानी

डॉ0 संगीता बाजपेयी,
अका0 एसोसिएट संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ0 गोपाल दत्त त्रिपाठी,
संस्कृत महाविद्यालय हल्द्वानी

मुख्य सम्पादक ,
डॉ0 योगेन्द्र कुमार ,
नेशनल पी0 जी0 कालेज ,
बड़हलगंज , गोरखपुर

सह सम्पादक ,
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक प्राध्यापक ,संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि 0, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**इकाई संख्या**
डॉ0 संगीता बाजपेयी, अका0 एसोसिएट संस्कृत विभाग उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी	1,2,13
डॉ0देवेश कुमार मिश्र **सहायक आचार्य ,संस्कृत विभाग** उ0मु0वि0वि0	4,10
डॉ0 ब्रजेश पाण्डेय,एसो0प्रो0 महिला डिग्री कालेज, हल्द्वानी	7,8,911,12
डॉ0 बिन्देश्वर मिश्र सरदार पटेल महावि0 ,हरैया बुजुर्ग ,कुशीनगर	3,5,6

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष : 2015

ISBN.***978-93-84632-30-4***

प्रकाशक: (उ0मु0वि0वि0)हल्द्वानी -263139

मुद्रक: उत्तरायण प्रकाशन हल्द्वानी

नोट - इस पुस्तक में लिखित सामग्री से सम्बद्ध अकादमिक समस्याओं का उत्तरदायित्व इकाई लेखक व पुस्तक सम्पादक का होगा। इस सामग्री का उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित प्रशासनिक अनुमति के बिना अन्यत्र कहीं नहीं किया जा सकता।

नाटक अलंकार एवं छन्द **BASL101**

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – अभिज्ञानशाकुन्तलम्	पृष्ठ 01
इकाई 1:नाट्य साहित्य का उद्भव एवं विकास कालिदास का जीवन वृत्त एवं उनकी काव्य प्रतिभा	2-16
इकाई2: अभिज्ञानशाकुन्तलम् - कथावस्तु, पात्रों का चरित्र चित्रण, ग्रन्थ का नाट्य, शास्त्रीय वैशिष्ट्य, पारिभाषिक शब्दावली	17 -33
इकाई 3:अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक ,मूलपाठ , अर्थ व्याख्या	34-66
इकाई 4:- अभिज्ञानशाकुन्तलम् द्वितीय एवं तृतीय अंक मूलपाठ , अर्थ व्याख्या	67-108
इकाई 5:अभिज्ञानशाकन्तलम् चतुर्थ अंक मूलपाठ , अर्थ व्याख्या	109-144
इकाई 6 :अभिज्ञानशाकुन्तलम् पंचम अंक , मूलपाठ , अर्थ व्याख्या	145-178
द्वितीय खण्ड -अलंकार, चन्द्रालोक पंचम मयूख	179
इकाई .7:अलंकारों का सामान्य परिचय	180-192
इकाई 8:अनुप्रास,श्लेष,यमक(लक्षणएवंउदाहरण)	193-204
इकाई 9:अपह्नुति,व्यतिरेक,विभावना (लक्षण एवं उदाहरण)	205-214
तृतीय खण्ड - अलंकार एवं छन्द	215
इकाई 10: उपमा,रूपक एवं उत्प्रेक्षा : विशेषोक्ति (लक्षण एवं उदाहरण)	216-231
इकाई 11,अतिशयोक्ति, निदर्शना तुल्ययोगिता,अर्थापत्ति, (लक्षण एवं उदाहरण)	232-248
इकाई 12:स्मृति ,भ्रान्ति , सन्देह, दृष्टान्त , अर्थान्तरन्यास (लक्षण एवं उदाहरण)	249-262
इकाई 13:छन्दों का लक्षण एवं उदाहरण	263-273

प्रथम खण्ड - अभिज्ञानशाकुन्तलम्

इकाई 1.नाट्य साहित्य का उद्भव एवं विकास, कालिदास का जीवन वृत्त एवं उनकी काव्य प्रतिभा

इकाई की रूपरेखा

1•1 प्रस्तावना
1•2 उद्देश्य
1•3 नाट्य शब्द का अर्थ
1•4 नाट्य साहित्य का उद्भव
1•4•1 उद्भव सम्बन्धी भारतीय मत
1•4•2 उद्भव सम्बन्धी पाश्चात्य मत
1•5 नाट्य साहित्य का विकास
1•6 कालिदास का जीवन वृत्त
1•6•1 स्थितिकाल
1•6•2 रचनाएं
1•7 कालिदास की काव्य प्रतिभा
1•8 सारांश
1•9 शब्दावली
1•10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1•11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1•12 उपयोगी पुस्तकें
1•13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत नाटक से सम्बन्धित यह प्रथम इकाई है। जैसा कि आपने पूर्व में अध्ययन किया है की साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य में आनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार होती है। इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक के नाम से जाना जाता है।

प्रस्तुत इकाई में आप यह जानेगें कि नाटक किसे कहते हैं। इसकी उत्पत्ति तथा विकास किस प्रकार हुआ। महाकवि कालिदास के जन्म, स्थितिकाल, उनकी रचनाओं तथा उनकी काव्यकला का अध्ययन करेगें।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेगें कि नाटक किसे कहते हैं। संस्कृत नाटकों का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ। महाकवि कालिदास का संस्कृत नाटकों में क्या योगदान है। नाटकों के द्वारा सहृदय सामाजिक को आनन्द की प्राप्ति होती जो मानव के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसकी उपयोगिता से परिचित करा सकेगें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेगें कि —

- नाटक किसे कहते हैं तथा इनका उद्भव किस प्रकार हुआ ?
- उद्भव से सम्बन्धित भारतीय एवं पाश्चात्य मतों को समझा पायेगें।
- यह बता सकेगें कि कालिदास का जन्म कब और कहां हुआ था ?
- कालिदास की रचनाओं के बारे में बता सकेगें।
- कालिदास की काव्यकला से परिचित होगें।

1.3 नाट्य शब्द का अर्थ

साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं - दृश्य काव्य ,श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य के द्वारा भावक किसी भी घटना या वस्तु का चाक्षुष ज्ञान ग्रहण करता है, किन्तु श्रव्य काव्य के द्वारा केवल श्रवण ही प्राप्त होता है। श्रव्य काव्य में आनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा इसी आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार रूप से होती है।

जिसका अभिनय किया जा सके उसे दृश्य काव्य कहते हैं 'दृश्यं तत्राभिनेयं'। इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक संज्ञा से भी जाना जाता है। रूपक शब्द की निष्पत्ति रूप धातु में ण्वुल प्रत्यय के योग

से होती है। ये दोनों ही शब्द साहित्य में ‘ नाट्य ’ के द्योतक है। नाट्यशास्त्र में ‘दशरूप’ शब्द का प्रयोग नाट्य की विधाओं के अर्थ में हुआ है । अब प्रश्न यह उठता है कि नाट्य क्या है ? दशरूपककार आचार्य धनंजय नाट्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं —‘ अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्’ अर्थात् अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं।

1.4 नाट्य साहित्य का उद्भव

संस्कृत रूपकों के उद्भव एवं विकास का प्रश्न भी नाम रूपात्मक जगत की सृष्टि के समान विवादास्पद है। अधिकांश विद्वानों का अभिमत है कि परमात्मा ने जिस प्रकार नामरूपात्मक जगत की सृष्टि की है उसी प्रकार नाट्य विद्या की भी नाट्य विद्या के सम्बन्ध में भारतीय तत्ववेत्ता मनीषी यह अवधारणा रखतें हैं कि इसकी उत्पत्ति के मूल में परमात्मा ही है। यहां हम भारतीय एवं पाश्चात्य मतों को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं —

1.4.1 उद्भव सम्बन्धी भारतीय मत

दैवीय उत्पत्ति सिद्धान्त

नाट्य विद्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शुभंकर ने अपने संगीत दामोदर में लिखा है कि एक समय देवराज इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे एक ऐसे वेद की रचना करें जिसके द्वारा सामान्य लोगों का भी मनोरंजन हो सके। इन्द्र की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने समाकर्षण कर नाट्य वेद की सृष्टि की। सर्वप्रथम देवाधिदेव शिव ने ब्रह्मा को इस नाट्य वेद की शिक्षा दी थी और ब्रह्मा ने भरतमुनि को और भरत मुनि ने मनुष्य लोक में इसका इसका प्रचार प्रसार किया। इस प्रकार शिव ,ब्रह्मा भरत मुनि नाट्य विद्या के प्रायोजक सिद्ध् होते हैं।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्यविद्या के उद्भव के सम्बन्ध में कहा है कि सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे जनसामान्य के मनोरंजन के लिए किसी ऐसी विधा की रचना करें। उनके इस कथन से ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गायन यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस ग्रहण करके इस नाट्य वेद नामक पंचम वेद की रचना की। दशरूपककार आचार्य धनंजय ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। भारतीय विद्वानों की यह मान्यता है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम इन्द्रध्वज महोत्सव के समय पर नाट्य का अभिनय हुआ था।

संवादसूक्त सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का विचार है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में संवाद प्राप्त होते हैं। यथा — ‘यम यमी संवाद’, पुरूरवा उर्वशी,शर्मा पाणि संवाद,इन्द्रमरूत, इन्द्र इन्द्राणी ,विश्वामित्र नदी आदि प्रमुख संवाद सूक्त है। यजुर्वेद में अभिनय सामवेद में संगीत और अथर्ववेद में रसों की

संस्थिति है। इन्हीं तत्वों से धीरे धीरे रूपको का विकास हुआ।

1•4•2 उद्भव सम्बन्धी पाश्चात्य मत —

संस्कृत नाटकों के उद्भव के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों के मत इस प्रकार है।

वीरपूजा सिद्धान्त

पाश्चात्य विद्वान डा0 रिजवे का मत है कि रूपकों के उद्भव में वीर पूजा का भाव मूल कारण है। दिवंगत वीर पुरूषों के प्रति समादर का भाव प्रकट करने की रीति ग्रीस, भारत आदि देशों में अत्यधिक प्राचीन काल से है।दिवंगत आत्माओं की प्रसन्नता के लिए उस समय रूपकों का अभिनय हुआ करता था। परन्तु डा0 रिजवे के इस सिद्धान्त से विद्वान सहमत नहीं हैं।

प्रकृति परिवर्तन सिद्धान्त

डा0 कीथ के मतानुसार प्राकृतिक परिवर्तन को मूर्त रूप में देखने की स्पृहा ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया। इसके प्रबल समर्थक डा0 कीथ प्रकृति परिवर्तन से नाटक की उत्पत्ति को स्वीकार करते हैं। ‘कंसवध’ नामक नाटक में हम इसके मूर्त रूप का दर्शन कर सकते हैं। परन्तु डा0 कीथ के इस मत को भी विद्वानों का समर्थन प्राप्त न हो सका।

पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त

जर्मनी के प्रसिद्ध् विद्वान डा0 पिशेल संस्कृत नाटक का उद्भव पुत्तलिकाओं के नृत्य तथा अभिनय से मानते हैं। ‘सूत्रधार’ एवं स्थापक शब्दों का नाटक में प्रयोग हुआ है। इन शब्दों का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से है महाभारत, बाल रामायण ,कथासरित्सागर इत्यादि में दारूमयी , पुत्तलिका आदि शब्दों का प्रयोग इस मत को पुष्टता प्रदान करते हैं। परन्तु विद्वानों के मध्य यह मत भी सर्वमान्य न हो सका

छाया नाटक सिद्धान्त

छाया नाटकों से रूपक की उत्पत्ति एवं विकास का समर्थन करने वाले प्रसिद्ध् विद्वान डा0 ल्यूडर्स एवं स्टेन कोनो है। अपने मत के समर्थन में वे महाभाष्य को प्रगाढ रूप में प्रस्तुत करते हैं। महाभाष्य में शौभिक छाया नाटकों की छाया मूर्तियों के व्याख्याकार थे पर दूतांगद नामक छाया नाटक अधिक प्राचीन नही है। अत: इसे नाटकों की उत्पत्ति का मूलकारण मानना न्यायोचित नहीं। अत: विद्वानों का यह मत भी अधिक मान्य नहीं हुआ।

मेपोलनृत्य सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के समर्थक इन्द्रध्वज नामक महोत्सव को नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण स्वीकार

करते हैं। पाश्चात्य देशों में मई के महीने में लोग वसन्त की शोभा को देखकर एक लम्बा बाँस गाडकर उसके चारों तरफ उछलते कूदते एवं नाचते गाते हैं। यह इन्द्रध्वज जैसा ही महोत्सव है ऐसे ही उत्सवों से शनै: शनै: नाटक की उत्पत्ति हुई। परन्तु दोनो महोत्सवों के समय में पर्याप्त अन्तर है तथा इनके स्वरूप में भी परस्पर भिन्नता है अत: यह सिद्धान्त भी सर्वमान्य नहीं है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ विद्वान लोकप्रिय स्वांग सिद्धान्त तथा वैदिक अनुष्ठान सिद्धान्त को भी रूपकों की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। किन्तु विद्वान इस मत से भी सहमत नहीं हैं। विद्वानों के उपर्युक्त मतों के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचंते हैं कि रूपकों के उद्भव का विषय अत्यन्त विवादास्पद है। प्राचीन भारतीय परम्परा नाट्यवेद का रचयिता ब्रह्मा को इंगित करती है और लोक प्रचारक के रूप में भरतमुनि को निर्दिष्ट करती है। आधुनिक विद्वान इससे भिन्न मत रखते हैं य़द्यपि यह माना जा सकता है कि इन मतों में से कोई मत नाटक की उत्पत्ति का कारण हो सकता है परन्तु यह कहना अत्यन्त कठिन है कि अमुक मत ही नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण है।

1• 5 नाटक का विकास

ऋग्वेद से ही हमें नाट्य के अस्तित्व का पता चलने लगता है। सोम के विक्रय के समय यज्ञ में उपस्थित दर्शकों के मनोरजंन के लिए एक प्रकार का अभिनय होता था। ऋग्वेद के संवाद सूक्त भी नाटकीयता का द्योतन करते हैं। यजुर्वेद में 'शैलूष' शब्द का प्रयोग किया गया है जो नट (अभिनेता) वाची शब्द है। सामवेद में तो संगीत है ही। इस प्रकार नाटक के लिए आवश्यक तत्व गीत, नृत्य,वाद्य सभी का अस्तित्व वैदिक युग में था। यह निश्चित है कि भारतीय नाट्य परम्परा के उदगम के मूल ग्रंथ वेद ही है। आदिकाव्य रामायण में नाट्य तत्त्वों का उल्लेख हुआ है। महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत में भी नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि का स्पष्ट उल्लेख है। हरिवंशपुराण में उल्लेख हुआ है कि कोबेररम्भाभिसार नामक नाटक का अभिनय हुआ था जिसमें शूर रावण के रूप में और मनोवती ने रम्भा का रूप धारण कर रक्खा था। मार्कण्डेय पुराण में भी काव्य संलाप और गीत शब्द के साथ नाटक का भी प्रयोग हुआ है। संस्कृत भाषा के महान वैयाकरण महर्षि पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में नट सूत्रों का स्पष्ट उल्लेख किया है। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक नाटकों का उल्लेख करते हुए 'शोभनिक' शब्द का प्रयोग किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नट,नर्तक, गायक एवं कुशीलव शब्दों का प्रयोग हुआ है।भरतमुनि नाट्यशास्त्र के प्रमुख आचार्य माने गये हैं।

भरतमुनि ने सुप्रसिद्ध् 'नाट्यशास्त्र' की रचना की है। इसमें नाट्य से सम्बन्धित विषयों का विधिवत् विवेचन हुआ है। इन्होनें कोहल शाण्डिल्य, वात्सम, धूर्तिल आदि आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इनके समय तक अनेक नाटकों की रचना हो चुकी थी और

नाट्यकला का विधिवत् विकास हो चुका था। वेदों से लेकर भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत नाटकों की रचना पुरातन काल से होती चली आ रही है परन्तु परिष्कृत नाटकों की रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पूर्वाद्ध् में मानी जाती है। संस्कृत नाटकों में महाकवि भास के नाटक अत्यधिक प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए हैं। परिष्कृत रूपक रचनाओं में भास के रूपकों को प्राचीन माना जाता है।

भास के पश्चात् शूद्रक,कालिदास,अश्वघोष,हर्ष,भवभूति,विशाखादत्त,मुरारि,शक्तिभद्र, दामोदर मिश्र, राजशेखर, दिंगनाग, कृष्ण मिश्र, जयदेव, वत्सराज आदि आते हैं। इनके उच्चकोटि के नाटकों ने संस्कृत साहित्य की सम्यक् श्री वृद्धि की है।

अभ्यास प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. नाट्यशास्त्र के रचयिता का नाम लिखिए।
2. महाभारत के रचयिता का नाम लिखिए।
3. पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त किस विद्वान का मत है।
4. नाटक के उद्भव से सम्बन्धित कौन से दो मुख्य मत है।

1•6 कालिदास का जीवन वृत्त

संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास के जन्म स्थान,समय और जीवनवृत्त के विषय में अन्य कवियों की भांति निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। कुछ किंवदन्तियों तथा अनुमानों के आधार पर ही थोडा बहुत जाना जा सकता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रस्तावना तथा भरतवाक्य के आधार पर इतनी जानकारी तो अवश्य ही प्राप्त होती है कि ये विक्रमादित्य के राजकवि थे। महाकवि कालिदास के विषय में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध् है कि वे आरम्भ में इतने मूर्ख थे कि जिस डाल पर बैठे हुए थे उसी को काट रहे थे। कुछ पण्डित जो एक विदुषी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में पराजित हो गये थे वे पण्डित रूष्ट होकर धोखे से मूर्ख का विवाह उसी विदुषी विद्योत्तमा से करा देते हैं। एक दिन जब वह ऊँट को उट्र कहकर पुकारने लगे और प्रयत्न करने पर भी उष्ट्र न कह सके तब उनकी पत्नी ने उन्हें धक्का देकर घर से निकाल दिया। खिन्न होकर वह काली देवी के मन्दिर में गये ओर अपनी जीभ काट कर देवी पर चढा दी। माँ काली ने इन्हें सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान दिया और तभीसे यह कालिदास कहलायें। वहाँ से लौटकर अपने घर वापस आने पर इन्होने 'अनावृतं कपाटं द्वारं देहि' कह कर अपनी पत्नी से किवाड खुलवाये। विद्योत्तमा ने 'अस्ति कश्चित वाग्विशेष: ' कहकर इनका सम्मान किया। कालिदास ने अस्ति शब्द से 'अस्त्युत्तरस्याम् दिशि देवतात्मा ' कुमारसंभवम् ,कश्चित से 'कश्चितकान्ताविरहगुरूणां ' से मेघदूत और वाग्विशेष: से

'वागर्थाविव सम्पृक्तौं ' से रघुवंश महाकाव्य की रचना की। इनके वर्णनों से ज्ञात होता है कि इन्होनें दूर दूर तक भ्रमण किया था। प्रकृति से इन्हें विशेष लगाव था। ऐसा माना जाता है कि इनकी मृत्यु 50 वर्ष की अवस्था में सिंहलद्वीप में इनके मित्र कुमारदास की दरबारी वेश्या के द्वारा हुई थी। इसी प्रकार इनके जन्म स्थान भी काश्मीर, बंगाल,विदर्भ तथा उज्जयिनी बतलाये जाते हैं किन्तु उज्जयिनी को ही इस महाकवि की जन्मभूमि कहलाने का गौरव हुआ है।

1•6•1 स्थितिकाल

महाकवि कालिदास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत है। इनका स्थितिकाल ईसा की छठी शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक माना जाता है। इसका विवरण निम्नलिखित है —

ईसा की छठी शताब्दी का मत

कालिदास ने अपने नाटकों में स्वयं को उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की राजसभा का कवि बतलाया है। किन्तु विक्रमादित्य नाम के कई राजा हुए हैं अत: कालिदास किस विक्रमादित्य के समय में हुए हैं यह एक विवादास्पद विषय है। डा0 फर्ग्युसन का मत है कि उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य ने 544 ई0 में शकों को पराजित करके विक्रम सम्वत् चलाया उन्होनें इस सम्वत् को प्राचीन बनाने के लिए इसका आरम्भ अपने समय से 600 वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा से 57 वर्ष पूर्व रखा। कालिदास इन्हीं विक्रमादित्य की सभा के कवि थे। इस मत को मानने वाले कहते हैं कि कालिदास के ग्रन्थों में शक, यवन और हूण आदि जातियों का उल्लेख है। हूणों ने भारत पर 500ई0 में आक्रमण किया था अत: कालिदास का समय ईसा की छठवीं शताब्दी है।

समीक्षा —

डा0 फर्ग्युसन के इस मत की पुष्टि में कि विक्रम सम्वत् को 600 वर्ष पूर्व चलाया इसमें कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शक,यवन और हूण आदि जातियों का वर्णन विदेशी आक्रमणकारियों के रूप में नहीं किया है बल्कि रघु की दिग्विजय के प्रसंग में ही किया है। अत: शकादि के आक्रमण से पूर्व भी उनका वर्णन न्यायोचित नहीं है। 473 ई0 में मन्दसौर की वत्स भट्टि द्वारा लिखित प्रशस्ति में ऋतुसंहार और मेघदूत की स्पष्ट झलक दिखाई पडती है अत: कालिदास इससे पूर्व के ही होगें।

गुप्तकालीन मत —

'कीथ' महोदय का मत है कि कालिदास गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (375— 413)की सभा के कवि थे। इन्हीं चन्द्रगुप्त ने शकों को भारत से बाहर निकाल कर विक्रमादित्य की उपाधि को धारण किया था और पहले से ही चले आने वाले मालव सम्वत् को विक्रमसम्वत् के नाम से चलाया

था। इस मत को मानने वालों के निम्न तर्क हैं —

कालिदास ने कुमार संभव महाकाव्य की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमार गुप्त के नाम को ध्यान में रख कर की थी। कालिदास के ग्रन्थों में वर्णित भारत की सुख समृद्धि गुप्तकाल की सुख समृद्धि से समानता रखती है। रघुवंश में वर्णित अश्वमेध यज्ञ का वर्णन समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ से समानता रखता है। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि कालिदास गुप्त काल में विशेषत: चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में हुए होगें।

समीक्षा

कालिदास ने कुमार संभव महाकाव्य में कुमार शब्द का प्रयोग कार्तिकेय के अर्थ में किया है। अत: इससे कुमारगुप्त का संकेत निकालना अनुचित है। रघु की दिग्विजय का वर्णन एक काल्पनिक कवित्वपूर्ण वर्णन है, ऐतिहासिक नहीं। किसी भी गुप्त सम्राट का नाम 'विक्रमादित्य'नहीं था यह केवल उनकी उपाधि मात्र थी। इससे सिद्ध है कि उनके पूर्व विक्रमादित्य नाम का अति प्रतापी राजा हुआ होगा और उसका नाम बाद में उपाधि के रूप में स्वीकार कर लिया गया होगा इस प्रकार यह मत भी उचित नहीं है।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का मत

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह बात सिद्ध हो चुकी है कि विक्रम की प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य नामक राजा उज्जयिनी का शासक था। अत: कालिदास इसी के समकालीन रहे होगें क्योंकि प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में महाकवि अश्व घोष की स्थिति सिद्ध होती है और उनके ऊपर कालिदास का प्रभाव है। अत: कालिदास का काल विक्रम की प्रथम शताब्दी में ही सिद्ध होता है। उक्त प्रमाण से स्पष्ट है कि कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही होना चाहिए।

1. 6. 2 रचनाएं

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रंगार है। कालिदास ने दो महाकाव्य , दो गीतिकाव्य तथा तीन नाटकों की रचना की। इस प्रकार इनकी कुल सात रचनाऐं हैं उनमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व प्रसिद्ध नाटक है।

महाकाव्य

कुमारसंभव तथा रघुवंश कालिदास के प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। कुमारसंभव में 18 सर्ग हैं किन्तु विद्वान 8 सर्गो को ही कालिदास द्वारा रचित मानते हैं। इसमें पार्वती जन्म, कामदहन , पार्वती तपस्या, शिव विवाह, कार्तिकेय जन्म आदि का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। **रघुवंश** महाकाव्य में19सर्ग हैं। इसमें दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का वर्णन है। यह उनका

सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

गीतिकाव्य

ऋतुसंहार तथा मेघदूत कवि के प्रसिद्ध् गीतिकाव्य हैं। ऋतुसंहार में षडऋतुओं का छः सर्गों में अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। प्रत्येक सर्ग में क्रमशः एक—एक ऋतुओं का वर्णन है। मेघदूत कालिदास का प्रसिद्ध् गीतिकाव्य है। इसमें कवि ने विरही यक्ष के द्वारा मेघ के माध्यम से अपनी प्रियतमा को भेजे गये सन्देश का वर्णन किया है। भौगोलिक वर्णन, प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण, तथा विरहिणी की मर्म व्यथाओं को देखकर मेघदूत को संस्कृत काव्य जगत का सर्वोत्तम गीतिकाव्य कहा जाता है। यह दूत काव्य की परम्परा का प्रवर्तक काव्य है।

नाटक

विक्रमोर्वशीयम् , मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास के प्रसिद्ध् रूपक हैं। कथावस्तु, चरित्र चित्रण , कथोपकथन , नाटकीय सन्धि तथा रसपरिपाक की दृष्टि से कालिदास केनाटकअद्वितीयहैंअभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व के सर्वोत्तम नाटकों में गिना जाता है। मालविकाग्निमित्रम् कालिदास का प्रथम नाटक है इसमें अग्निमित्र तथा मालविका की प्रणय कथा का पाँच अंको में वर्णन है। विक्रमोर्वशीयम् पाँच अंको का नाटक है। इसमें पुरूरवा तथा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् कवि का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें सात अंक है। इसके सात अंको में दुष्यन्त तथा शकुन्तला के मिलन , वियोग तथा पुर्नमिलन का सुन्दर वर्णन है।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1• कालिदास का समय ईसा पूर्व ——— शताब्दी है।

2• कालिदास की पत्नी का नाम ——— है।

3• रघुवंश ——— है।

4• विक्रमोर्वशीयम् ——— अंको का नाटक है।

5• अभिज्ञानशाकुन्तल का नायक ——— है।

6• मालविकाग्निमित्रम् कालिदास का ——— नाटक है।

7• मेघदूत ——— है।

8• ऋतुसंहार में ——— ऋतुओं का वर्णन किया गया है।

9• अभिज्ञानशाकुन्तलम् की नायिका ——— है।

10• अभिज्ञानशाकुन्तलम् में ——— अंक है।

1•7 कालिदास की काव्यकला

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रृंगार है। भाषा, भाव कल्पना तथा वर्णन के वैविध्य की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में उनके समान कोई कवि दिखाई नहीं देता। संस्कृत साहित्याकाश के वह दैदीप्यमान दिनमणि है। उनकी कविता कामिनी कला तथा भाव दोनों पक्षों से समलंकृत है।

महाकवि कालिदास की काव्यकला के सम्बन्ध में **आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन है कि ' कालिदास की शैली की एक उत्कृष्ट विशेषता यह है कि इसमें किसी भाव का बहुत लम्बा चौडा वर्णन न करके उसके सूक्ष्म तत्त्व की मार्मिक व्यंजना मात्र कर दी जाती है '।**

भाषा

महाकवि कालिदास की भाषा सरल, सरस तथा प्रसादगुणोपेत है। उन्होने अपनी भाषा में पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं किया है। उनकी भाषा की यह असाधारण विशेषता है कि वह जिस भाव को व्यक्त करना चाहते हैं भाषा वहां पर तदनुरूप प्रस्तुत हो जाती है। कोमल तथा सुकुमार भावों के चित्रण में वह सिद्ध हस्त हैं। उनकी भाषा पात्र के अनुरूप होती है। शकुन्तला के निष्कलंक सौन्दर्य का वर्णन कवि ने कितनी सुन्दरता के साथ किया है —

'' अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितारसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधि: ।। ''

कालिदास का भाषा में कहीं - कहीं पर मुहावरों के सुन्दर प्रयोग से भाषा अत्यधिक प्रवाहमयी हो जाती है। उदाहरणार्थ जब अनसूया प्रियंवदा से कहती है कि दुर्वासा के शाप का हृदयविदारक समाचार कोमलहृदय शकुन्तला तक न पहुँच जाये तब प्रियंवदा उत्तर देते हुए कहती है —

' को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति '।

गुण एवं रीति

महाकवि कालिदास की रचनाओं में प्रसादगुण युक्त ललित काव्यशैली एवं वैदर्भी रीति का प्रयोग

हुआ है । वैदर्भी रीति के वे सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । वैदर्भी रीति को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है ।

'' माधुर्यव्यंजकैर्वर्णै: रचना ललितात्मिका

अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते ।। ''

अर्थात् माधुर्यव्यंजक वर्णो का प्रयोग, ललित रचना, समासों का अभाव या स्वल्प समासों का प्रयोग वैदर्भी रीति की प्रमुख विशेषतायें हैं । माधुर्य गुण कालिदास की कविता का आभूषण है। जो हृदय में परमानन्द की निर्झरिणी को प्रवाहित करता है । शकुन्तला जैसी अद्वितीय सुन्दरी के द्वारा वृक्ष सिंचन जैसा कठोर कार्य उन्हें किसी भी स्थिति में स्वीकार्य नहीं है अपने इस विद्रोही भावों को कितने सुमधुर शब्दों में कवि अभिव्यक्त करता है —

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तप: क्षमं साधयितुं य इच्छति

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्याति ।।

यद्यपि कालिदास की रचनाओं में प्रसाद एवं माधुर्य गुण की प्रधानता है तथापि ओजगुण भी उनकी रचनाओं में यत्र —तत्र दृष्टिगोचर होता है । दुष्यन्त के सैन्य बल को देखकर भयग्रस्त हाथी के वर्णन में ओजगुण के दर्शन होते हैं —

तीव्राघात प्रतिहततरूस्कन्धलग्नैकदन्त:

पादाकृष्टव्रततिवलयासंग संजातपाश: ।

मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्न सारंगयूथो

धर्मारण्यं प्रविशति गज: स्यन्दनालोकभीत: ।।

अलंकार — महाकवि कालिदास ने अपनी कविता वनिता को अवसर के अनुकूल विभिन्न अलंकारों से अलंकृत किया है।कालिदास ने शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया है । उपमा उनका सर्वप्रिय अलंकार है । कालिदास की उपमाऐं तो जगत प्रसिद्ध है इसीलिए कहा भी गया है — 'उपमा कालिदासस्य' । इसके अतिरिक्त कालिदास ने अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है ।

छन्द

छन्द काव्य का आह्लादक तत्त्व है । महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में 24 छन्दों का प्रयोग किया है ।

रस परिपाक

कालिदास के काव्यों में सर्वत्र ही रसमयता दर्शनीय है। यद्यपि कालिदास ने अपने काव्यों में सभी रसों का प्रयोग किया है पर मुख्यत: उनकर हृदय श्रृंगार रस में ही रमा है। श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का उन्होने अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। मेघदूत में विप्रलम्भ श्रृंगार चरम सीमा तक पहुँच गया है। कुमार संभव तथा अभिज्ञानशाकुन्तल में संयोग श्रृंगार का सात्विक रूप दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त नाटकों में विदूषक के कथन में हास्य, कुमारसंभव के 'रति विलाप' तथा रघुवंशम् के 'अज विलाप' में करूण , रघु — इन्द्र और राम —रावण के युद्ध् में वीर तथा अन्य स्थानों पर विभिन्न रसों का सुन्दर परिपाक हृदयावर्जक है।

भावाभिव्यंजना

कालिदास व्यंजना व्यापार के कवि है। उनकी भावाभिव्यंजना अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। इसी व्यंजना व्यापार के द्वारा कवि ने विस्तृत एवं रहस्यात्मक विषयों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रस्तावना के निम्नलिखित श्लोक में व्यंजना व्यापार देखिये —

'' सुभगसलिलावगाहा: पाटलसंसर्गसुरभिवनवाता: ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसा: परिणामरमणीया: ।।''

'दिवसा: परिणामरमणीया:' से यह ध्वनित होता है कि नाटक का अन्त सुखद होगा। इसी प्रकार दुष्यन्त शकुन्तला के परिचय को जान लेने के बाद भी अपने मन के भावों को इस प्रकार व्यक्त करता है —

'' भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जात:

आशंकसे यद्ग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ।।''

अत: हम कह सकते हैं कि कालिदास की काव्यकला की यह विशेषता है कि वह भाव एवं कला पक्ष से समलंकृत है। भाषा की मधुरता, सरलता , सरसता, और प्रसादमयता में वह अद्वितीय हैं और उसमें व्यंजना शक्ति की प्रधानता है। इसीलिए कालिदास की प्रशंसा में कहा गया है —

'' पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदास: ।

अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ।। ''

अभ्यास प्रश्न 3•

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।

(क) नाट्य शास्त्र के रचयिता पिगंल ऋषि है।

(ख) कालिदास का जन्म ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में हुआ था।

(ग) कुमारसम्भवम् कालिदास की रचना है।

(घ) रघुवंश खण्डकाव्य है।

(ङ) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक है।

1•8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि नाट्य किसे कहते हैं। जिसका अभिनय किया जा सके उसे दृश्य काव्य कहते हैं 'दृश्यं तत्राभिनेयं' । इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक संज्ञा से भी जाना जाता है। रूपक शब्द की निष्पत्ति रूप धातु में ण्वुल प्रत्यय के योग से होती है। ये दोनों ही शब्द साहित्य में 'नाट्य' के द्योतक है। नाट्यशास्त्र में 'दशरूप' शब्द का प्रयोग नाट्य की विधाओं के अर्थ में हुआ है। अब प्रश्न यह उठता है कि नाट्य क्या है ? दशरूपककार आचार्य धनंजय नाट्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं —' अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' अर्थात् अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं। इसके साथ ही आप ने यह भी जाना कि किस प्रकार इसका उद्भव एवं विकास हुआ। नाट्य साहित्य के उद्भव के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों का क्या मत है। साथ ही आपने यह भी जाना कि वैदिक काल से से लेकर अब तक नाटकों का विकास हुआ। इस क्रम में भास के पश्चात् शूद्रक,कालिदास,अश्वघोष,हर्ष,भवभूति,विशाखदत्त,मुरारि,शक्तिभद्र, दामोदर मिश्र, राजशेखर, दिंगनाग, कृष्ण मिश्र, जयदेव, वत्सराज आदि आते हैं। इनके उच्चकोटि के नाटकों ने संस्कृत साहित्य की सम्यक् श्री वृद्धि की है। इसके अतिरिक्त आप कालिदास के जीवन वृत्त, स्थितिकाल एवं उनकी रचनाओं तथा काव्यकला को भी जान पाये।

1•9 शब्दावली

श्रवण	सुनना
उद्भव	उत्पत्ति
नाट्य	रूपक
दिवंगत	मृत (मरे हुए)
परिवर्तन	बदलाव
स्पृहा	इच्छा

विक्रय	बेचना
शैलूष	अभिनेता (नट)
प्रसादगुणोपेत	प्रसादगुण से युक्त
वपु:	शरीर
छेत्तुम्	काटने के लिए
अनघं	निष्कलंक
अनास्वादितम्	न चखा गया

1•10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 — (1) आचार्य भरतमुनि (2) महर्षि वेदव्यास (3) डा0 पिशेल (4) भारतीय एवं पाश्चात्य मत अभ्यास प्रश्न 2— 1• प्रथम 2• विद्योत्तमा 3• महाकाव्य 4• पाँच 5• दुष्यन्त 6• प्रथम 7• गीतिकाव्य 8• छ: 9• शकुन्तला 10• सात अंक

अभ्यास प्रश्न 3 — क (नहीं) ख (हाँ) ग (हाँ) घ (नहीं) ङ (हाँ)

1•11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1• शुभंकर प्रणीत ‘ संगीत दामोदर’श्री शेषराज शर्मा रेग्मी द्वारा सम्पादित चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।

2• नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

3• संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

4• दशरूपक, आचार्य धनंजय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

5• कालिदास और उनकी काव्यकला, वागीश्वर विद्यालंकार चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

6• अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डा0 शिवबालक द्विवेदी , ग्रन्थम प्रकाशन।

1•12 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

1• संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

2• नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

3• अभिज्ञानशाकुन्तलम्, तारिणीश झा ,चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

4• अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डा0 शिवबालक द्विवेदी , ग्रन्थम प्रकाशन।

1•13 निबन्धात्मक प्रश्न

1• नाट्य साहित्य के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिये।

2• कालिदास के जीवन वृत्त एवं स्थितिकाल पर लेख लिखिये।

3• कालिदास की काव्यकला का वर्णन कीजिये।

इकाई .2 अभिज्ञानशाकुन्तलम्- कथावस्तु, पात्रों का चरित्र चित्रण ,ग्रन्थ का नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य , पारिभाषिक शब्दावली

इकाई की रूपरेखा

2•1 प्रस्तावना

2•2 उद्देश्य

2•3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथावस्तु

2•3•1 मूलकथा

2•3•2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कथासार

2•4 चरित्र—चित्रण

2•4•1 दुष्यन्त

2•4•2 शकुन्तला

2•4•3 कण्व

2•5 ग्रन्थ का नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य

2•6 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली

2•7 सारांश

2•8 शब्दावली

2 •9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2•10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2•11 सहायक पाठ्य सामग्री

2•12 निबन्धात्मक प्रश्न

2•1 प्रस्तावना

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है। पूर्व की इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते हैं कि नाटक क्या है इसका उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ तथा महाकवि कालिदास की रचनाऐं कौन —कौन सी हैं

प्रस्तुत इकाई में आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की कथावस्तु तथा प्रमुख पात्रों के चरित्र चित्रण का अध्ययन करेगें। इसके साथ ही इस ग्रन्थ की नाट्यशास्त्रीय विशेषताओं एवं पारिभाषिक शब्दावली का ज्ञान भी प्राप्त करेगें।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि इस नाटक की कथावस्तु का मूल स्रोत क्या है ? नाटक के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से परिचित होगें तथा नाटक में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों के महत्व को समझा सकेगें।

2•2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप —

- बता सकेगें कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथावस्तु कहाँ से ली गयी है ?
- नाटक के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को समझा पाएगें।
- नाटक में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों के अर्थ को समझा सकेगें।
- नाट्य तत्वों के आधार पर ग्रन्थ की उपादेयता को बता सकेगें।

2•3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् की कथावस्तु

2•3•1 मूलकथा

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की मूल कथा महाभारत के आदिपर्व में 67 से 74 अध्याय तक प्राप्त होती है। वहाँ यह कथा अत्यन्त साधारण रूप में प्रस्तुत हुई है। पद्मपुराण के स्वर्ग-खण्ड में भी यह कथा प्राप्त होती है। पद्मपुराण के अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है कि भाषा आदि की दृष्टि से पद्मपुराण की रचना कालिदास के बाद में हुई हो अतएव अभिज्ञानशाकुन्तलम् की मूलकथा का आधार महाभारत ही ठहरता है। महाकवि कालिदास ने अपनी नूतन कल्पनाओं के द्वारा इसमें मौलिकता ला दी है और इसे रम्य रोचक और प्रभावशाली बना दिया है।

2•3•2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कथासार

इस सम्पूर्ण नाटक में सात अंक है जिसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है -**प्रथम अंक** में सर्वप्रथम

कवि ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए नान्दी पाठ के द्वारा अष्ट मूर्ति भगवान शिव की वन्दना करता है। तत्पश्चात सूत्रधार के द्वारा गीष्म ऋतु का मनोहर वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। इसके बाद आश्रम के मृग का पीछा करते हुए राजा दुष्यन्त सारथि के साथ महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश करते हैं। जैसे ही राजा मृग को मारना चाहते हैं उसी समय एक तपस्वी शिष्यों के साथ प्रवेश करके राजा को बतलाता है कि यह आश्रम का मृग है अत: अवध्य है। राजा उस तपस्वी की बात को मान लेते हैं इस पर तपस्वी उन्हें आशीर्वाद देता है कि तुम्हें चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति हो साथ ही राजा से आश्रम में प्रवेश कर आतिथ्य को स्वीकार करने का आग्रह करता है। राजा रथ को आश्रम के बाहर छोड कर सामान्य वेशभूषा में आश्रम में प्रवेश करते हैं। महर्षि कण्व सोमतीर्थ को गये हुए हैं इसलिए अतिथि सत्कार का भार शकुन्तला पर है। राजा आश्रम में वृक्ष को सींचती हुई अत्यन्त सुन्दर तीन मुनिकन्याओं को देखता है।शकुन्तला के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर वह उसके प्रति आसक्त हो जाता है। अपने राजकीय स्वरूप को छिपाने वाला दुष्यन्त भ्रमर से पीडित शकुन्तला की रक्षा करता है। मधुर वार्तालाप से वह शकुन्तला के जन्म का वृतान्त जानकर कि वह विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है और तात कण्व के योग्य वर से विवाह के संकल्प को जानकर वह उससे विवाह करने का दृढ़संकल्प कर लेता है और विविध मधुर संवादों से शकुन्तला को आकृष्ट करने का प्रयत्न करता है। शकुन्तला भी दुष्यन्त से प्रभावित होकर उस पर अनुरक्त हो जाती है। इसी बीच आश्रम में जंगली हाथी का प्रवेश होता है राजा अपने सैनिकों को रोकने के लिए प्रस्थान करता है और शकुन्तला भी अपनी सखियों के साथ से प्रस्थान करती है।

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में विदूषक द्वारा राजा के आखेट समबन्धित सूचना प्राप्त होती है। श्रान्त विदूषक आखेट के कार्यक्रम को रोकने की प्रार्थना करताहै। शकुन्तला के प्रति आकर्षित होने के कारण व्याकुल हृदय दुष्यन्त विदूषक की प्रार्थना को स्वीकार कर लेता है आखेट के कार्यक्रम को रोकने की आज्ञा देता है। इसके पश्चात दुष्यन्त विदूषक से शकुन्तला के मनोहारी सौन्दर्य और रमणीय कार्यकलापों का वर्णनकरता है। राजा विदूषक से आश्रम में प्रवेश हेतु किसी निमित्त को पूछता है। इसी बीच तपोवन में रूकने की इच्छा रखने वाले दुष्यन्त से दो तपस्वी वहाँपर कुछ दिन रहकर आश्रम के निवासियों के यज्ञादि कार्यो में होने वाले विघ्नों को दूर करने की प्रार्थना करते हैं ,राजा इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। इसी बीच राजधानी से माता का सन्देश लेकर दूत आता है और कहता है कि देवी के पारण के दिन आपकी उपस्थिति माताजी के द्वारा वांछित है। राजा तपोभूमि में अपनी उपस्थिति की अनिवार्यता को विचार कर विदूषक को राजधानी भेज देता है और विदूषक से कहता है कि अभी तक जो शकुन्तला के प्रेम एवं मनोहारिता का वर्णन उसके द्वारा किया गया है वह परिहास ही था यथार्थ नहीं।

तृतीय अंक इसके प्रारम्भ में विष्कम्भक का प्रयोग हुआ है। दुष्यन्त के प्रति आसक्ति के कारण अस्वस्थ शकुन्तला प्रविष्ट होती है। उधर कामपीडित राजा दुष्यन्त का भी प्रवेश होता है। वृक्षों की झुरमुट में छिपकर राजा शकुन्तला और उसकी सखियों के वार्तालाप को सुनता है।जिस समय विरह

व्यथित शकुन्तला अपनी सखियों के कहने पर दुष्यन्त के लिए कमलिनीपत्र पर अपने नाखूनों से प्रेमपत्र लिखती है उसी समय दुष्यन्त शकुन्तला के समक्ष आकर अपने प्रेम को प्रगट करदेते हैं। दुष्यन्त के आ जाने पर दोनों सखियां वहाँ से चली जाती है। राजा शकुन्तला के समक्ष गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव रखता है परन्तु इससे पहले कि दुष्यन्त अपनी पिपासा को शान्त करते कि सखियाँ चक्रवाकवधू को अपने प्रियतम से विदा लेना का संकेत कर देती हैं। इसी बीच शान्ति जल लेकर गौतमी प्रवेश करती है। राजा दुष्यन्त लताओं की ओट में छिप जाता है गौतमी शकुन्तला को लेकर चली जाती हैं। यज्ञ में विघ्न डालने वाले राक्षस ही राजा को अपने कर्त्तव्य की ओर प्रेरित कर पाते हैं और राजा धनुष बाण लेकर अपने श्लाघनीय रक्षा व्रत में रत हो जाता है।

चतुर्थ अंक का प्रारम्भ विष्कम्भक की समाप्ति से होता है जिससे यह ज्ञात होता है कि राजा दुष्यन्त का शकुन्तला के साथ गान्धर्व विवाह हो गया है। राजा शकुन्तला को कुछ ही दिनों में बुला लेने का आश्वासन देकर राजधानी चला जाता है दुष्यन्त के वियोग में अत्यन्त अधीर होने के कारण शकुन्तला आश्रम में आये हुए दुर्वासा ऋषि को जान नहीं पाती है जिससे क्रुद्ध होकर ऋषि उसे शाप दे देते हैं कि जिसको स्मरण करती हुई आश्रम में आये हुए मुझ जैसे अतिथि की ओर ध्यान नहीं दे रही हो वह याद दिलाने पर भी तुझे नहीं पहचान सकेगा दुर्वासा का शाप शाकुन्तलम् का मोड़बिन्दु बना 1 प्रियंवदा शीघ्र जाकर दुर्वासा ऋषि से अनुनय विनय करती है फलस्वरूप ऋषि यह कहते हैं कि मेरा शाप अन्यथा तो नही हो सकेगा किन्तु किसी पहचान की वस्तु दिखाये जाने पर वहअवश्य समाप्त हो जायेगा। शकुन्तला के पास दुष्यन्त की नामांकित अंगूठी है अत: उसे दिखाये जाने पर वह अवश्य पहचान लेगा। इस आशा से शाप वृत्तान्त को वे दोनों सखियां किसी को भी नहीं बताती हैं।

इसी बीच तीर्थ यात्रा से लौटे हुए महर्षि कण्व को आकाशवाणी के द्वारा शकुन्तला और दुष्यन्त के गान्धर्व विवाह और शकुन्तला के गर्भवती होने की सूचना मिलती है। महर्षि कण्व इस विवाह का अनुमोदन करते हैं ओर शकुन्तला को उसके पति के पास भेजने का विचार करते हैं। शकुन्तला की विदाई की तैयारी होने लगती है। वन के वृक्षों द्वारा उसको वस्त्राभूषण प्रदान किये जाते हैं। शकुन्तला अपनी प्रिय सखियों ,लताओं,वृक्षों, वन मृगों आदि से विदाई लेती हैं। इसी समय महर्षि कण्व शकुन्तला को पतिगृह के लिए उपयुक्त आदर्श शिक्षा और राजा के लिए सन्देश देते हैं। शकुन्तला आश्रम से विदा होती है उसके साथ गौतमी,शारंगरव और शारद्वत जाते हैं। शकुन्तला को पतिगृह भेजकर महर्षि कण्व परम शान्ति का अनुभव करते हैं। इसी अंक में शाकुन्तल के चारो श्रेष्ठ श्लोक विन्यस्त हैं।

पंचम अंक में गौतमी,शारंगरव और शारद्वत शकुन्तला के साथ दुष्यन्त के राजदरबार में पँहुचते हैं। अभिज्ञान के खो जाने के कारण राजा दुर्वासा के शाप की अवस्था से मुक्त नहीं है,अतएव शकुन्तला के साथ विवाह वृत्तान्त को वह मिथ्या बतलाता है। तपस्वियों और राजा के मध्य आवेशपूर्ण

बातचीत होती है परन्तु राजा शकुन्तला को स्वीकार नहीं करता है। अन्ततोगत्वा राजा का पुरोहित कहता है कि आपके विषय में ऐसा कहा गया है कि आपके चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा। यदि यह चक्रवर्ती पुत्र को जन्म देती हैं तो इन्हें स्वीकार कर लेना अन्यथा नहीं। तब तक के लिए पुरोहित शकुन्तला को अपने घर में रखने के लिए प्रस्ताव करता है जिसे राजा स्वीकार कर लेता है 1 तपस्वीजन शकुन्तला को छोड़कर चले जाते हैं। शकुन्तला विलाप करती है। उसी समय एक स्त्री के आकार वाली तेजोमयी ज्योति उसे उठाकर ले जाती है। सभी लोग आश्चर्य करते हैं और राजा अत्यन्त खिन्न हो जाता है।

षष्ठ अंक में शकुन्तला की खोयी हुई मुद्रिका धीवर को प्राप्त होती है 1 वह उसे बाजार में बेचने के लिए जाता है किन्तु उस पर राजा का नाम अंकित होने के कारण पुलिस उसे चोर समझ कर पकड़ लेती है। निर्णय के लिए राजा के समीप ले आते हैं। राजा उस अंगूठी को लेकर धीवर को पुरस्कृत करते हुए उसे मुक्त कर देते हैं। इस अंगूठी को देखकर राजा को शाप के कारण भूली हुई घटनायें पुनः याद आ जाती हैं। तब राजा को शकुन्तला वियोग से पीडा होती है। तभी मेनका की सखी सानुमती राजा की स्थिति ज्ञात करने के लिए प्रच्छन्न रूप से प्रमदवन में प्रकट होती है। वहाँ राजा शकुन्तला के अधूरे चित्र को पूरा करता है। राजा के हृदय में शकुन्तला के प्रति प्रेम को देख कर सानुमती अत्यधिक प्रसन्न होती है। इसके पश्चात प्रतिहारी आकर राजा को मन्त्री का एक पत्र देती है। जिसमें लिखा है कि धनमित्र नामक एक व्यापारी समुद्र में डूब गया सन्तानहीन होने के कारण उसकी सम्पत्ति राजकोष में मिला ली जायेगी। इसे पढ कर स्वयं सन्तानहीन होने के कारण राजा अत्यन्त दुखी होता है। इसी बीच इन्द्र का सारथि मातलि का आगमन होता है, वह राजा को इन्द्र का सन्देश देता हे कि दैत्यों के संहार हेतु इन्द्र ने उन्हें बुलाया है। राजा इन्द्र के सहायतार्थ स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है।

सप्तम अंक में राजा युद्ध में राक्षसों पर विजय प्राप्त करता है। इन्द्र अत्यन्त आदर के साथ राजा दुष्यन्त को स्वर्ग से विदा करते हें। राजा दुष्यन्त लौटते समय हेमकूट पर्वत पर महर्षि मारीच के आश्रम को देखते हैं। इसी समय राजा आश्रम में एक होनहार बालक को सिंह के बच्चे के दाँत गिनने का प्रयास करते हुए देखते हैं। राजा उसके पराक्रम को देखकर बहुत प्रभावित होता है और उसे पुत्र के समान प्रेम करने लगता है। राजा को तपस्विनी द्वारा यह ज्ञात होता है कि यह बालक पुरूवंश का है। अपराजिता नामक औषधि के द्वारा दुष्यन्त को यह ज्ञात हो जाता है यह बालक उसका ही पुत्र है। इसी बीच वियोग व्यथित शकुन्तला आकर राजा को प्रणाम करती है। राजा शकुन्तला से क्षमा माँगता है।

राजा दुष्यन्त, शकुन्तला एवं भरत महर्षि मारीच के दर्शन के लिए जाते हैं। महर्षि मारीच दुर्वासा शाप के कारण राजा को निर्दोष बताते हैं तत्पश्चात् वे उन्हें आशीर्वाद देते हैं। यहीं पर भरतवाक्य के साथ नाटक की सुखद एवं मंगलमयी परिसमाप्ति होती है।

अभ्यास प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए —

1• अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक का सारांश लिखिए।

2• अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक का सारांश लिखिए।

2•4 चरित्र चित्रण

नाटक में प्रयुक्त पात्रों के विचार कार्यप्रणाली उनके स्वभाव एवं स्वरूप के बारे में वर्णन करना उस पात्र का चरित्र चित्रण कहलाता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक के नायक दुष्यन्त , नायिका शकुन्तला एवं महर्षि कण्व का चरित्र चित्रण इस प्रकार है —

2•4•1 दुष्यन्त

अभिज्ञान शाकुन्तलम् का नायक पुरूवंशोत्पन्न राजा दुष्यन्त है । दुष्यन्त धीरोदात्त नायक है दशरूपककार **आचार्य धनंजय** ने धीरोदात्त का लक्षण किया है -

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढवृतः ।।

आदर्श राजा - दुष्यन्त एक आदर्श, पराक्रमी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ राजा है। वह अपनी प्रजा के साथ—साथ तपोवन की रक्षा में भी तत्पर रहता है। भ्रमर द्वारा पीडित शकुन्तला के सहायतार्थ पुकारे जाने पर वह कहता है कि पुरूवंशियों के शासक होने पर कौन अविनय का आचरण करता है ? राजा दुष्यन्त अपनी प्रजा से उचित कर ही ग्रहण करता है। विदूषक जब उससे तपस्वियों से कर लेने को कहता है तो वह कहता है कि यह तपस्वी तो मुझे विशेष प्रकार का कर देते हैं। सामान्य प्रजा से प्राप्त कर तो नष्ट हो सकता है किन्तु तपस्वी हमें अपनी तपस्या का छठा भाग प्रदान करते हैं जिसका कभी भी विनाश नहीं होता है। दुष्यन्त की वीरता भी प्रशंसनीय है उसकी वीरता के कारण ही इन्द्र उसे दानवों से युद्ध करने के लिए बुलाते हैं।

आकर्षक व्यक्तित्व — दुष्यन्त सुन्दर हृष्ट पुष्ट एवं आकर्षक व्यक्तित्व वाला युवक है ।उसका शारीरिक गठन एवं सौन्दर्य सभी को प्रभावित कर देता है। दुष्यन्त को देखकर ही प्रियंवदा कहने लगती है — **'चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते'** ।

आदर्श प्रेमी — दुष्यन्त एक आदर्श प्रेमी है। मालिनी नदी के किनारे वेतस् कुंजों में शकुन्तला को देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है और कहता है कि **'अये लब्धं नेत्र निर्वाणम् '**। षष्ठ अंक में मुद्रिका के प्राप्त हो जाने पर वह निरन्तर शकुन्तला को स्मरण करता हुआ पश्चात्ताप की अग्नि में

जलता है। नाटक के आरम्भ में दुष्यन्त एक कामुक व्यक्ति के रूप में उपस्थित होता है किन्तु नाटक के अन्त तक उसका प्रेम पवित्रता की चरम सीमा को प्राप्त करता है। शकुन्तला से प्रेम करने के कारण वह मृगों को नही मारता है क्योंकि शकुन्तला को मृगों ने मुग्ध विलोकन का उपदेश किया अत्यन्त प्रिय है। उसके क्रोध को शान्त करने के लिए वह उसके पैरों पर गिरता है।

चित्रकला प्रेमी - दुष्यन्त एक अच्छा चित्रकार भी है। उसके द्वारा बनाये गये शकुन्तला के चित्र को देखकर सानुमती मुग्ध हो जाती है ओर कहती है **' अहो ! एषा राजर्षेर्निपुणता**। शकुन्तला और उसकी सखियों के चित्र को बार बार तूलिका से ठीक करते हुए भी वह सन्तुष्ट नहीं होता है।

संगीतज्ञ — दुष्यन्त संगीत मर्मज्ञ भी है। महारानी हंसपादिका के गीत को सुनकर वह कहने लगता है कि' अहो रागपरिवाहिनी गीतिः '। यह सुनकर विदूषक आश्चर्यचकित होता है। राजा हंसकर कहता है कि महारानी हंसपादिका ने शिष्टतापूर्वक उपालम्भ दिया है।

विनीत एवं मृदुभाषी —

दुष्यन्त अत्यन्त विनम्र एवं मधुरभाषी है। प्रियंवदा उसके मधुर भाषण की भूरि—भूरी प्रशंसा करती है। तपोवन में ऋषियों के द्वारा आखेट के लिए मना किये जाने पर वह उनकी आज्ञा को विनम्रता से स्वीकार कर लेता है। तपोवन में वह राजसी वेषभूषा में प्रवेश न करके सामान्य जन की तरह प्रवेश करता है यह उसकी विनम्रता का परिचायक है।

वात्सल्य हृदय —

सन्तानहीन होने पर भी मारीच के आश्रम में सिंह शावक के साथ खेलते हुए बालक को देखकर दुष्यन्त का हृदय पुत्र प्रेम से भर उठता है। राजा को बालक अत्यन्त प्रिय लगता है और वह कहता है कि वह अत्यधिक भाग्यशाली लोग होते हैं जिनकी गोद बालकों के रजकणों से मलिन होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दुष्यन्त एक श्रेष्ठ राजा, आदर्श प्रेमी, ललित कलाओं का ज्ञाता, विनम्र, मृदुभाषी, पराक्रमी नायक है।

2•4•2 शकुन्तला —

शकुन्तला अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की नायिका है ।वह विधाता की अपरा सृष्टि है। वह विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है। उसका पालन पोषण महर्षि कण्व के द्वारा तपोवन के प्राकृतिक वातावरण में किया गया है ।अतः काश्यप उसे पुत्री मानते हैं और वह भी काश्यप को ही अपना पिता मानती है। वह अनुपम सुन्दरी है तथा आदर्श गुणों से युक्त है। उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषतायें हैं -

अप्रतिम सुन्दरी - शकुन्तला का सौन्दर्य अनिर्वचनीय है। उसके अलौकिक सौन्दर्य से आकृष्ट

होकर दुष्यन्त कहता है कि 'मानषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभव: ' । उसका शरीर स्वाभाविक रूप से ही मनोहर है **'इदं किलाव्याजमनोहरं वपु:** 'उसका शरीर लता के वैशिष्ट्य से युक्त है —

'' अधर: किसलयराग: कोमलविटपानुकारिणौ बाहू

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्नद्धम् ।1

शकुन्तला वल्कल वस्त्रों में भी अत्यधिक सुन्दर प्रतीत होती है सत्य ही कहा गया है सुन्दर वस्तुओं को किसी अलंकरण की आवश्यकता नहीं होती है**' किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतिर्नाम '।**

प्रकृति प्रेम - शकुन्तला और प्रकृति एकता के सूत्र में बंधे हुए हैं। वह प्रकृति की गोद में पली बढ़ी है। प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों के प्रति उसका स्वाभाविक अनुराग है। वह वृक्ष सिंचन से पहले स्वयं जल नहीं पीती है आभूषण प्रिय होने पर भी वह उनके पत्तों को नहीं तोडती है और इनमें पहली बार फूल आने पर वह उत्सव मनाती है। इसी कारण महर्षि कण्व शकुन्तला की विदाई के समय आश्रम के वृक्षों एवं लताओं से कहते हैं कि शकुन्तला अपने पतिगृह जा रही है तुम सब इसको आज्ञा दो। शकुन्तला प्रकृति की संरक्षिका है।

मुग्धा नायिका- शकुन्तला मुग्धा नायिका है। राजा दुष्यन्त उसको देखकर कहते हैं कि '' मुग्धासु तपस्विकन्यासु ''। दुष्यन्त के प्रति उत्पन्न प्रेम को वह संकोच वश अपनी प्रिय सखियों से भी व्यक्त नहीं कर पाती है। राजा के द्वारा प्रणयानुरोध करने पर भी वह लज्जावश तथा अपने पिता की अनुमति के बिना आत्मसमर्पण करने के लिए ऩ़द्यत नहीं होती है।

आदर्श सखी - शकुन्तला का चरित्र एक आदर्श सखी का है। अपनी सखियों के परिहास करने पर वह बुरा नहीं मानती हैं और वह उनसे कोई बात छिपाती नहीं है। अनुसूया और प्रियंवदा से परामर्श करके ही वह कोई कार्य करती है। दुष्यन्त के द्वारा परिणय के लिए आग्रह करने पर वह कहती है कि मुझेसखियों से पूछ लेने दीजिए। शकुन्तला के आश्रम से विदाईं के पश्चात् दोनों सखियां व्याकुल हो जाती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वह एक आदर्श सखी है।

पतिव्रता नारी — शकुन्तला उच्चकोटि की पतिव्रता पत्नी है। दुष्यन्त का वियोग उसके लिए असहनीय है। दुष्यन्त के अपने राज्यवापस चले जाने पर वह सुध बुध खो बैठती है। पंचम अंक में दुष्यन्त के द्वारा ना पहचाने जाने पर भी वह उससे विमुख नहीं होती है। वह दुष्यन्त को दोष न देकर अपने भाग्य को दोष देती है। मारीच के आश्रम में वह एक तपस्विनी की भांति रह कर अपने चरित की रक्षा करती है। उसकी इस तपस्या के परिणामस्वरूप उसका अपने पति से मिलन होता है। वह पैरों में गिरकर क्षमा मांगता है तथा आदरपूर्वक अपनी राजधानी ले जाता है।

वात्सल्यमयी - शकुन्तला नारी है उसका ह्रदय वात्सल्य से परिपूर्ण है। एक मृगशावक जिसकी माँ

जन्म के पश्चात् मर गई उसको शकुन्तला ने सांवा खिलाकर पुत्रवत् पाला है। वह एक आदर्श माँ है उसने एक अत्यन्त पराक्रमी चक्रवर्ती पुत्र को जन्म दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शकुन्तला के रूप में कालिदास ने एक आदर्श भारतीय नारी का प्रेममय चित्र अंकित किया है और इसमें वह पूर्ण रूप से सफल हुए हैं।

2•4•3 कण्व

महर्षि कण्व का चरित्र अनुकरणीय एवं आदर्श चरित है। उनको 'काश्यप' नाम से भी जाना जाता है। वह एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा महापुरूष है। उनके चरित्र की निम्नलिखित विशेषतायें हैं —

आश्रम के कुलपति — मालिनी नदी के तट पर एक विशाल आश्रम है। उसके कुलपति महर्षि कण्व है।

महान तपस्वी —

महर्षि कण्व अग्निहोत्री है। अपनी तपस्या के प्रभाव से ही वह वह शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य को जानकर उसकी शान्ति हेतु सोमतीर्थ जाते है। महर्षि कण्व के आश्रम में यज्ञशाला है वह श्रौतविधि से हवन करने वाले हैं। कण्व ऋषि के तप के प्रभाव से ही पति के घर जाती हुई शकुन्तला को आश्रम के वृक्ष वस्त्र और आभूषणादि प्रदान करते हैं।

वात्सल्य हृदय —

यद्यपि शकुन्तला कण्व की धर्मसुता है तथापि वह उसे अपनी कन्या से भी अधिक प्रेम करते हैं। तपस्वी होकर भी उनका हृदय वात्सल्य रस से परिपूर्ण है। शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वह एक गृहस्थ से भी अधिक व्याकुल हो कर सामान्य पिता की भांति रूदन करते हैं —

'' यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया

कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृतिकलुषाश्चिन्ताजडं दर्शनम्।

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः

पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ।।

शोकाकुल होकर वह अनुसूया एवं प्रियंवदा से कहते हैं कि —**'अनुसूये! प्रियंवदे गता वां सहचरी'।**

लौकिक व्यवहार के ज्ञाता

महर्षि होते हुए भी कण्व सांसारिक व्यवहार को भली भांति जानते हैं। पतिगृह जाती हुई शकुन्तला

को **'शुश्रूस्व गुरून्** 'आदि के द्वारा दिया हुआ उपदेश तथा दुष्यन्त के पास भेजा हुआ सन्देश और विशेष रूप से उनका निम्न कथन इसके स्पष्ट प्रमाण हैं — **'भागयायत्तमत: परं न खलु: तद्वाच्यं वधूबन्धुभि:'** ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महर्षि कण्व तपस्वी, दयालु,पितृ स्नेह से परिपूर्ण,सवर्ज्ञ एवं लौकिक व्यवहार के ज्ञाता हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित प्रश्नों में से सही विकल्प चुनकर लिखिए।

क• दुर्वासा कौन थे

(1) शकुन्तला के पिता (2) विदूषक

(3) मन्त्री (4) ऋषि

ख• शकुन्तला को शाप किसने दिया

(1) कण्व (2) दुर्वासा

(3) मारीचि (4) शारंगरव

ग• अभिज्ञानशाकुन्तल क्या है

(1) कथा (2) नाटक

(3) चम्पूकाव्य (4) प्रकरण

घ• अभिज्ञानशाकुन्तल की नायिका कौन है

(1) अनुसूया (2) प्रियंवदा

(3) शकुन्तला (4) सानुमती

ङ• अभिज्ञानशाकुन्तल में कितने अंक है

(1) 4 (2) 6

(3) 7 (4) 5

2•5 अभिज्ञानशाकुन्तल का नाट्यशास्त्रीय वैशिष्ट्य

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में नाटक का लक्षण इस प्रकार दिया है —

' नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसन्धिसमन्वितम् ।
पंचाधिका दशपरास्तत्रांका: परिकीर्तिता: ।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्त: प्रतापवान् ।

दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मत: ।।

एक एव भवेदंगी श्रृंगारो वीर एव वा ।

अंगमन्ये रसा: सर्वे कार्यो निर्वहणेऽदभुत: ।। अर्थात् नाटक प्रसिद्ध् कथानक तथा पांचसन्धियों से युक्त होता है । इसमें कम से कम पांच अधिक से अधिक दस अंक होते हैं उसका नायक प्रसिद्ध् वंश का धीरोदात्त,प्रतापी,राजर्षि होता है । वह दिव्य हो या दिव्य और अदिव्य दोनो प्रकार के गुणों से मिश्रित तथा गुणवान् हो । नाटक में श्रृंगार या वीर रस में से कोई एक रस मुख्य तथा अन्य रस सहायक होते हैं । नाटक के अन्तिम भाग में निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का प्रयोग करना चाहिए ।

अभिज्ञानशाकुन्तल में नाटक के उपरोक्त लक्षण तथा अन्य नाट्यशास्त्रीय नियम घटित होते हैं इसलिए हम इसे नाटक मानतें हैं । जैसे— शाकुन्तल का कथानक प्रख्यात है । यह इतिहास एवं पुराण में प्रसिद्ध् है । शाकुन्तल की मूलकथा महाभारत के आदिपर्व तथा पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड में प्राप्त होती है । अभिज्ञानशाकुन्तल में सात अंक हैं ।नाट्यलक्षण के अनुसार ही यह अर्थप्रकृति, अवस्था, और पंचसन्धि से युक्त है ।

पांच अर्थप्रकृति निम्नलिखित हैं –

1 .बीज 2. बिन्दु 3. पताका 4. प्रकरी 5 .कार्य ।

बीज

अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में वैखानस ने राजा को आश्रम में जाने के लिए उत्साहित किया और राजा ने उसे स्वीकार किया ये दोनों बातें मिलाकर पूरा बीज है ।

बिन्दु

शाकुन्तल के द्वितीय अंक में मृगया के वृत्तान्त के कारण मूल कथा विच्छिन्न होने लगती है । तब राजा की सखे माधव्य ! अनवाप्तचक्षु: फलोऽसि । येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम् से लेकर शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि तक की उक्ति टूटती हुई कथा को एक बार फिर जोड देती है अत: वही

नाटक का बिन्दु है।

पताका

दुर्वासा के शाप की पृष्ठभूमि वाला अंगूठी का वृत्तान्त इस कथा की पताका है क्योंकि अंगूठी मुख्य फल की प्राप्ति कराने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती है। उसी को देखकर राजा को गान्धर्व विवाह का वृत्तान्त याद आता है और अन्त में शकुन्तला को प्राप्त कर लेता है।

प्रकरी

शाकुन्तल में मेनका के द्वारा शकुन्तला के वियोग में दुष्यन्त की मानसिक अवस्था को जानने के लिए भेजी गई अप्सरा की कथा तथा इन्द्र के द्वारा दुष्यन्त को लाने के लिए भेजे गये उनके सारथि मातलि का वृत्तान्त इस नाटक की प्रकरी है।

कार्य

नाटक के सप्तम अंक में दुष्यन्त एवं शकुन्तला का स्थायी मिलन होता है। यह मिलन ही इस नाटक का कार्य है।

अवस्थायें पांच हैं-

1. आरम्भ. 2 प्रयत्न 3. प्राप्त्याशा 4 .नियताप्ति 5. फलागम।

आरम्भ

शाकुन्तल के प्रथम अंक में राजा की 'अपि नाम कुलपते:' इत्यादि उक्ति से राजा की शकुन्तला के प्रति उत्सुकता प्रकट होती है। उसी अंक में आगे ' कथमिमं जनं प्रेक्ष्य ' इत्यादि उक्ति से राजा के प्रति शकुन्तला की उत्सुकता प्रकट होती है। अत: राजा की उपर्युक्त उक्ति से शकुन्तला की इस उक्ति तक आरम्भ नामक अवस्था है।

प्रयत्न

द्वितीय अंक में 'तपस्विभि: कश्चित परिज्ञातोऽस्मि' इत्यादि उक्ति से यत्न आरम्भ होता है और वह तृतीय अंक तक चला जाता है। दोनों पक्षों में एक दूसरे की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है। नाटक के इसी अंश को प्रयत्न नामक अवस्था कहा जा सकता है।

प्राप्त्याशा

नाटक के चतुर्थ एवं पंचम अंक में प्राप्तयाशा नामक अवस्था है। राजा के द्वारा प्रस्थान से पूर्व शकुन्तला को शीघ्र ही राजधानी बुलाने के लिए दूत भेजने का आश्वासन से मिलन की संभावना ,

दुर्वासा के शाप के कारण मिलन में विघ्न ,अभिज्ञान को दिखाकर शाप के प्रभाव को नष्ट किये जाने के उपाय से मिलन की फिर संभावना,अंगूठी के नदी में गिर जाने तथा राजा के द्वारा शकुन्तला को न पहचानने से विघ्न होते हैं। अत: उपाय और विघ्न के बीच प्राप्त्याशा है।

नियताप्ति

पंचम अंक के अंकावतार में अंगूठी के मिल जाने पर कार्य सिद्धि के मार्ग की सब बाधायें दूर हो जाती हैं। अत: यह अंक की नियताप्ति अवस्था कही जा सकती है।

फलागम

सप्तम अंक में दुष्यन्त एवं शकुन्तला के स्थायी मिलन से उद्देश्य की पूर्णतया प्राप्ति हो जाती है इसीलिए फलागम नामक अवस्था है।

सन्धियाँ

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण सन्धि का प्रयोग हुआ है।

नेता

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नायक दुष्यन्त प्रख्यात पुरूवंश उत्पन्न प्रतापी धीरोदात्त राजा है। वह दिव्य गुणों से युक्त है। देवराज इन्द्र भी अपने शत्रुओं को परास्त करने के लिए उनसे सहायता लेते हैं।

रस

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अंगी रस (प्रधान रस) श्रृंगार है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण इसमें किया गया है। वीर, हास्य, करूण, अद्भुत, एवं भयानक आदि रसों को अंग (सहायक) के रूप में सुन्दर प्रयोग किया गया है।

2•6 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावली

नाटक

‘ नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसन्धिसमन्वितम्।
पंचाधिका दशपरास्तत्रांका: परिकीर्तिता: ।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिधीरोदात्त: प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मत: ।।
एक एव भवेदंगी श्रृंगारो वीर एव वा।
अंगमन्ये रसा: सर्वे कार्यो निर्वहणेऽदभुत: ।।

अर्थात् नाटक प्रसिद्ध् कथानक तथा पांचसन्धियों से युक्त होता है। इसमें कम से कम पाँच अधिक से अधिक दस अंक होते हैं। उसका नायक प्रसिद्ध् वंश का धीरोदात्त,प्रतापी,राजर्षि होता है। वह दिव्य हो या दिव्य और अदिव्य दोनो प्रकार के गुणों से मिश्रित तथा गुणवान् हो। नाटक में श्रृंगार या वीर रस में से कोई एक रस मुख्य तथा अन्य रस सहायक होते हैं। नाटक के अन्तिम भाग में निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का प्रयोग करना चाहिए।

नान्दी —

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मातप्रयुज्यते।

देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥

नान्दी देव, द्विज, नृप आदि की ऐसी स्तुति है जिसमें सामाजिकों की शुभाशंसा निहित रहती है।

सूत्रधार —

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।

रंगदेवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरित:॥

बीजसहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं और जो उसको धारण करने वाला अर्थात् संचालन करने वाला होता है तथा रंगमंच के अधिष्ठातृ देव की पूजा करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।

प्रस्तावना —

नटी विदूषको वापि परिपार्श्विक एव वा।

सूत्रधारेण सहिता: संलापं यत्र कुर्वते॥

चित्रैर्वावाक्यै: स्वकार्योत्थै: प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथ:।

आमुखंतत्तु विज्ञेयं नाम्नाप्रस्तावनापि सा॥

प्रस्तावना वह आमुख है जिसमें नटी अथवा विदूषक या पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ ऐसा आलाप किया करते हैं जिसमें प्रस्तुत अभिनय का आक्षेप करने वाले चित्र विचित्र वाक्यों का प्रयोग हुआ करता है।

नेपथ्य —

' कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते '। अभिनेतागण जहाँ नाटक के उपयुक्त वेशभूषा धारण करते हैं ,उसे नेपथ्य कहते हैं।

कंचुकी —

'' अन्त:पुर:चरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वित: '।

सर्वकार्यार्थकुशल: कंचुकीत्यभिधीयते ।।

अन्त:पुर में जाने वाले ,वृद्ध् , गुणवान, ब्राह्मण को जो सब कार्यों को करने में कुशल होता है उसे कंचुकी कहते हैं।

विदूषक —

कुसुमवसन्ताद्यभिध: कर्मवपुर्वेषभाषाद्यै: ।
हास्यकर: कलहरतिर्विदूषक: स्यात् स्वकर्मज्ञ: ।।

जो अपने कार्यों ,शारीरिक चेष्टाओं ,वेशभूषा और बोली आदि के द्वारा लोगो को हँसाता है ,कलह में प्रेम करता है और अपने हास्य के कार्य को ठीक जानता है, उसे विदूषक कहते है। कुसुम, वसन्त आदि उसके नाम होते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।

1• अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नायक दुष्यन्त है। ( )

2• अभिज्ञानशाकुन्तलम् का प्रधान रस वीर है। ( )

3• अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नायक पुरूवंश का है। ( )

4. नाटक में प्रयुक्त होने वाली सन्धियों की संख्या सात होती है। ( )

5• अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कथानक प्रख्यात है। ( )

2•7 सारांश

इस इकाई में आपने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का अध्ययन किया और यह जाना कि इसकी मूल कथा महाभारत के आदि पर्व से ली गयी है। शाकुन्तलम् की कथावस्तु सरस है। नाटक के नायक दुष्यन्त , नायिका शकुन्तला एवं महर्षि कण्व की चारित्रिक विशेषता प्रेरणापद है । अभिज्ञान शाकुन्तलम् का नायक पुरूवंशोत्पन्न राजा दुष्यन्त है । दुष्यन्त धीरोदात्त नायक है । शकुन्तला अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की नायिका है। वह विधाता की अपरा सृष्टि है। वह विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है। उसका पालन पोषण महर्षि कण्व के द्वारा तपोवन के प्राकृतिक वातावरण में

किया गया है। महर्षि कण्व का चरित्र अनुकरणीय एवं आदर्श चरित है। उनको 'काश्यप' नाम से भी जाना जाता है। वह एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी तथा महापुरूष है । वह तपस्वी, दयालु,पितृ स्नेह से परिपूर्ण,सवर्ज्ञ एवं लौकिक व्यवहार के ज्ञाता हैं। इसके साथ ही नाटक की कसौटी पर यह खरा उतरता है। नाटक में प्रयुक्त होने वाली पारिभाषिक शब्दावली को भी आपने जाना।

2•8 शब्दावली

अरण्य	जंगल
तनया	पुत्री
वैक्लव्यं	व्याकुलता
परिहास	हँसी मजाक
अनिर्वचनीय	जिसके बारे में कुछ कहा न जा सके
सिंह शावक	शेर का बच्चा
उपालम्भ	उलाहना
तूलिका	कूँची
मृग	हिरण
मुद्रिका	अंगूठी

2•9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 —

1• पृष्ठ संख्या 3 पर देखें।

2• पृष्ठ संख्या 5 पर देखें।

अभ्यास प्रश्न 2 —

क (4) ख (2) ग (2) घ (3) ङ (3)

अभ्यास प्रश्न 3 —

1• हाँ

2• नहीं

3• हाँ

4• नहीं

5• हाँ

2•10 सन्दर्भ पुस्तक सूची

1• संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

2• नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी ।

3• अभिज्ञानशाकुन्तलम्, तरिणीश झा ,चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी ।

4• अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डा0 शिवबालक द्विवेदी , ग्रन्थम प्रकाशन ।

2•11 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

1• संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

2• नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी ।

3• अभिज्ञानशाकुन्तलम्, तरिणीश झा ,चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी ।

4• अभिज्ञानशाकुन्तलम्, डा0 शिवबालक द्विवेदी , ग्रन्थम प्रकाशन ।

2•12 निबन्धात्मक प्रश्न

1• अभिज्ञानशाकुन्तलम् का कथासार लिखिये ।

2• दुष्यन्त का चरित्र चित्रण कीजिये ।

3• शकुन्तला का चरित्र चित्रण कीजिये ।

4• कण्व का चरित्र चित्रण कीजिये ।

5• अभिज्ञानशाकुन्तलम् का नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से मूल्यांकन कीजिये ।

इकाई .3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)

इकाई की रूपरेखा :

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक श्लोक संख्या 1 से 15 तक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)
3.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक श्लोक संख्या 16 से 30 तक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक व उपयोगी पुस्तकें
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

नाट्यशास्त्र के इतिहास में अभिज्ञान शाकुन्तलम् एक अनुपम रचना है। इसके पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि नाटक क्या है, इसका उद्भव एवं विकास कैसे हुआ ?

नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार द्वारा बड़े ही कलात्मक ढंग से राजा दुष्यन्त को रंग मंच पर लाकर प्रवेश कराया गया है,जहा तपस्वी कन्या शकुन्तला को देखकर राजा उसके प्रति आकर्षित होता है तथा उसके सम्बन्ध मे सत्य का अन्वेषण करता है। प्रस्तुत इकाई में विस्तार से इन सब बातो का विश्लेषण प्रस्तुत है

इस इकाई के अध्यनोपरान्त आप अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रथम अंक की विशेषताओं, कालिदास की नाट्य शैली आदि के सम्बन्ध मे बता सकेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बतला सकेंगे कि -

- इस नाटक का नान्दी का स्वरूप क्या है।
- संवादो के अध्ययन से व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- इस नाटक के अध्ययन से काव्य के प्रयोजनों की प्राप्ति कर सकेंगे।
- अभिज्ञान शाकुन्तलम् प्रथम अंक में किस छन्द की बहुलता है ।
- अभिज्ञान शाकुन्तलम् प्रथम अंक में किन-किन रसों का प्रयोग है।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक की क्या विशेषता है।

3.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथमअंक, श्लोक संख्या 1 से 15 तक

या सृष्टिः स्त्रष्टुराद्या बहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री,
ये द्वे कालं विधत्त : श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः,
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ।1।

अन्वय- या स्त्रष्टुः आद्या सृष्टिः,या विधि हुतं हविः वहति,या च होत्री,ये द्वे कालं विधत्तः याश्रुतिविषयगुणा विश्वं व्यप्यस्थिता, यां सर्वबीजप्रकृतिः इति आहुः यया प्राणिनः प्राणवन्तः,ताभिःप्रत्यक्षाभिः अष्टाभिः तनुभिः प्रपन्नः ईशः वः अवतु ।।1।।

अर्थ - जो ब्रह्मा की प्रथम रचना है, (अर्थात् जल रूपी मूर्ति) जो नियमोक्त प्रकार से दृव्य पदार्थो को ढोने वाली है, (अर्थात् अग्नि रूप मूर्ति) जो दोनो काल (समय) को विभाजित करते है, (अर्थात् सूर्य और चन्द्र रूपी मूर्तियाँ) जो श्रवण का विषय (शब्द रूप गुणवाली) पूरे विश्व को आच्छादित किया है, (अर्थात् आकाश रूपी मूर्ति) जिसको सभी प्रकार के बीजो का उद्गम माना गया है, (अर्थात् पृथ्वी रूपी मूर्ति) और जिसके द्वारा सभी प्राणी जीवन धारण करते है (अर्थात् वायु रूपी मूर्ति) उन प्रत्यक्ष अष्ट मूर्तियों से समन्वित भगवान शिव आप सभी दर्शको एवं सामाजिको की रक्षा करें।

व्याख्या – महाकवि कालिदास परम्परानुसार ग्रन्थारम्भ को प्रथमतः भगवान शिव की आठ मूर्तियाँ को बतलाते हुऐ त्रिविध मंगलाचरणों में आर्शीवादात्मक मंगलाचरण का पाठ किया है जिसको नान्दी पाठ भी कहते है।इन आठ मूर्तियों का वर्णन विष्णु पुराण तथा वायु पुराण मे भी प्राप्त होता है। जो निम्न है।

1 - सूर्यो जलं मही वह्विर्वायुराकाशमेव च ।
दीक्षितो ब्राहमणः सोम इत्येतास्तनवः स्मृताः ।। विष्णु पुराण ।।
2 - भूमिरापोऽनलो वायुरात्मा व्याम रविः शशिः
इत्यष्टों सर्वलोकानां प्रत्यक्षा हर मूर्तयः ।। वायुपुराण ।।

प्रस्तुत श्लोक में ‘‘या’’ पद सर्वनाम है जो भगवान शंकर के जटामूर्ति के लिए आया है। स्त्रष्टुः-ब्रहमा की , आद्या सृष्टि - पहली सृष्टि। ब्रहमा की पहली रचना जल है, जिसका वर्णन मनुस्मृति और तैतिरीय ब्राह्मण में भी प्राप्त होता है। विधि हुतं हवि वहति - विधि पूर्वक किये गये हव्य पदार्थो को ढोने वाली अर्थात् अग्निमूर्ति देवों के पास हवन की गयी सामग्री को पहुचाने का कार्य करता है। या च होत्री-और भगवान शिव की यजमान रूपी मूर्ति है। ये द्वे कालं विधन्तः- जो दो मूर्तियाँ दो काल का विभाजन कर दिन और रात्रि का निर्माण करते है अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र रूपी मूर्तियाँ। श्रुति विषयगुणा या विश्वं व्याप्य स्थिता - श्रुति का विषय शब्द तथा शब्द गुण वाली आकाश जो विश्व को परिव्याप्त कर स्थित है, अर्थात् आकाश रूपी मूर्ति।

याम् सर्वबीजप्रकृतिः इति आहुः जिसको सभी प्रकार के बीजो का मूल कारण कहा गया है अर्थात् पृथ्वी रूपी मर्ति। यया प्राणिनः प्राणवन्तः- जिसके द्वारा जीव अपना जीवन धारण करते है अर्थात् वायु रूपी मूर्ति। ताभि उन, प्रत्यक्षाभिः प्रत्यक्ष प्रमाणों से ज्ञेय, अष्टाभिः तनुभिः- आठ मूर्तियों से, प्रपन्नः समन्वित, ईशः-भगवान शिव,वः अवतु आप सामाजिक लोगों की रक्षा करें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:- सृष्टा= सृज+तृच+ । आद्या= आदौ भवा आद्या आदि =यत्+टाप । विधिना हुतम्(तृ0त.) हु+क्त=हुतम् ।होत्री =हु+तृच्+ङीप्=श्रुति श्रूयते अनया इति श्रुति श्रु+क्तिन्। प्राणिनः = प्राणाः सन्ति एषाम् इति प्राण +इति।प्राणवन्तः प्राण+मतुप्। प्रपन्नः=प्र+पद्+क्त । (नान्द्यन्ते) - यह पत्रावली नान्दी है। इसमें कथावस्तु की सूचना दी गयी है। नान्दी पाठ के पश्चात्।

सूत्रधार:- (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये,यदि नेपथ्यविधानमवसितम् इतस्तावदागम्यताम् ।

सूत्रधार.- (नेपथ्य की ओर देखकर) आर्ये यदि वेश धारण करने का कार्य पूर्ण हो गया हो तो यहॉ आओ।

नटी:- (प्रविष्य) आर्य पुत्र,इयमस्मि।

नटी (प्रवेश कर) आर्य पुत्र। यह मैं (उपस्थित)हूँ।

सूत्रधार:-आर्ये अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम् ।अद्य खलु कालिदासग्रथित् वस्तुनाभिज्ञानशाकुन्तलनाम धेयेन नवेन नाटकेनोप स्थात व्यमस्याभिः। तन्प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः।

सूत्रधार- आर्ये! यह विद्वानों की आधिक्य वाली सभा है ।आज हमे कालिदास द्वारा विरचित कथावस्तु वाला अभिज्ञानशाकुन्तलम् नामक नवीन नाटक का अभिनय करना है ।इसलिए प्रत्येक पात्र के अभिनय कला के सफलता के विषय में सावधान रहना है।

नटी:- सुविहित प्रयोगतयार्यस्य न किमपि परिहास्यते।

नटी- आपके सम्यक् रूप से की गयी व्यवस्था के कारण कोई त्रुटि नही हो सकती।

सूत्रधार:- आर्ये! कथयामि ते भूतार्थम्-

सूत्रधार- आर्ये मैं तुमसे यथार्थ ही कहता हूँ।

आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेत: ।। 2

अर्थ- विद्वानों को जब तक सन्तोष न हो जाये तब तक मैं अभिनय कला को कृतार्थ नहीं मानता। सबलता से भी शिक्षितो का अन्त:करण अपने (विषय)में विश्वासरहित होता है **। 2।।**

नटी – आर्य, एवमेतत्। अनन्तरकरणीयमार्य आज्ञापयतु।

नटी – आर्य ऐसा ही है, अब आगे जो करना है उसका आदेश दें।

सूत्रधार: - किमन्यदस्या: परिषद: श्रुतिप्रसादनत: । तदिदमेव तावदचिरप्रवृत्तमुपभोगसमं ग्रीष्म समयमधिकृत्यगीयताम्। सम्प्रति हि –

सूत्रधार: - इस सभा के श्रवणों को सुख देने के शिवाय और क्या ? अत: शीघ्र ही प्रवृत्त हुए उपभोग के योग्य ग्रीष्म ऋतु को लक्ष्य करके गाओ। क्योंकि इस समय तो -

सुभगसलिलावगाहाः पाटल संन्सर्ग सुरभिवनवाताः।

प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ।।3।।

अन्वयः - सुभगसलिलावगाहाः,पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः, प्रच्छायसुलभनिद्राः, दिवसा: परिणाम रमणीया: ।

अर्थः- जल मे स्नान करना सुखकर लगता है। पाटल (गुलाब) पुष्पो के सन्सर्ग से वन की वायु सुगन्धित होता है। घनी छाया में निद्रा सरलता से आ जाती है। दिन सांयकाल में रमणीय होते हैं।

व्याख्याः- सुभग-मनोहर,सुन्दर सुखकर । सलिलावगाहा: = जल मे स्नान, पाटल संसर्ग = पाटल (गुलाब) के संसर्ग से सुरभिवनवाता: = सुगन्धित वायु वाला, प्रच्छाय = घनी छाया में सुलभ निद्रा = नीद आ जाने वाल, दिवसा = दिन, परिणामरमणीयाः संध्या का समय सुन्दर लगता है । आर्या छन्द है। परिकर,स्वभावोक्ति एवं अनुप्रास अलंकार है।

व्याकरणात्मक टिप्पणीः- सुभगसलिलावगाहाः = सुभगः सलिले अवगाहः येषु ते। अव+ गह+ घञ् = अवगाहः । पाटलसंसर्गसुरभि वनवाता = पाटलानां संसर्गः तेन सुरभयः पाटल संसर्ग सुरभयः बनवाता येषु ते पाटल संसर्ग सुरभि बनवाता। रमणीया रम् + णिच् +अनीयर्।

नटीः- तथा (इतिगायति)

नटी - ठीक है (गीत गाती है)

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।

अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ।। 4 ।।

अन्वयः- दयमानाः प्रमदा भ्रमरैः ईषत् ईषत् चुम्बितानि सुकुमारकेसरशिखानि शिरीषकुसुमानि अवतंसयन्ति।

अर्थः- मतवाली युवतियॉ दया करती हुई भ्रमरों के द्वारा थोडा-थोडा आस्वादित् कोमल केसरो के अग्रभाग वाले शिरीष के पुष्पों को कान का आभूषण बना रही है।

व्याख्याः- दयमाना: कृपा करती हुयी , दयामयी ,प्रमदा = रूप एवं यौवन के कारण मतवाली बनी हुयी स्त्रियॉ। भ्रमरैः =भौरों द्वारा, ईषत् = ईषत् कुछ-कुछ, चुम्बितानि = चूमे गये । सुकुमार केसर शिखानि = कोमल केसर के अग्रभाग वाले । शिरीषकुसुमानि = शिरीष के पुष्पो को । अवतंसयान्ति= कानो का आभूषण बना रही हे। इसमे नारी सुलभ कोमलता का वर्णन है इसमें उद्गाथा छन्द है तथा काव्यलिंग नामक अलंकार है।

व्याकरणात्क टिप्पणी:- (सुकुमारकेसरशिखानि = सुकुमारा: केसराणां शिखाः येषां तानि तत्पुरूष बहुब्रीहि (समास)अवतंसयन्ति= अवतंस+णिच्+लट्।

सूत्रधार:- आर्ये,साधु गीतम् ।अहो रागबद्वचित्तवृत्तिरा लिखित इव सर्वतो रंगः।तदिदानीं कतमत्प्रकरणमाश्रित्यैनमाराधयाम: ?

सूत्रधार- आर्ये!अच्छा गीत सुनाया अहा!तुम्हारे गीत के स्वरके प्रभाव से यह रंगशाला चारो ओर चित्रलिखित सी प्रतीत हो रही है।सम्प्रति किस प्रकरण को लेकर इस सभा को सन्तुष्ट करे।

नटी- (नन्वार्यमिश्रै:प्रथममेवाज्ञप्तमाभिज्ञानशाकुन्तलं नामापूर्व नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति।

नटी - आपने प्रारम्भ में ही कहा था कि अभिज्ञानशाकुन्तलम नाम का अपूर्व नाटक खेला जाय।

सूत्रधार -आर्ये!सम्यगनुबोधितोऽस्मि। अस्मिन्क्षणे विस्मतं खलु मया।कुतः-

सूत्रधार आर्ये ठीक स्मरण कराया। मै तो इस समय भूल गया था। क्योंकि -

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः

एष राजेव दुष्यन्तः सारंगेणातिरंहसा ।।5।।

अन्वय:-तव हारिणा गीतरागेण अतिरंहसा सारंगेण एष राजा दुष्यन्त इव प्रसभं हृतः अस्मि।

अर्थ:- तुम्हारे गीत के सुन्दर राग के कारण मै वैसे ही बल पूर्वक खीच लिया गया हू, जैसे (बल पूर्वक) द्रुतगामी मृग के द्वारा ये राजा दुष्यन्त खींच लिये गये हैं।

व्याख्या:-हारिणा के दो अर्थ है- 1. गीत राग के पक्ष में 2. मृग के पक्ष में
1. सम्यक रूप से मन को आकृष्ट करने वाला
2. दुष्यन्त को सेना से दूर ले जाने वाला। प्रभसं हृतः के भी दो अर्थ है 1.अत्यन्त आकृष्ट किया गया 2.बल पूर्वक सेना से दूर ले जाया गया। इस श्लोक में काव्यलिंग तथा उपमा अलंकार है। अनुष्टुप छन्द है।

(इति निष्क्रान्तौ) दोनो रंग मंच से चले जाते है।

(प्रस्तावना) - (प्रस्तावना की समाप्ति)

(ततः प्रविशति मृगानुसारी सशरचापहस्तो राजा रथेन सूतश्च)

तदन्तर रथपर आरूढ़ हाथ मे धनुष और बाण लिए हिरण का पीछा करता हुआ राजा सारथि के साथ रंग मंच पर प्रवेश करता है।

सूत - (राजानं मृग च अवलोक्य) आयुष्मन्।

(सारथि) (राजा और मृग को देखकर)आयुष्मन्-

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।

मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम्।। 6।।

अन्वय - कृष्णसारे अधिज्यकार्मुके त्वयि च चक्षुः ददत् मृगानुसारिणं साक्षातपिनाकिनम् पश्यामि इव।

अर्थ - (इस) कृष्णसार (मृग) और धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाये हुए आप पर दृष्टिपात करने वाला मैं (सूत) मानो मृग (रूपधारी यज्ञ) का पीछा करते हुए साक्षात् पिनाकधारी भगवान शंकर को देख रहा हूँ।

व्याख्या - कृष्णसारे = कृष्णसार नामक मृग (जो काला और चितकवरा होता है) अधिज्यकार्मुके = चढ़े डोरी वाले धनुष लिए। त्वयि च = आप पर चक्षुः ददत् = दृष्टिडालता हॅू। मृगानुसारिणं = मृग का पीछा करने वाले। साक्षात् पिनाकिनम् = साक्षात पिनाक नामक धनुष को धारण करने वाले अर्थात् भगवान शिव को पश्यामि इव = देखा रहा हूँ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – कृष्णसारः = कृष्णश्च सार: शबलश्च। अधिज्यकार्मुके =अधिगता ज्या इति अधिज्यम्, अधिज्यकार्मुक यस्य तस्मिन्। ददत् =दा धातु शतृ प्रत्यय। (पिनाक भगवान शिव के धनुष का नाम था) प्रस्तुत राजा की अप्रस्तुत शिव से एकत्व की सम्भावना की गई है अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है। दृष्टी एक है परन्तु दो स्थानो पर उसका सम्बन्ध दिखाये जाने के कारण विषमलंकार भी है। इसमें अनुष्टुप छन्द का प्रयोग किया गया है।

राजा - सूतः दूरममुना सारंगेण वयम् आकृष्टा। अयं पुनरिदानीमपि -

राजा सारथि! यह हिरण तो हम लोगो को दूर तक खीच लाया। यह इस समय भी-

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।7।।

अन्वय - पश्य , अनुपतति स्यन्दने मुहुः ग्रीवाभङ्गाभिरामं बद्धदृष्टि: शरपतन भयात् भूयसा पश्चार्धेन पूर्वकायं प्रविष्टःश्रमविपृतमुखभ्रंशिभिः अर्धावलीढैः दर्भैः कीर्णवर्त्मा उदग्रप्लुतत्वात् वियति बहुतरं उर्व्यां स्तोकं प्रयाति।

अर्थ - देखो पीछे दौड़ते हुए रथ पर बारबार ग्रीवा को मोड़कर मनोहर दृष्टी से देखता हुआ , वाण गिरने के भय से शरीर के पिछले हिस्से को अगले भाग में समेटता हुआ, और (दौड़ने) के परिश्रम के कारण खुले मुख से गिरने वाले आधे चबाये गये कुशो से मार्ग को व्याप्र करता हुआ , ऊँची छलांग लगाने के कारण आकाश मे ज्यादा तथा पृथ्वी पर कम दौड़ रहा है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे भयातुर मृग के स्वाभाविक भावों का वर्णन करते हुए राजा के मुख से कवि कहलवाता है कि (सारथि) पश्य = देखो अनुपतति = पीछे आते हुए, स्यन्दने = रथ पर, मुहुः =बारबार, ग्रीवाभंगामिरामं = गर्दन को मोड़कर सुन्दर ढंग से, बद्धदृष्टि: = एकटक दृष्टि से, शरपतन भयात् = शरीर के पिछले हिस्से को,पूर्वकायं = अगले शरीर के हिस्से में प्रविष्ट: प्रवेश कराया हुआ अर्थात् समेटता हुआ , श्रमवितृतमुखभ्रंशिभि: = दौड ने के श्रम के कारण खुले मुख से गिरे हुए, अर्धावलीढै:= आधा चवाये गये , दर्भैः = कुशों से कीर्णवर्त्मा = मार्ग मे व्याप्त काता हुआ, उदग्रप्लुतत्वात् = ऊँची छलांग लगाने के कारण, वियति = आकाश मे, बहुतर = अत्यधिक, उर्व्यां = पृथ्वी पर,स्तोकम् प्रयाति = दौड़ रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अनुपतति = अनु पत् लट् लकार शतृ प्रत्यय = अनुपतन्, तस्मिन। स्यन्दने = स्यन्द् धातु ल्युट कर्तरि। ग्रीवाभंगाभिरामं = ग्रीवायाः भंग (ष.त.) तेन अभिरामं साधु इस श्लोक में भयानक रस का वर्णन है तथा स्वाभावोक्ति, गूढोत्प्रेक्षा तथा रसनाकाव्यलिंग अलंकार है। यहाँ स्रग्धरा छन्द है।

तदेष कथमनुपतत एव मे प्रयत्नप्रेक्षणीयः संवृतः। (आश्यर्च पूर्वक) तब यह कैसे मेरे पीछे आते रहने पर भी अत्यन्त प्रयत्न से दिखई पड़ रहा है।

सूत - आयुष्मन! उद्घातिनी भूमिरिति मया रश्मिसंयमनाद्रथस्य मन्दीकृतो वेगः। तेन मृगएष विप्रकृष्टान्तरः संवृतः। संप्रति समदेशवर्तिनस्ते न दुरास दो भविष्यति।

सारथि - चिरंजीव ! ऊँची-नीची भूमि के कारण मैने रस्सी खीचकर रथ की तीव्रता को कम कर दी थी। इसी कारण यह हिरण दूर चला गया। अब आप का रथ समतल भूमि पर हैं। अब यह आप के लिए दूर नही होगा।

राजा - तेन हि मुच्चतामभीषवः।

राजा - तो लगाम ढीली कर दो।

सूत - यदाज्ञापयत्यायुष्मान् (रथवेगं निरूप्य)

सूत – आपकी जैसी आज्ञा, (रथ के वेग को बढ़ाने का अभिनय करके)

आयुष्मन! पश्य-पश्य चिरंजीव देखे-देखे -

मुक्तेषु रश्मिषु निरायत पूर्वकाया
निष्कम्पचामरशिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः।
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः।।8।।

अन्वय - रश्मिषु मुक्तेषु अमी रथ्याःनिरायतपूर्वकायाः निष्कम्पचामरशिखाः निभृतोर्ध्वकर्णाः आत्मोद्धतैः अपि रजोभिः अलङ्घनीयाः मृगजवाक्षमयाइव धावन्ति।

अर्थ - रस्सी को ढीली कर देने पर ये घोड़े जिनके शरीर का अगला भाग अधिक फैला हुआ हैं चामर (कलगी) का अगला भाग निश्चल है और कान उपर के तरफ खड़े है अपने ही खुरों द्वारा उडाइ गयी धूल उनपर नही पड पा रही है मानो मृग से गति को न सहन करते हुये दौड़ रहे है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में सारथि से दौड़ते हुये घोड़ो की स्वाभाविक अवस्था का चित्रण हुआ है- रश्मिषु = रस्सियों को मुक्तेषु =ढीली किये जाने पर, अमी = यह, रथ्या = रथ के अश्व निरायतपूर्वकायाः = फैले हुये अग्र भाग वाले , निष्कम्पचामरशिखा = निश्चल चामर शिखा वाले, निभृतोर्ध्वकर्णाः = सीधे खडे हये कानो वाले, आत्मोद्धतैः= अपने द्वारा उड़ायी गई, अपि = भी रजोभिः = धूल, अलङ्घनीया = न लांघने योग्य, मृगजवाक्षमयाइव = माना दिरण के तीव्रगतिको न सहते हुये, धावन्ति = दौड़ रहे है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - मुक्तेषुः = मुच् + क्त प्रत्यय। निरायतपूर्वकाया कायस्य पूर्वम् पूर्वकायः, नितरां आयतः पूर्वकामः येषा ते (बहुबीहि स0) यहाँ घोड़ो के दौड़ने का स्वाभाविकः वर्णन होने के कारण स्वभावोक्ति अलंकर तथा अक्षमया इव मे हेतुत्प्रेक्षा है। यहाँ वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग है।

राजा – सत्यम् अतीत्य हरितो हरींश्च वर्तन्ते वाजिनः। तथा हि-

राजा - अवश्य, सूर्य और इन्द्र के घोड़ो से भी बढकर ये घोड़े है। क्योंकि -

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यर्द्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यदवक्रंतदपि समरेखं नयनयो -
र्न मे दूरे किन्चित्क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्।।9।।

अन्वय - रथजवात् यद आलोके सूक्ष्मम् तत् सहसा विपुलतां व्रजति, यत् अर्द्धे विच्छिन्नं कृतसन्धानम तत् इव भवति, यत् प्रकृत्या वक्रम् तत अपि नयनयोः समरेखं क्षणम् अपि किंचित् न मे दूरे, न पार्श्वे (अस्ति)।

अर्थ - रथ की तीव्रता के कारण जो वस्तु देखने में छोटी होती थी वह एकाएक बड़ी हो जा रही है,

अर्थ - जो आधे से कटी दिखाई देती थी वह जुड़ी हुयी दिखाई पड़ रही है ; जो स्वाभाविक रूप से टेढी है वह नेत्रों के सामने सीधी दिखाई पड़ रही है; क्षण भाग के लिए भी कोई (वस्तु) न मुझसे दूर रह पाती है और न ही पास।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में रथ के गति की तीव्रता के कारण वस्तुये कैसी दिखलाइ दे रही है। इसका वर्णन किया गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - रथजवात् = रथस्य जवः रथजवः तस्मात् (ष.त) आलोके = आ+ लोकृ+स भावे। विच्छिन्नम्= वि छिद+क्त। प्रस्तुत श्लोक में स्वभावोक्ति, विरोधाभास, उत्प्रेक्षा और यथासंख्य अलंकारहै। शिखरिणी छन्द हैं।

सूत पश्यैन व्यापाद्यमानम् (इति शरसन्धानं नाटयति)।

सारथि ! देखो इसको मार रहा हूँ। (बाण चलाने का अभिनय करता है)।

(नेपथ्ये)- (नेपथ्य से)

भो भो राजन् ! आश्रममृगोऽयं, न हन्तव्यो न हन्तवयः। हे राजन्! यह मृग आश्रम का है। इसे न मारिए न मारिए।

सूत - (आकर्ण्यावलोक्य च) आयुष्मन्! अस्य खलु ते वाणपातवर्तिनः कृष्णसारस्यान्तरे तपस्विन उपस्थिताः।

सारथि - (सुनकर और देखकर) चिरंजीव! आपके वाण के लक्ष्य बने हुए इस कृष्णसार मृग के मध्य तपस्वी (विघ्न के रूप मे) उपस्थित हो गये हैं।

राजा - (ससंभ्रमम्) तेन हि प्रगृहयन्तां वाजिनः।

राजा: (घबराहट के साथ) तो घोड़ो के लगाम खीचों।

सूत - तथा। (इति रथं स्थापयति) ठीक है।

सारथि - (रथ को रोक देता है) (ततः प्रविशत्यात्मनातृतीयो वैखानसः) तब (रंगमंच पर) दो शिष्यों के साथ एक तपस्वी प्रवेश करता है।

वैखानसः - (हस्तमुद्यभ्य) राजन् ! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।

तपस्वी - (हाथ उठाकर) राजन! यह मृग आश्रम का है, इसे न मारिए न मारिए।

तत्साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।

आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि ॥10॥

अन्वय - तत् साधुकृतसन्धानं सायकं प्रतिसंहर। वः शस्त्रं आर्तत्राणाय, अनागसि प्रहर्तुम् न।

अर्थ - इसलिए भली प्रकार से लक्ष्य पर साधे गये वाण को उतार लीजिए। (क्योकि) आपके शस्त्र कष्ट मे पड़े हुए लोगो की रक्षा के लिए है; (किसी) अपराध हीन पर प्रहार करने के लिए नही।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा के कर्तव्य का बोध कवि ने तपस्वी के माध्यम से कराते हुए कहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - साधुकृतसन्धानं = साधुनां कृतं सन्धानं यस्मिन् तम् (बहु. स.) तम्। सायकः = सो + ण्वुल्+ अक। इस पद्य में उत्तरार्धपूर्वार्द्ध का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। अनुष्टुप छन्द है।

राजा - एष प्रतिसंहृतः। (इति यथोक्तं करोति)

राजा - यह उतर गया। (वाण उतारने का अभिनय करता है)।

बैखानस - सदृशमेतत्पुरूवंशप्रदीपस्य भवतः।

तपस्वी - पुरूवंश के दीपक यह कार्य आपके अनुरूप है।

जन्म यस्य पुरोर्वशे युक्तरूपमिदं तव।

पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि ।। 11 ।।

अन्वय - यस्य पुरोवंशे जन्मतव इदं युक्त रूपम्। एवं गुणोपेतं चक्रवर्तिनं पुत्रम् आप्नुहि।

अर्थ - जो पुरूवंश में जन्म लिया है, यह आपके लिए उचित ही है। ऐसे ही गुणसम्पन्न चक्रवर्ती पुत्र आपको प्राप्त हो।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में तपस्वी राजा को आशीर्वाद देता है और कहता है कि आपको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त हो। इस पद्य में काव्यलिग अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है।

इतरौ - (बाहू उद्यम्य) सर्वथा चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि।

अन्य तपस्वी - (हाथ उठाकर) सर्वथा सम्राट पुत्र को प्राप्त करें।

राजा - (सप्रणामम्) प्रतिगृहीतम्।

राजा - (प्रणाम् करता हुआ) तपस्वियो का आशीर्वाद ग्रहण किया।

वैखानस -राजन्! समिदाहरणाय प्रस्थितावयम् । एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः, प्रविश्य प्रतिगृहयतामातिथेयः सत्कार:। अपि च -

तपस्वी - राजन! समिधा प्राप्त करने के लिए हम सब निकले है। यह मालिनी नदी के तट पर कुलपति कण्व का आश्रम दिखाई दे रहा है। यदि किसी अन्य कार्य में अवरोध न हो तोआश्रम में प्रवेश कर आतिथेय स्वीकार करे। साथ ही -

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्ना: क्रिया: समवलोक्य।
ज्ञायसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणाङ्क इति ।।12।।

अन्वय - तपोधनानां प्रतिहतविघ् नाः रम्याः क्रियाः समवलोक्य मौर्वीकिणांकः मे भुजः कियद् रक्षति इति ज्ञास्यसि।

अर्थ - तपस्वियों की मनोहर तथा निर्विघ्न क्रियाओं को भली प्रकार से देखकर आप जान पायेगे कि प्रत्यंचा के आघात से युक्त चिन्ह वाली मेरी भुजायें कितनी रक्षा कर रही है इसे जानेगें।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में तपस्वियों द्वारा आश्रम में प्रवेश का दूसरा कारण बताता है कि तपस्वियों की क्रिया निर्विघ्न चल रही है इस भी जानकारी आप को हो सकेगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - तपोधनानां = तपः एव धनं येषां तेषाम् (व.स.) प्रतिहतविघ्ना = प्रतिहताः विघ्ना: यासां ता: (व.स.)। इस पद्य में काव्यलिंग, वृत्यानुप्रास, नामक अलंकार है, आर्या छन्द है।

राजा - अपि संनिहितोऽत्र कुलपतिः ?

राजा - क्या कुलपति कण्व (आश्रम में) उपस्थित है।

वैखानस - इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितु सोमतीर्थं गतः।

तपस्वी - शीघ्र ही अपनी पुत्री शकुन्तला को अतिथि सत्कार हेतु नियुक्त कर, उसके विपरीत भाग्य के शमन के लिए सोमतीर्थ गये है।

राजा - भवतु। तां द्रक्ष्यामि। सा खलु विदितभक्तिं मां महर्षेः कथयिष्यति।

राजा - अच्छा।उसी के दर्शन करूगाँ। वह निश्चय ही मेरी भक्ति को जानकर महर्षि से निवेदन कर देगी।

वैखानस - साधयामस्तावत्। (इति सशिष्यो निष्क्रान्तः)

तपस्वी - तो हम सब चलते हैं। (इस प्रकार शिष्यों के साथ रंग मंच से चले जाते है)

राजा - सूत! नोदयाश्वान्। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे।

राजा - सारथि ! घोड़ो को हाको। पवित्र आश्रम का दर्शन कर अपने को हम पवित्र करें।

सूत्रः- यदाज्ञापयत्यायुष्मान्। (इति भूयो रथवेगं निरूपयति)

सारथी:-चिरंजीव की जैसी आज्ञा। (इस प्रकार पुन: रथ चलाने का अभिनय करता है)

राजा – (समन्तादवलोक्य) अगधितोऽपि ज्ञायतेऽयमाभोगस्तपोवनस्येति।

राजाः-(चारो ओर देखकर) सारथि। बिना सूचित किये भी यह मालूम पड रहा है कि यह आश्रम का प्रान्त भाग है।

सूत्रः- कथमिव।

सारथि:- कैसे?

राजा:- किं न पश्यति भवान् ? इह हि -

राजा:- क्या आप देख नही रहे है ? यहाँ पर -

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः

प्रस्निग्धाः क्वचिदिऽगुंदी फलमिदः सूच्यन्त एवोपलाः।

विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा -

स्तोयाधारपयाश्च वल्कलशिखानिष्यन्देरेखाऽकिंताः ।। 13।।

अन्वय- (क्वचिद्) तरूणां अध: शुकगर्भकोटर मुखभ्रष्टाः नीवाराः, (दृश्यन्ते)क्वचित् इंगुदीफलमिदः प्रस्निधाः उपला: सूच्यन्ते एव ।विश्वासोपगमात् अभिन्नगतय: मृगा: शब्दं सहन्ते (क्वचित् च)तोयाधारपथाः वल्कलशिखानिष्यन्द रेखांकताः (दृश्यन्ते)

अर्थ:- (कही) वृक्षो के नीचे शुको के घोंसलो मे बैठे उनके बच्चो के मुख से गिरे हुए नीवार नामक धान (दिखाई दे रहे है), कही इंगुदी नामक फलो को तोड़ने वाले चिकने पत्थर दिखाई पड़ रहे है कही अत्यधिक विश्वास होने के कारण अपने स्वाभाविक गति का त्याग करते हुए हिरण रथ के शब्द को सहन कर रहे है, और तालाब के मार्ग वस्त्रों के छोर से गिरने वाले जल विन्दुओं से रेखांकित है।

व्याख्या:- प्रस्तुत श्लोक मे आश्रम के प्रान्त भाग का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि इस आश्रम

के मध्य भाग मे नीवार के धान, इंगुदी फल को तोड़ने से चिकने पत्थर, विश्वासयुक्त मृग एवं तालाब के मार्ग वस्त्रों के छोर से गिरने वाले जल विन्दुआो से रेखांकित है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टा = शुका गर्भेमध्ये येषां तानि च कोटराणि, शुकगर्भकोटराणि, तेषां मुखानि = शुकगर्भकोटरमुखानि तेभ्यो भ्रष्टाः (बहु.स.)। इस श्लोक में स्वाभावोक्ति, काव्यलिंग , वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास नामक अलंकार हैतथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

सूत - सर्वमुपपनम्।

सारथि - सब कुछ ऐसा ही है।

राजा - (स्तोकमन्तर गत्वा) तपोवननिवासिनामुपरोधो मा भूत। एतावत्येव रथं स्थापय यावदवतरामि।

राजा - (थोड़ी दूर जाकर) तपस्वियों को कोई विघ्न न हो। इसलिए यही रथ को रोको जिससे मैं उतरता हूँ।

सूत - धृता प्रग्रहाः, अवतरत्वायुष्मन्।

सारथि - रस्सी खीच लिये है। चिरंजीव आप उतरे।

राजा - (अवतीर्य) सूत! विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम। इदं तावद् गृह्यताम। (इति सूतस्याभरणानि धनुश्चोपनीर्यापयति)।

सूत – यावदाश्रमवासिन: प्रत्यवेक्ष्याहमुपावेती तावदार्द्रपृष्ठा क्रियत्तां वाजिन:।

राजा - (उतरकर) सारथि! तपोवन में सादे वेष में जाना चाहिए। इसलिए यह आभूषण तथा धनुष आदि रखो। (इस प्रकार सारथि को आभूषण तथा धनुष व वाण दे देते है) सारथि! जबतक आश्रम वासियों का दर्शन कर लौटता हूँ तब तक घोड़ो को स्नान करा दो।

सूत - तथा (इति निष्क्रान्तः)
सारथि - ठीक है (इस प्रकार चला जाता है)।

राजा - (परिक्रम्यावलोकय च) इदं आश्रमद्वारम्। यावद् प्रविशामि । (प्रविश्य, निमित्तं सूचयन्)

राजा - (घूम कर तथा देखकर) यह आश्रम का मुख्य द्वार है। तो अन्दर चलता हूँ। (प्रवेश करते समय शुभ शकुन सूचित करते हुए)।

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।

अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।।14।।

अन्वय -इदं आश्रमपदं शान्तम्, बाहुः च स्फुरति इह अस्य फलं कुत:? अथवा भवितव्यानां सर्वत्र द्वाराणि भवन्ति।

अर्थ - यह आश्रम स्थान शान्त है और (मेरी दाहिनी) भुजा फड़क रही है। यहाँ इसका (भुजा स्फुरण का) फल कैसे सम्भव है ? अथवा घटित होने वाली घटनाओं के सर्वत्र स्थान हो जाते हैं।

व्याख्या:- प्रस्तुत श्लोक में आश्रम में प्रवेश करते समय राजा की दाहिनी भुजा फड़कती है, और दाहिनी भुजा फड़कने का फल वरांगना प्राप्ति है। राजा विचार करता है कि यह फल यहॉ कैसे सम्भव है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी:- शान्तम् = शा+णिच्+क्त। इस पद्य में विशेष कथन का सामान्य कथन के द्वारा समर्थन किये जाने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है तथा आर्या नामक छन्द है।

(नेपथ्ये) - इतः इतः सख्यौ। इधर आओ इधर।

राजा:- (कर्णं दत्वा) अये। दक्षिणेन बृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते । यावदत्र गच्छामि।(परिक्रम्यावलोक्य च) अयेः !एतास्तपस्विकन्यकाः स्वप्रमाणानुरूपैः सेचनघटैर्बालपादपेभ्यः प्रयोदातुमित एवांभिवर्तन्ते (निपुणं निरूप्य) अहो! मधुरमासां दर्शनात्जा:- (सुनकर) अरे। वृक्षो की वाटिका में दाहिनी ओर से कुछ वार्तालाप सुनाई पड़ रही है। तो मैं उधर ही चलता हू। (रंगमंच पर घूमकर तथा देखकर) अरे। ये तो तपस्वियों की कन्याये है जो अपने शक्ति के अनुरूप पौधौ को जल देने वाले घड़ो के साथ इधर ही आ रही है। (घ्यान से देखकर) आहा। इनका रूप बड़ा ही सुन्दर है।

शुद्वान्तदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनों यदि जनस्यः।

दूरीकृताः खलु गुणैरूद्यानलता वनलताभिः ।। ।5 ।।

अन्वय:-शुद्वान्तदुर्लभंइदं वपु: यदि आश्रमवासिनः जनस्यखलुउद्यानलताःवनलताभिःगुणै:दूरीकृताः।

अर्थ:- आश्रम में निवास करने वाले व्यक्तियों का सौन्दर्य यदि इस तरह का है तो निश्चित ही वन की लताओं ने अपने गुणो के द्वारा उद्यान की लताओं को तिरस्कृत कर दिया है।

व्याख्या:- प्रस्तुत श्लोक में राजा इन तपस्वी कन्याओं के अनुपम सौन्दर्य पर आश्चर्य करता हुआ कहता है कि वन में निवास करने वालों का इतना अलौकिक सौन्दर्य है।

अभ्यास प्रश्न 1 -

क. आश्रम में प्रवेश करते समय राजा दुष्यन्त का कौन सा अंग फड़कता है ?

1. बाहु 2. दाहिनी भुजा

3 पैर 4. ऑख

ख. राजा के अनुसार नीलकमल के पंखुड़ी के धार से किस लता को काटने की बात कही गयी है?

1. आम 2. इमली

3 शमी 4. सोमलता

4- सहकार .... वृक्ष के लिए आया है ?

ग-शकुन्तला को कौन परेशान कर रहा है ?

1- भौरा 2. मृग

3 - राजा 4. सखियॉ

3.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् प्रथम अंक श्लोक संख्या16 से 30 तक

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तप:क्षमं साधयितुं य इच्छति ।

ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ।। 16

अन्वय – य: ऋषि अव्याजमनोहरं इदं वपु: किल तप: क्षमं साधयितुम् इच्छति सध्रुवं नीलोत्पलधारया शमीलतां छेत्तुं व्यवस्यति ।

अर्थ- जो मुनि प्रकृति से ही सुन्दर इस शरीर को तपस्या में लगाना चाह रहे हैं वे सचमुच नीले कमल की कोमल पंखुड़ी की धार से शमी का कठोर लता काटने पर तत्पर हैं ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – तप: - तपस: क्षमम् तप: क्षमम् (षष्ठी तत्पु0) । निदर्शनालंकार,उत्प्रेक्षा ,विभावना अलंकार है तथा वंशस्थ छन्द है ।

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी ,

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतिनाम् ।। 17 ।।

अन्वय – शैवलेन अपि अनुविद्धं सरसिजं रम्यम्(वर्तते) मलिनमपि हिमांशौ लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति, वल्कलेनापि इयं तन्वी अधिकमनोज्ञा (विद्यते) मधुराणां आकृतिर्नाम किमिव हि मण्डनं न भवति।

अर्थ- जैसे शैवाल से घिरा होने पर भी कमल सुन्दर होता है और चन्द्रमा में दिखाई देने वाला कलंक भी उसकी शोभा को ही बढ़ाता है वैसे ही यह सुन्दरी भी वल्कल वस्त्रों को धारण करके भी अत्यन्त सुन्दर लग रही है। यह सत्य है कि मनोहर शरीर के लिए क्या वस्तु अलंकरण नहीं है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – अलंकार: -अलं क्रियते अनेन इति अलंकारः , तस्य श्रियम् (तत्पु0)।

यहॉ अर्थान्तरन्यास एवं प्रतिवस्तूपमा अलंकार एवं मालिनी छन्द है।

अधर: किसलयराग: कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।

कुसुमिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्नद्धम्।। 18।।

अर्थ – अधरोष्ठ नवपल्लव के तुल्य लाल हैं , दोनों हाथ मृदु शाखाओं की भांति हैं, अवयवों में पुष्प के सदृश रमणीय तारूण्य प्रकट है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – यौवनम् – युवन्+अण्। अनुकारिन् – अनु+कृ+णिनि। इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं आर्या छन्द है।

राजा- तथापि तत्तवतः एनामुपलप्स्ये।

तब भी यथार्थ रूप् से इसका पता लगाऊँगा।

शकुन्तला - (ससंभ्रमम्) अम्मो ! सलिलसेकसंभ्रमोद्गतो नवमालिकामुज्झित्वा वदनं मे मधुकरोऽभिवर्तते।

शकुन्तला - (घबराकर) अरी माँ। जल के सींचनें से उड़ा हुआ भ्रमर इस नवमालिका लता को छोड़कर मेंरे मुख की ओर आ रहा है।

राजा -(सस्पृहं विलोक्य) (ईर्ष्या के साथ देखता हुआ)-

चलापांगां दृष्टीं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं

रहस्याख्यायीव् स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।

करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं

वयं तत्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलुकृती।। 19।।

अन्वय -मधुकर ! चलापांगां वेपथुमतीं दृष्टि; बहुश: स्पृशसि, रहस्याख्यायीव कर्णान्तिकचरः(सन्) मृदुः स्वनसि, करौ व्याधुन्वत्या रतिसर्वस्वं अधरं पिवति वयं तत्वान्वेषात् हता, त्वं खलु कृती।

अर्थ - हे भ्रमर ! तुम चंचल प्रांत वाले तथा काँपते हुए नेत्र का बारंबार स्पर्श (चुंबन) कर रहे हो, गोपनीय बात बताने वाले के समान कानों के नजदीक जाकर मधुर गुंजन कर रहे हो, (दोनो) हाथो को हिलाती हुई इसके रति के प्राणस्वरूप अधर का पान कर रहे हो, हम तो सत्य की खोज में ही मारे गये, और तुम निश्चय ही सफल हो गये।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में शकुन्तला के मुख मण्डल पर मण्डराते हुए भौरें को राजा ईर्ष्या पूर्वक देखता हुआ कहता है तुम निश्चय ही सफल हो गये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी -चलापांगां = चलौ अपांगौ यस्या ताम वेपथुमती= वेपथु + मतुप् +ङीप्। कर्णान्तिकचरः = कर्णयोः अंतिकू कर्णान्तिकम् तत्र चरतीति, चर् + ट = चरः। व्याधुन्वत्या: =वि आ धु+शतृ+ङीप्।

इस श्लोक में भ्रान्तिमान, समासोक्ति , व्यतिरके, काव्यलिंग अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

शकुन्तला - ने दृष्टो विरमति। अन्यतो गमिस्यामि । (पदान्तरे स्थित्वा सदृष्टिक्षेपम्) कथभिताऽप्यागच्छति ? हला, परित्रायेथां मामनेन दुर्विनीतेन मधुकरेण परिभूयमनाम।

शकुन्तला - यह धृष्ट रूक नहीं रहा है।अतः अन्य स्थान पर चलती हूँ (कुछ पग चलकर पुनः दृष्टि पात करती हुयी) क्या यह उधर भी आ रहा है ? सखि! इस दुष्ट भ्रमर के द्वारा मे सतायी जा रही हूँ, तुम दोनो मुझे बचाओ।

उभे -(सस्मितम्) के आवां परित्रातुम् ? दुष्यन्तमाक्रन्द। राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम।

दोनो सखियाँ - (मुस्कुराकर) हम लोग तुम्हारी सहायता करने वाली कौन है? राजा दुष्यन्त को बुलावों। राजा को ही तपोवन की रक्षा करनी चाहिए।

राजा- अवसरोऽयमात्मानं प्रकाशयितुम् । न भेतव्यं न भेतव्यं । इत्यर्धोक्तं स्वगतम् राजभावस्त्वभिज्ञातो भवेत। भवतु। एवं तावदभिधास्ये।

राजा- स्वयं को प्रकट करने के लिये यह सुअवसर है। न डरो न डरो(इतना आधा वाक्य कहकर (मन में) ऐसे राजा होना प्रकट हो जायेगा। अच्छा तो इस प्रकार कहूँगा।

अनुसूया - आर्य। न खलु किमप्यत्याहितम् इयं नो प्रियसखी मधुकरेणाभिभूयमाना कातरी भूता। (इति शकुन्तला दर्शयति)

अनुसूया- आर्य! कोई भय की बात नहीं है। यह हमारी सखि भौरों से तंग होकर डर गयी है। (इस

प्रकार शकुन्तला की और इंगित करती है)

राजा - (शकुन्तलाभिमुखो भूत्वा) अपि तपो वर्धते ? राजा- (शकुन्तला की तरफ होकर)तपस्या तो बढ़ रही है ? (शकुन्तला साध्सादवचनातिष्ठति) (शकुन्तला डर से चुप रहती है) ।

अनुसूया – इदानींमतिथिविशेषलाभेन । हलाशकुन्तले , गच्छोटजम्, फलमिश्रममुपहर । इदं पादोदकं भविष्यति।

अनुसूया - अतिथि विशेष के आने से बढ़ रहा है । सखि शकुन्तला कुटी में जाओ । फल आदि अर्घका पात्र लावों । यह (जल) पैर प्रक्षालन के लिए हो जायेगा ।

राजा - भवतीनां सूनृतयेव गिरा कृतमातिथ्यम् ।

राजा - आप लोंगो के सत्य और मधुर बातों से ही अतिथिसत्कार हो गया ।

प्रियंवदा - तेन हयस्यां प्रच्छायश्रीतलायां सप्तपर्णवेदिकायां मुहुर्त्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः।

प्रियंवदा -तो आप इस धनी छाया के कारण शीतल वने हुए सतवन वृक्ष के नीचे वेदी पर कुछ क्षण बैठकर थकान मिटायें ।

राजा - नूनं यूयमप्यनेन कर्मणा परिश्रान्ताः।

राजा - निश्चय ही आप लोग इस (वृक्षसिंचन) कार्य से थकी होंगी ।

अनुंसूया - हला शकुन्तलो, उचित नः पर्युपासनमतिथिनाम्। अत्रोपविशामः (इति सर्वा उपविशन्ति)

अनुंसूया - सखि शकुन्तला । अतिथि विशेष के समीप बैठना सर्वथा उचित है । यहॉ हम सब बैठे । (सब बैठती है)

शकुन्तला (आत्मगतम) किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवन विरोधिनों विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता?

शकुन्तला - (अपने मन में) क्यों इस व्यक्ति को देखकर मुझसे तपोवंन के विरोधी (काम) व्यापार उत्पन्न होने लगे है ।

राजा - (सर्वा विलोक्य) अहो! समवयोरूपरमणीयं भवतीनां सौहार्दम् ।

राजा - (सबको दखकर) आहा! आप सब की मित्रता एक समान आयु और रूप के होने के कारण सुन्दर है ।

प्रियंवदा - (जनान्तिकम्) अनुंसूये! को नु खल्वेस चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन प्रभाववानिव लक्ष्यते?

प्रियंवदा - (हाथ की ओट कर् के) अनुसूया। यह सुन्दर और गम्भीर रूप वाला कौन है जो मधुर वार्तालाप करता हुआ प्रभावशाली के समान लग रहा है।

अनुंसूया - सखि ममारयस्ति कौतूहलम् । पृच्छामि तावदेनम् । (प्रकाशम्) आर्य मधुरालापजनित विश्रम्भों मां मन्त्रयते कतम आर्येण राजषेर्वशोऽलंक्रियते ? कतमो वा विरहपर्युत्सुकजनः कृतो देशः कि निमित्तं वा -सुकुमारतरोऽपि तपोवनागमनेपरिश्रमस्यात्मनापदमुपनीत: ?

शकुन्तला - सखि मेरे भीतर भी यह उत्सुकता है। तब इससे पूछती हूँ। (प्रकट रूप से) आर्य के मधुर वार्तालाप से जनित विश्वास यह जानने के लिए प्रेरणा दे रहा है कि किस राजर्षिवंश् को आप अलंकृत किये है ? किस देश के लोगों को अपने वियोग में व्याकुल बना दिया है ? किस कारण से इतने सुकोमल होने पर भी तपोवन मे आने का परिश्रम करके अपने आप को कष्ट दिया है ?

शकुन्तला (आत्मगतम्) हृदयामोत्ताम्य। एषा त्वया चिन्तितान्यनसूया मन्त्रयते।

शकुन्तला (मन मे) हे हृदय उतावला न बनो। जो तूम्हारी इच्छा है उसे ही यह अनुसूया पूछ रही हैं।

राजा - (आत्मगतम्) कथमिदानीमात्मानं निवेदयामि ? कथ वात्मावहारं करोमि ? भवतु, एवं तावदेनां वक्ष्ये। (प्रकाशम्) भवति! य: पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्त: सोऽहमविध्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायात:।

राजा - (मन मे) कैसे अपने बारे मे बताऊँ और कैसे अपने आप को छिपाऊँ ? ठीक है उनसे ऐसे कहता हूँ। (प्रकट रूप मे) भद्रे! पुरूवंशी राजा ने जिसे धर्माधिकारी के पद पर नियुक्त किया है वह मैं तपोवन में निर्विघ्न क्रिया चल रही है यह जानने आया हूँ।

अनुंसूया - सनाथा इदानी धर्मचारिण:।

अनुंसूया - तपोवन वासी आज सनाथ हो गये। (शकुन्तला श्रृंगारलज्जां रूपयति) (शकुन्तला काम जनित लज्जा का अभिनय करती हैं)।

सख्यौ - (उभयोराकारं विदित्वा (जनान्तिकम्) हला शकुन्तले ! यद्यत्राद्य तातः सन्निहितो भवेत्।

दोनों सखियॉ - (दोनो के मनोभावो को जानकर हाथ की ओट से) सखि शकुन्तला ! यदि आज पिता (कण्व) समीप रहते।

शकुन्तला - (सरोषमिव) ततः कि भवेत् ? (रोषता पूर्वक) तो क्या होता।

सख्यौ - इमं जीवितसर्वस्वेनाप्यतिथिविशेषं कृतार्थ करिष्यति।

दोनों सख्यिॅा –इनको अपने जीवन के सर्वस्व को देकर कृतार्थ करते।

शकुन्तला – युवामपेतम्। किमपि हृदय कृत्वा मन्त्रयेथे। न युवयोर्वचनं श्रोष्यामि।

शकुन्तला - तुम दोनो जाओ। कुछ हृदय में रखकर बोल रही हो। तुम दोनो की बात मैं नही सुनूगी।

राजा - वयमपि तावद् भवत्योः सखिगतं किमपि पृच्छामः।

राजा ' मै भी आप की सखि के सम्बन्ध में कुछ पूछॅना चाहता हूँ।

सख्यौ - आर्य, अनुग्रह इवेयमभ्यर्थना।

दोनो सख्यिॅा - आर्य! आपकी प्रार्थना हमारे उपर कृपा के समान हैं।

राजा – भगवान्काश्यप: शाश्वते ब्रहमणि स्थितः इति प्रकाशः। अयं च वः सखि तदात्मजेति कथम् एतत्।

राजा - भगवन काश्यप शाश्वत ब्रह्मचारी है ये सब जानते है। आप लोगो की सखि उनकी (कण्व) की पुत्री कैसे हुयी ?

अनुसूया - शृणोत्वार्थ:। अस्ति कोऽपि कौशिक इति गौत्रनामधेयो महाप्रभावो राजर्षि:।

अनुसूया - आर्य सुनिए। कोई कौशिक गोत्र वाले महाप्रभावशाली राजर्षि है।

राजा - अस्ति श्रूयते।

राजा – हैं ऐसा सुना जाता है।

अनुसूया -तमावयोः प्रियसख्याः प्रभवमवगच्छः। उज्झितायाःशरीरसंवर्धनादिभिस्तातकाश्यपोऽस्या पिता।

अनुसूया - उन्ही राजर्षि को इसका जन्मदाता समझिये। छोड़ दिये जाने पर शरीर का लालन-पालन करने के कारण पिता काश्यप इसके पिता हुए।

राजा - 'उज्झित' शब्देन जनितं में कौतूहलम्। आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि

राजा - 'छोड़ी गयी'' इस शब्द से मेरे अन्दर उत्सुकता हो रही है। प्रारम्भ से सुनना चाहता हूँ

अनुसूया – शृणोत्वार्य: गौतमीतीरे पुरा किल तस्य राजर्षेरूग्रे तपसि र्वतनानस्य किमपि

जातशंकैर्देवैर्मेनका नामाप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी।

अनुसूया – आर्य ! सुने ! गौतमी नदी के तट पर वह राजर्षि कठिन तपस्या कर रहे थे। उस समय देवो मे कुछ शंका के कारण उनके पास तप मे विघ्न उत्पन्न करने के लिए मेनका नामक अप्सरा को भेजा गया।

राजा – अस्त्येतदन्यसमाधिभीरूत्थंदेवानाम्।

राजा - देवताओं की दूसरे की तपस्या से डरने की प्रवृत्ति होती है।

अनुसूया - ततो वसन्तोदाररमणीये समये तस्या उन्मादमितृरूपं प्रेक्ष्य- (इत्यर्धोक्ते लज्जया विरमति)

अनुसूया - उस समय वसन्त ऋतु के मनोहर काल में उसके उन्माद उत्पन्न करने वाले रूप को देखकर - (आधे में ही लज्जा के कारण चुप हो जाती हैं)

राजा - परस्ताज्ञायत एव। सर्वथाप्सरः सम्भवैषा।

राजा- आगे की बात मालूम हो जाती है। वस्तुतः यह अप्सरा की ही जनित मालूम पड़ रही है।

अनुसूया - और क्या ?

राजा - उपपद्यते।

राजा - ठीक ही है -

मानुषीषु कथं वा स्यादस्यरूपस्य संभवः।

न प्रभातरलं ज्योतिरूदेति वसुधातलात्॥ २२॥

अन्वय - मानुषीषु अस्य रूपस्य संभवः कथं व स्यात् ? प्रभातरलं ज्योति: वसुधातलात् न उदेति।

अर्थ - मानव जाति की स्त्रियॅा में इस प्रकार का सौन्दर्य कैसे सम्भव हो सकता है ? कान्ति से प्रकाशित ज्योति पृथ्वीतल से उत्पन्न नहीं होती।

व्यांख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा शकुन्तला को निश्चय रूप से अप्सरा से ही उत्पन्न होना मानता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - मानुषीषु = मनोः अपत्यं पुमान् मानुषः तस्य स्त्री मानुषी। प्रभातरलं = प्रभाभि: तरलम् (तत्पुरूष) इस श्लोक मं अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रतिवस्तुपमा तथा दृष्टान्त अलंकार है।

(शकुन्तलाऽधोमुखी तिष्ठति) (शकुन्तला लज्जा वश नीचे मुख किये रहती है)

राजा - (आत्मगतम्) लब्धावकाशो मे मनोरथः। किन्तु सख्या: परिहासोदाहता वर प्रार्थनां श्रुत्वा धृतद्वैधी भावकातरं में मनः।

राजा - (मन मे) मेरे मनोरथ को अवकाश प्राप्त हुआ। फिर भी सखियों द्वारा मजाक में की गयी वर प्रार्थना को सुनकर मेरा मन दुविधा में पड़ गया है।

प्रियंवदा - (सस्मित शकुन्तलां विलोक्य नायकाभिमुखी भूत्वा) पुनरपि वक्तुकाम इवार्यः।

प्रियंवदा - (मुस्कुराकर शकुन्तला को देखकर नायक की ओर मुखकर)आर्य पुनः कुछ कहना चाहते है। (शकुन्तला सखिमङ्गुल्या तर्जयति)

(शकुन्तला सखि को अंगुली दिखाती है)

राजा - सम्यगुपलक्षितम् भवत्या। अस्ति नः सच्चारितश्रवणलोभादन्यदपि प्रष्टव्यम्।

राजा -आपने ठीक जाना। अच्छे चरित्र के विषय में जानने की इच्छा से कुछ और पूछना चाहतीहूँ।

प्रियंवदा - अलं विचार्य। अनियन्त्रणानुयागस्तपस्विजनो नाम।

प्रियंवदा - सोचिए न। तपस्वी लोग से नि: संकोच प्रश्न किया जा सकता है।

राजा - इति सखी ते ज्ञातुमिच्छामि

राजा - आपकी सखि के सम्बन्ध में जानने की इच्छा है -

वैखानसं किमनया व्रतमाप्रदानाद

व्यापाररोधिमदनस्य निषेवितव्यम्।

अत्यन्तमेव सदृशेक्षणवल्लभाभि -

राहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभि: ॥२३॥

अन्वय - किम् अनया मदनस्य व्यापाररोधि वैखानसं व्रतं आप्रदानात् निषेवितत्यम् , आहो, मदिरेक्षणवल्लभाभि: हरिणांगनाभिः समम् अत्यन्तमेव निवत्स्यति।

अर्थ - क्या यह काम के व्यापारको रोकने वाले ब्रहमचर्य व्रत को विवाह पर्यन्त ही सेवन करेगी अथवा मदिर नयनो के कारण प्रिय हरिणियो के साथ आजीवन (तपोवन मे ही) निवास करेगी ?

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे राजा यह जानने का प्रयास कर रहा है शकुन्तला का तप का व्रत विवाह

पर्यन्त ही रहेगा या किसी तपस्वी से विवाह कर आजीवन तपोवन मे ही रहने की इच्छा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - व्यापाररोधि = वि +आ पृ+घञ्= व्यापारं रोद्धुशीलमस्य इति व्यापार रूध्+णिनि । निसेवितव्यम् = नि + सेव् +तव्यत् । इस श्लोक में वृत्यानुप्रास अलंकार है । वसन्ततिलका छन्द है।

प्रियंवदा - आर्य धर्माचरणेऽपि परवशोऽयं जन:। गुरोः पुनरस्या अनुरूप वर प्रदाने सङकल्प धर्माचरण में यह व्यक्ति परवस है। इसे तो पिता का योग्य वर देने का संकल्प हैं।

राजा - (आत्मगतम्) न दुरवापेयं खलु प्रार्थना।

राजा - (मन मे) निश्चित ही मेरी प्रार्थना अलभ्य नही है।

भव हृदय सभिलाषं संप्रति संदेहनिर्णयो जातः ।

आशङ्कशे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ।।२४।।

अन्वय - हृदय साभिलाष भव, संप्रति संदेह निर्णय: जातः । यत् अग्निं आशंकसे तत् इदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।

अर्थ - हृदय ! अव तुम (शकुन्तला के प्रति) अभिलाषा से युक्त होवों। अब संदेह का निराकरण हो गया। तू जिसको अग्नि समझ रहा था वह तो स्पर्श करने योग्य रत्न निकला।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे राजा पूर्णविश्वस्तता के साथ शकुन्तला की प्राप्ति के सम्बन्ध मे कहता है - हृदय = हे हृदय, सभिलाषं भव = अभिलाषा से युक्त होवा, संप्रति =अब, संदेह = शका निर्णय: जातः = निराकरण हो गया। यत् = जिसे, अग्निं आशंकसे = आग होने की शंका कर रहे थे तत् = वह इदं = यह स्पर्शक्षमं = स्पर्श करने योग्य रत्नम् = रत्न निकला।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - साभिलाषः = अभि लष्+घञ्। तेन सह (व.स) इस पद्य में काव्यलिंग, व्यस्तरूपक तथा वृत्यानुप्रास अलंकार है। आर्या छन्द है।

शकुन्तला - (सरोषमिवं) अनुसूये, गमिस्याम्यहम्।

शकुन्तला - (क्रोध पुर्वकं) अनुसूया मैं जा रही हूँ।

अनुसूया - कि निमित्तं।

अनुसूया - किस कारण से।

शकुन्तला - इमामसंबद्धप्रलापिनीं प्रियंवदामार्यायै गौतम्यै निवेदयियामि।

शकुन्तला - इस अनावश्यक प्रलाप करने वाली प्रियंवदा के सम्बन्ध मे आर्या गौतमी से शिकायत

करूँगी।

अनुसूया - सखि ! न युक्त तेऽकृतसत्कारमतिथिं विशेषं विसृज्य स्वच्छन्दतो गमनम्।

अनुसूया - सखि! इस अतिथि विशेष का विना सत्कार किये स्वतन्त्रता पूर्वक छोड़कर जाना उचित नहीं है। (शकुन्तला न किंचिदुक्त्वा प्रस्थितैव) (शकुन्तला विना कुछ कहे चल देती है)।

राजा - (ग्रहीतुमिच्छन्निगृहयात्यानम् (आत्मगतम्) अहो! चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः। अहं हि -

राजा -(उसे पकडने की इच्छा लेकर पुनः इच्छा को रोककर मन मे) अरे ! काम से मुक्त व्यक्ति की वृत्ति भी उसमे शारीरिक चेष्टाओं के अनुरूप ही होती है क्योकि-

अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।

स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः॥२5॥

अन्वय - मुनितनयां सहसा अनुयास्यन् विनयेन् वारितप्रसरः स्थानात् अनुच्चलन् अपि, गत्वा पुनः प्रतिनिवृत्तः इवं

अर्थ - सहसा मुनि कन्या(शकुन्तला) के पीछे जाने के लिये उद्यत होता हुआ, विनय के कारण रूक गया। (इस प्रकार) अपने स्थान से न उठो हुए भी मानो जाकर पुनः लौट आया हॅू।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा अपनी मनोदशा का वर्णन करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अनुयास्यन =अनु +या+लृट+शतृ। अनुच्चलन् =अनु उत्चल-शतृ प्रत्यय। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, काव्यलिंग तथा अनुप्रास अलंकार है। आर्या छन्द है।

प्रियंवदा- (शकुन्तलां निरुध्य) हला, न ते युक्तं गन्तुम्।

प्रियंवदा - (शकुन्तला को रोककर) सखि तुम्हारा जाना युक्त संगत नही है।

शकुन्तला- (सभ्रूभंगम्) किं निमित्तं ?

शकुन्तला- (भौहे टेढ़ी कर) क्या कारण है ?

प्रियंवाद - वृक्ष सेचने द्वेधारयसि में। (एहि तावत् आत्मानं मोचियत्वा ततो गमिष्यासि।

प्रियंवाद - दो वृक्ष सिंचन का ऋृण तुम्हारे ऊपर है। इस कारण अपने आप को ऋृण मुक्त कर के जावो। (इतिवलदिनां निवर्तयति) (इस पकार बल पूर्वक लौटाती है)।

राजा - भद्रे !वृक्षसेचनादेव परिश्रान्तामत्रभवतीं लक्षये। तथा हि अस्या -

राजा - भद्रे! वृक्षो की सिंचन कार्य से ही आपकी सखि थकी जान पड़ती है। क्योकि इसमे -

स्रंस्तांसावतिमात्रलोहिलतलौ वाहू घटोत्क्षेपणा -

दद्यपि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः।

बद्धं कर्णशिरीषरोधिवदने धर्माम्भसां जालकं

बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिताः पर्याकुला मूर्धजाः।।२६।।

अन्वय - घटोत्क्षेपणात् बाहू सस्तांसौ अतिमात्रलोहिततलौ। प्रमाणधिकः श्वासः अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति। वदने कर्ण शिरीषरोधि धर्माम्भसां जालकं बद्धम्। बन्धे संसिनि मूर्धजाः च एक हस्तयमिताः पर्याकुला ।

अर्थ - हाथों के उठाने से दोनो भुजाऐं कन्धे से झुके हुए तथा हथेलियाँ अतिलाल हो गयी है। मात्रा से अधिक श्वास् चलने के कारण स्तनों में अब भी कम्पन हो रहा है। मुख पर कानो मे (धारण किये) शिरीष के पुष्पों को अवरूद्ध करने वाला पसीनों का समूह व्याप्त है, और बन्धन खुल जाने से एक हाथ से लपेटे हुए केश बिखर गये है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा शकुन्तला के परिश्रम से थकने का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अतिमात्रलोहिततलौ = अतिमात्रंलोहितंतलो ययोः तौ (बहु0)। इस श्लोक मे स्वाभावोक्ति काव्यलिंग, समुच्चय तथा अलंकार है ताथ शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

तदहमेनामनृणां करोमि। (इति अंगुलीयं दातुमिच्छाति) तब मै इनको ऋण मुक्त बना देता हूँ। (इसप्रकार अंगूठी देना चाहता है) (उभे नममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परभवलोकयतः) दोनो सखियॉ अंकित अक्षर को बाचकर परस्पर देखती है)

प्रियंवदा - तेन हि नार्हत्येतंदगुलीयकमङ्गुलीवियोगम्। आर्यस्य वचने नानृणेदालीमेषा। (किंचिद्विहस्य) हला शकुन्तले मोचितास्यानुकम्पिनायेण, अथवा महाराजेन, गच्छेदानीम्।

प्रियंवदा - तो यह अंगूठी अंगुली से अलग करने योग्य नही है। आर्य के वचन मात्र से ही यह अकृण हो गयी। (कुछ हसकर) सखि शकुन्तला, तुम्हे कृपालु आर्य अथवा महाराज ने ऋण करा दिया है। अब तुम जा सकती हों।

शकुन्तला - (आत्मगतम्) यद्यात्मनः प्रभविष्यामि। (प्रकाशम्) का त्वं विसर्जितव्यस्य रोद्धव्यस्य वा?

शकुन्तला - (मन में) यदि मेरा अपने उपर नियन्त्रयण हो तव तो। (प्रत्यक्ष रूप मे) तुम मुझें भेजने वाली अथवा रोकने वाली कौन होती हो।

राजा - (शकुन्तलां विलोक्य आत्मगतम्) किंनु खलुयथा वयमस्यामेवमियमप्यस्मान्प्रति स्यात्। अथवा लब्धावकाशा में प्रार्थना। कुतः-

राजा - (शकुन्तला को देखते हुवे मन में) क्या जैसा मैं इसके प्रति अनुरक्त हुँ वैसा ही ये भी मेरे प्रति अनुरक्त है ? अथवा मेरे मनोरथ को अवसर मिल गया।

क्योंकि –

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः

कर्णं ददात्यभिमुखं मयिभाषमाणे।

कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीना

भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः।। 27

अन्वय - यद्यपि मदवचोभिः वाचं न मिश्रयति मयिभाषमाणे अभिमुखं कर्ण ददाति। कामं मदाननसंमुखीनां न तिष्ठति, अस्या दृष्टिःतु भूयिष्ठम् अन्य विषया न।

अनुवाद - यद्यपि मेरे बोलने से अपनी बोली नही मिलाती फिर भी मेरे बोलते रहने पर मेरी तरफ ही अपने कानो को लगाये रहती है। भले ही मेरे मुख की तरफ मुख करके नही बैठती, फिर भी इसका ध्यान अत्यधिक दूसरी तरफ नही जाता।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे राजा शकुन्तला के प्रेमा भिव्यंजक चेष्टाओं का वर्णन करता है जिसके आधार पर अपने प्रति शकुन्तला के प्रेम भाव की अभिव्यक्ति सूचित करता हुआ कहता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - मिश्रयति = मिश्र+णिच्, अन्य विषय = अन्यः विषय यस्या सा। भूयिष्ठम् = वह इष्ठन् यहॉ बह् को भू आदेश तथा इकार को यि आदेश, इस श्लोक मे समुच्चयालंकार, छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास अलंकार है।

(नेपथ्ये) (नेपथ्य से)

भो!भोः तपस्विनः सन्निहितास्तपोवनसत्वरक्षाये भवतः। प्रत्यासन्नः किल मृगयाविहारी पार्थिवो

दुष्यन्तः। ओ! तपस्विओं तपोवन के समीप रहने वाले जीवों के रक्षणार्थ आप सब तैयार हो जाइये। शिकार करता हुआ राजा दुष्यन्त यहाँ आ पहुँचा है।

तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुर्विटपविषक्तजलार्द्र वल्कलेषु।

पतति परिणतारूणप्रकाशः शलभसमूह इवाश्रमद्रुमेषु ।।28।।

अन्वय -तथाहि तुरगखुरहतः परिणतारूणप्रकाशः रेणुः शलभसमूह इव वित्पविषक्त जलार्द्रवल्कलेषु आश्रमद्रुमकेषु पतति।

अनुवाद - क्योकि घोड़ो के खुरो से उठाई हुयी सायंकालीन सूर्य के प्रकाश के समान लाल वर्ण की धूल पतंगो के झुण्ड के समान शाखाओं से बँधे गीले वल्कलों वाले आश्रम के वृक्षों पर पड़ रही है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में आश्रम मे आये दुष्यन्त के घोड़ो के खुर से उड़ती हुयी धूलका वर्णन है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - तुरगखुरहत: = तुरेण वेगेन तुरं त्वरितं वा गच्छति इति तुरगः तुरगाणां खुरैः हतः (तत्पुरूष) विटपविषक्त जलार्द्रवल्क्लेषु = विटपेषु विषक्तानि जलार्द्राणि वल्कलानि येषा तेषु (बहुव्रीहि)। इस श्लोक में उपमा वृत्यानुप्रास अप्रस्ततुप्रशंसा अलंकार है।

अपि च - और भी -

तीव्राघातप्रतिहततरू स्कन्धलग्नैक दन्त:

पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाश: ।।

मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारंगयूथो

धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः।।29।।

अन्वय - सस्यन्दनालोकभीतः तीव्राघातप्रतिहततरूः स्कन्धलग्नैकदन्तः पादाकृष्टव्रततिवलयासड़ग संजातपाशः भिन्नसारंगयूथ: गजः न तपसः मूर्तः विघ्न: इव धर्मारण्यं प्रविशति।

अनुवाद - रथ को देखने से डरा हुआ हाथी जिसने तेज प्रहार से वृक्ष को गिरा दिया और जिसका एक दाँत वृक्ष के डालियों में फँसा हुआ है पैरो से खीची हुयी लताओं के समूह के लिपटने से बँधा हुआ होकर मृग समूहो को अस्त व्यस्त करता हुआ मानों हमारी तपस्या केलिए साक्षात् विघ्न ही शरीर धारण का तपोवन में प्रविष्ट हो रहा है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में दुष्यन्त के रथ को देखकर डरे हुए हाथी का वर्णन बड़े सुन्दर ढंग से

करते हुए कहा गया है कि रथ को देखने से डरा हुआ, साक्षात् विघ्न ही शरीर धारण कर तपोवन मे प्रवेश कर रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - तीव्राघातप्रतिहततरूः = तीव्रो यः आघातः, तीव्रा घातः तेन प्रतिहताः तरवः येन सः। पादाकृष्टव्रततिवलयासङ्गसंजातपाशः = पादाभ्यां आकृष्टम् यद् व्रततिवलयं तस्यासडगेन संजातः पाशः यस्य सः (तत्पुरूषमर्भक बहु0)। इस श्लोक में अप्रस्ततुप्रशंसा,वृत्यानप्रास श्रुत्यानुप्रास और परिकर अलंकार है। तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है। यह भयानक रस का छन्द है।

सर्वाः (कर्ण दत्वा किंचिदिव संभ्रान्ता) (सभी सुनकर कुछ घबड़ाती है)

राजा - (आत्मगतम्)अहो धिक् ।पौराअस्मदन्वेषिणस्पोवनमुपरून्धन्ति। भवतु प्रतिगमिष्याभस्तावत्।

राजा - (मन मे) अरे धिक्कार है। नगर निवासी मेरा अन्वेषण करते हुए तपोवन में विघ्न उत्पन्न कर रहे है। अच्छा उनके समीप लौट चलता हूॅ।

सख्यौ- आर्य अनेनारण्यवृतान्तेन पर्याकुलाः स्मः। अनुजानीहि न उटजगमनाय।

दोनों सखियॉ - आर्य इस हाथी के वर्णन से हम सब घबड़ा गये है। हमे कुटी में जाने की अनुमति दीजिए।

राजा - (ससंभ्रमम्) गच्छन्तु भवत्यः। वयमत्याश्रमपीड़ा यथा न भवति तथा प्रयतिष्यामहे।

राजा - (घबड़ाकर) आप लोग जाइए। मै भी वैसा ही कार्य करूँगा जिससे आश्रम में कोई उपद्रव न हो।

(सर्वा उत्तिष्ठन्ति) (सभी खड़े होते है)।

सख्यौ - आर्य असम्भावितातिथिसत्कारअभूयोऽपि प्रेक्षणनिमितं लज्जावहे आर्य विज्ञापयितुम्।

दोनो सखियाँ - आर्य! न किये गये अतिथिसकार वाले आप से पुनः दर्शन देने के लिए कहते हुए हम लज्जित हो रहे है।

राजा - मा मैवम दर्शननैवात्र भवतीनां पुरस्कृतोऽस्मि।

राजा - ऐसा न बोले आप लोगो के दर्शनमात्र से ही मै पुरस्कृत हूँ।

(शकुन्तला राजानमवलोकयन्ती सव्याजं विलम्ब्य ससखीभ्यां निष्क्रान्ता)

(शकुन्तला राजा को देखती हुयी लज्जा के साथ रूककर सखियों के साथ चली जाती है)

राजा - मन्दौत्सुक्योऽस्मि नगरगमनं प्रति। यावदनुयांत्रिकान् समेत्य नातिदूरे तपोवनस्य निवेशयेयम् । न खलु शक्नोभि शकुन्तलाव्यापारादत्मानं निवर्तयितुम । मम हि -

राजा - नगर जाने का उत्साहठंडा पड़ गया है , तब सैनिको को तपोवन से कुछ दूरी पर रोकता हूँ। शकुन्तला के प्रति आकृष्ट होने वाले व्यापार से मै स्वयं को रोकने मे असमर्थ हूँ। क्योकि मेरा –

गच्छति पुरः शरीर धावति पश्चादसंस्तुतं चेत:।

चीनांशुकमिव केतो: प्रतिवातंनीयमानस्य ।। 30 ।।

अन्वय-शरीरं पुरः गच्छति चेत प्रतिवातंनीयमानस्य केतोः चीनांशुकम् इव असंस्तुतं पश्चात् धावति ।

अनुवाद - शरीर आगे जा रहा है मन विपरीत दिशा में बहने वाले वायु से पीछे उड़ाते हुए चीनी रेशमी ध्वजा के समान पीछे की तरफ भाग रहा है ।

सूत - (राजानं मृगं च अवलोभ्य) आयुष्मन्। (सारथि) (राजा और मृग को देखकर)आयुष्मान्

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में राजा की अतिशय प्रेम विह्वल दशा का वर्णन आता है। प्रिया से , क्षणिक मिलन सुख समाप्त होने से वह व्याकुलता का अनुभव करता है ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - असंस्तुतम् = सम् स्तु+क्त = संस्मुतम्, न संस्ततुं ।अतिशयोक्ति उत्प्रेक्षा और उपमालंकार है तथा आर्या छन्द है ।

(इति निष्क्रान्ता: सर्वे) (सब प्रस्थान करते हैं)

(प्रथम अंक समाप्त)

अभ्यास प्रश्न - 2 -

(क) राजा अपने हृदय को समझाते हुए स्पर्श करने योग्य रत्न किसे बता रहा है ?

1.शकुन्तला को 2. अनुसूया

3 प्रियंवदा 4. किसी को नहीं।

(ख) वृक्षों के सेचन का दो ऋण किस पर है ?

1.प्रियंवदा 2. शकुन्तला पर

3 अनुसूया पर 4. गौतमी पर

(ग) नेपथ्य से किसकी रक्षा के लिए तपस्वियों को बताया जा रहा है ?

1. हाथियों मे 2. मृगों मे

3 पक्षियों में 4. जीवों की

(घ) रथ को देखकर .... डरा हुआ है।

(ड़) प्रथम अंक के अन्त मे .... पताका का वर्णन हे ?

3.5 सारांश

प्रथम अंक के अध्ययन के प्रश्चात् आप जान गये है कि नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार और नटी के द्वारा दुष्यन्त की चर्चा के साथ प्रस्तावना समाप्त हो जाती है। फिर मृग का पीछा करता हुआ सारथि रथ पर चढ़कर रंगमंच पर प्रवेश करता है। राजा उसमृग को मारना ही चाहता है तभी एक तपस्वी अपने शिष्यों के साथ आकर मृग को मारने से मना करते है। राजा के मान जाने पर वे उन्हें चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होने का आर्शीवाद देकर कण्व के आश्रम मे राजा को जाने को कहकर लकड़ी लाने जंगलो में चले जाते है। राजा द्वारा पूछे जाने पर कि क्या कुलपति कण्व आश्रम में है तपस्वी बताते है कि ऋषि सोमतीर्थ गये है। उनके अनुपस्थिति मे शकुन्तला अतिथि सत्कार करती है। राजा सारथि को आश्रम के बाहर छोड़कर आश्रम में प्रवेश करता है तभी शुभ शकुन होता है। वही तीन युवतियाँ मनोरंजन करती हुयी पौधो को पानी देती है उसमे शकुनतला के प्रति राजा आकृष्ट होता है तथा वृक्षों के ओट से उसके सौन्दर्य देखा करता है। उसी समय भ्रमर से तंग आकर शकुन्तला रक्षा हेतु पुकारती है, तभी राजा सामने आकर युवतियों से वार्तालाप करता है। वार्तालाप से ही पता चलता है कि शकुन्तला विश्वामित्र एवं मेनका की पुत्री है। कण्व केवल पालने के कारण उसके पिता है। यह क्षत्रिय कन्या है अतः राजा उससे विवाह का निश्चय करता है। शकुन्तला भी राजा के प्रति अपना अनुराग व्यक्त करती है तभी एक हाथी के वृत्तान्त से सब घबड़ाते है। ओर सखियों के साथ शकुन्तला आश्रम मे चली जाती है। और दुष्यन्त भी सैनिको को रोकने के लिए प्रस्थान करता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.**सूत्रधार** - कथावीज को सूत्र कहा गया है उसको धारण करने वाला सूत्रधार कहलाता है। सूत्रधार ही रंगमंच पर आराध्य देव की पूजा करता है और नान्दी पाठ भी करता है। वह रूपक का नियन्त्रक एवं निर्देशक होता है।

नाट्यस्य यद्नुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात् सवीजकम्।
रंङ्दैवतपूजाकृतं सूत्रधार इति स्मृतः।।

नाट्य के उपकरणों को सूत्र कहा गया है, उन्हे धारण करने वाला सूत्रधार कहा जाता है।

नाट्योपकरणानीति सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्र धारो निगद्यते।।

2. **प्रस्तावना** - नाटक में मुख्य कथावस्तु का आरम्भ जिस स्थल से होता है वही से प्रस्तावना आरम्भ होती है। प्रस्तावना में प्रस्तुत होने वाले विषय वस्तु की चर्चा होती है।

विधेर्यथैव संकल्पो मखतां प्रतिपद्यते।

प्रधानस्य प्रवधस्य तथा प्रस्तावना मतां।।

रंगमंच पर नही या विदूषक से सूत्रधार प्रस्तुत किये जाने वाले कथानक का संकेत करते हुए वार्तालाप करता है।

सूत्रधारो नहीं बूते मार्ष वापि विदूषकम ।

स्वकार्य प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्।।

3.**नान्दी**- नाटक में नान्दी के माध्यम से नाटक की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से देवता की स्तुति की जाती है। यह देवता, द्विज या राजा की स्तुति या आर्शीवादात्मक मंगलाचरण भी होती है - आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोक: काव्यार्थसूचक:। नान्दीति कथ्यते। (भरत) ।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1
उत्तर (क) 2 - दाहिनी भुजा (ख) 3- शमी (ग) 1-भौरा
अभ्यास 2 - उत्तर (क) 1- शकुन्तला को (ख) 2- शकुन्तला पर (ग) जीवों को (घ) हाथी
(ड़) चीनी वस्त्र से बने ।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डेय प्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान गौतमनगर गोरखपुर संस्करण 1998

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तरिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ ,संस्करण 1982 ।

3.9 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डे प्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान गौतमनगर गोरखपुर संस्करण1998।

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तरिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ,संस्करण1982।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रथम अंक का सारांश लिखिये।

2. प्रथम अंक का महत्व लिखिए।

इकाई 4 .अभिज्ञानशाकुन्तलम् - द्वितीय एवं तृतीय अंक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)

इकाई की रूपरेखा :

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् द्वितीय अंक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)
4.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् तृतीय अंक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या, व्याकरणात्मक टिप्पणी)
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक व उपयोगी पुस्तकें
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

अभिज्ञानशाकुन्तलम् से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने जाना कि नाट्य साहित्य का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ एवं महाकवि कालिदास के जीवन परिचय एवं उनकी काव्यगत विशेषताओं तथा प्रथम अंक की कथावस्तु से परिचित हुए।

प्रस्तुत इकाई में आप द्वितीय एवं तृतीय अंक का अध्ययन करेगें। द्वितीय अंक में शकुन्तला के प्रति आकृष्टचित्त राजा दुष्यन्त विदूषक से शकुन्तला के मनोहारी लावण्य एवं रमणीय क्रियाकलापों का वर्णन करता है। इसी बीच तपोवन के दो ऋषि राजा से आश्रम में यज्ञादि कार्यों के निर्विघ्न पूरा होने तक रूकने की प्रार्थना करते हैं। उधर देवी वसुमती का सन्देश वाहक देवी पारण के दिन राजा की उपस्थिति की प्रार्थना का सन्देश देता है। तत्पश्चात आश्रम में अपनी उपस्थिति की अनिवार्यता विचार कर राजा विदूषक को राजधानी भेज देता है और कहता है कि शकुन्तला के प्रति प्रकट प्रेम परिहास मात्र है। तृतीय अंक में कामपीड़ित दुष्यन्त और शकुनतला का वर्णन है।

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप द्वितीय एवं तृतीय अंक की कथावस्तु एवं उसकी काव्यगत सौन्दर्य को समझा सकेगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- श्लोकों की व्याख्या कर पायेगें।
- श्लोक में प्रयुक्त अलंकारों को बता सकेगें।
- श्लोक में प्रयुक्त छन्द को बता सकेगें।
- द्वितीय एवं तृतीय अंक की कथा से परिचित हो पायेगें।

4.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् द्वितीय अंक मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या , व्याकरणात्मक टिप्पणी)

विदूषकः- (निःश्वस्य) भो! दृष्टम्। एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञों वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि। अयं मृगोऽयं वराहोऽयं शार्दूल इति मध्याह्नेऽपि ग्रीष्मविरलपादपच्छायासु वनराजीष्वाहिण्ड्यतेऽटवीतोऽटवी । पत्रसंकरकषायाणि कटूनि गिरिनदीजलानि पीयन्ते, अनियतवेलं शूल्यमांसभूयिष्ठ आहारो भुज्यते। तुरगानुधावनकण्डितसन्धे रात्रावपि निकार्म

शयितव्यं नास्ति । ततो महत्येव प्रत्यूषे दास्याः पुत्रैः शकुनिलुब्धकैर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोऽस्मि । इयतेदानीमपि पीड़ा न निष्क्रामति । ततो गण्डस्योपरि पिटकः संवृत्तः। ह्यः किलास्मास्ववहीनेषु तत्रभवतो मृगानुसारेणाश्रमपदं प्रविष्टस्य तापसकन्यका शकुन्तला ममाधन्यतया दर्शिता । सांप्रतं नगरगमनस्य मनः कथमपि न करोति । अद्यापि तस्य तामेव चिन्तयतोऽक्ष्णोः प्रभातमासीत् । का गतिः? यावत्त कृताचरपरिक्रम पश्यामि । (इति परिक्रमम्यावलोक्य च) एष बाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वनपुष्पमालाधारिणीभिः परिवृत इत एवागच्छति प्रियवयस्यः। भवतु अङ्गभङ्गविकल इव भूत्वा स्थास्यामि। यद्येवमपि नाम विश्रामं लभेय। (इति दण्डकाष्ठमवलम्ब्य स्थितः)

अर्थः- **विदूषकः** (दीर्घश्वास लेकर) अरे, देख लिया । इस मृगयाव्यसनी राजा का मित्र होकर खिन्न हो गया हूँ । यह मृग है, यह सूअर है, यह चीता है- इस प्रकार दोपहर को भी ग्रीष्म के कारण अल्प छाया वाले वृक्षो से युक्त वनपंक्तियों में भटकना पड़ता है। पत्तों के मिलने से कसैला और कडुवा पर्वतीय नदियों का जल पीना पडता है । अनिश्चित वेला पर, अधिकांशतः शूल पर भूना गया मांस का आहार खाना पडता है । घोड़ा दौड़ाने से जोडो में पीडा हाने के कारण रात्रि में भी पूरी तरह सोना नही हो पाता । उस पर भी बड़े भोर में ही दासीपुत्र बहेलियों के वन घेरने के कोलाहल से जगा दिया गया हूँ । इतने से अभी भी यह पीड़ा दूर नहीं होती । उस पर भी फोड़ा निकल आया। कल तो हम लोगों के पीछे छूट जाने पर मृग का पीछा करते हुए आश्रम में पहॅुचे हुए महाराज को मेरे दुर्भाग्य ने तपस्विकन्या शकुन्तला का दर्शन करा दिया ।

अब नगर को लौटने की वे किसी भी प्रकार इच्छा ही नही करते । आज भी उसी का चिन्तन करते हुए ऑखें में उनका सबेरा हो गया । क्या करें ? तब तक स्नानादि आचार समाप्त कर लेने वाले उनसे मिलता हूँ । (घूमकर औद देखकर) यह धनुष लिये हुई फूलों की मालाओं से सजी यवनियों से घिरा हुआ प्रिय मित्र इधर ही आ रहा है । अच्छा, अंग-भंग से खिन्न जैसा बनकर खड़ा होता हूँ । स्यात् ऐसा करने से ही मुझे विश्राम मिल जाय । (डण्डे का सहारा देखकर खड़ा हो जाता है) ।

टिप्पणी - विदूषक = संस्कृत नाटकों में राजा के मित्र के रूप में विदूषक नाम का पात्र आता है, जो हास्य की सृष्टि करता नाटक में यह प्राकृत भाषा में संवाद बोलता है ।

पत्रसंकरकषायाणि = पत्तों के मिलने से कसैले । पत्राणाम् संकरेण कषायाणि (जलानि का विशेषण) कसैला होने के कारण ही जल कड़ुआ है । कटूनि = कड़ुआ ।

गिरिनदीजलानि = पर्वतीय नदियों का जल। गिरिनदीनां जलानि (तत्पुरूष) अनियतवेलम् = जिसकी वेला या समय निश्चित नहीं है । अनियता वेला यस्मिन तत (बहु0) विषमसमयम् । शूल्यमांसभूयिष्ठम् = जिसमें शूल पर भुना गया मांस ही अधिक मात्रा में हैं । शूलें संस्कृत शूल्यम्(शूल यत् प्रत्यय) शुल्यं मांस भूयिष्ठं यस्मिन् सः(बहु0 आहार का विशेषण)। आहार=आ ह घञ् ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टपरिवारो राजा)

राजा (आत्मगतम्)

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनायासि ।

अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरूते ।।1।।

(स्मितं कुत्वा) एवमात्माभिप्रायसंभावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्बयते ।

(तब यथोक्त परिजनों के साथ राजा प्रवेश करता है)

अर्थः- यद्यपि प्रिया का मिलन सरल नहीं है, तथापि मन उसके भावों का दर्शन करने के लिए आकुल है । कामभाव के कृतार्थ न होने पर भी एक-दूसरे की अभिलाषा प्रीति को बढाती है ।।1।।

(मुस्कराकर) इस प्रकार अपने अभिप्राय के अनुसार ही प्रिय व्यक्ति के मनोभावों की कल्पना कर लेने वाला प्रेमी उपहास का पात्र बन जाता है ।

1. **कामम्** = यद्यपि भले ही कामम् अव्यय है(अकामानुमतौ)सुलभा= सरलता से प्राप्त होने योग्य । चूंकि राजा कण्व की अनुमति के बिना शकुन्तला को प्राप्त नही कर सकता, अतः वह उसके लिए सुलभ नहीं है । मन: तु = फिर भी मेरा मन । तद्भावदर्शनायामि = तद्भाव- दर्शन - आयासि = तस्या भावः तद्भावः तस्य दर्शनम् तदभावदर्शनम्, तसिमन् आयासि तद्भानदर्शनायासि = उसके प्रेम के भाव के देखने के लिए उत्सुक है । प्रिया की प्रेमाभिव्यंजक = चेष्टाओं को देखने की लालसा प्रेमी में बनी रहती है । मनसिजे अकृतार्थे अपि = कामभावना के सफल न होने पर भी प्रिया से मिलन न होने पर भी मनसि जातः मनसिज अथवा मनसि जायते स्म मनसिजः। मनसि जन ड् (’सप्तम्यां जनेडः’ से ड प्रत्यय)।’तत्पुरूषे कृति बहुलम्’ से सप्तमी का लोप नहीं हुआ । कृतः अर्थ येन सः कृतार्थः अकृतार्थः तस्मिन् । उभयप्रार्थना = दोनों की पारस्परिक अभिलाषा, उभयो:- प्रार्थना उभयप्रार्थना । रतिम् कुरूते = प्रीति उत्पन्न करती है । रम क्तिन् = रतिः। यहॉ विप्रलम्म शृंगार है और उसकी अभिलाषा नाम की अवस्था भी है । 'सगंमोऽपायरचिता **प्रारब्धाध्यवसायतः। संकल्पेच्छासमुद्भूतिरभिलाषः इतीरितः।** यहॉ अर्थान्तरन्यास अलंकार है । पूर्वार्द्ध के कथन का उत्तरार्द्ध के सामान्य कथन द्वारा समर्थन किया गया है । इसका छन्द आर्या है ।

स्निगधं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेषयन्त्या तया
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरूतया मन्दं विलासादिव।
मा गा इत्युपरूद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी
सर्व तत्किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति ।।2।।

अर्थः- दूसरी ओर दृष्टि डालती हुई भी उसने जो मेरी ओर प्रेमपूर्वक देखा, नितम्बों की गुरूता के

कारण जो वह मानों विलास के साथ धीरे-धीरे चली, सखी के ' मत जा' कहने पर उसने जो उससे ईर्ष्यापूर्वक कहा - वह सब कुछ निश्चय ही मुझे ही लक्ष्य कर था । अहो, कमी सर्वत्र अपने ही अभिप्राय से देखता है। ॥ 2 ।।

'विलासादिव' में संभावना होने से उत्प्रेक्षालकांर है । 'कामी स्वतां पश्यति' इस सामान्य कथन द्वारा पूर्वोक्त विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है । शकुन्तला की चेष्टाओं के वर्णन में स्वभावोक्ति भी है। 'नयने प्रेषयन्त्या तया' छेकानुप्रास है । उत्तरार्द्ध में वृत्युनप्रास भी है। इसका छन्द शार्दूविकीडित है ' सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्'।

विदूषक: (तथास्थित एव) भो वयस्य, न में हस्तपादं प्रसरति। वाड़मात्रेण जापयिष्यामि ।

विदूषक: (उसी तरह खडे हुए) हे मित्र, मेरे हाथ-पैर नहीं चल रहे है । वाणी से ही 'जय' कहता हूँ ।

राजाः- (सस्मितम्) कुतोऽयं गात्रोपघातः?

(मुस्कराते हुए) यह अंगभांग कैसे हुआ ?

विदूषक: कुत किल स्वयमक्ष्याकुलीकृत्याश्रुकारणं पृच्छसि ?

विदूषक: कैसे हुआ! स्वयं ऑखों में चोटकर ऑसुओं का कारण पूछते हो ?

राजा - न खल्ववगच्छामि ।

राजा: मै समझ नहीं पा रहा हूँ ।

विदूषक: भो वयस्य! यद्वेतसः कुब्जलीलां विडम्बयति, तत्किमात्मनः प्रभावेण ननु नदीवेगस्य ?

विदूषक: मित्र, बेंत जो कुबडे की तरह टेढ़ा होता है वह अपने ही प्रभाव से होता है या नदी केवेगसे?

राजा: नदीवेगस्तत्र कारणम् ।

राजा: नदी का वेग ही उसका कारण होता है ।

विदूषक: ममापि भवान् ।

विदूषक: मेरे लिए भी आप कारण है ।

राजा: कथमिव ?

राजा: कैसे ?

विदूषक: एवं राजकार्याण्युज्झित्वा तादृश आकुलप्रदेशे वनचरवृत्तिना त्वया भवितव्यम् । यत्सत्यं प्रत्यहं श्वापदसमुत्सारणैः संक्षोभितसन्धिबन्धानां गात्राणामनीशोस्मि संवृत: तत्प्रसादयिष्यामि - मामेका हमपि तावद्विश्रमितुम् ।

विदूषक: इस प्रकार राजकार्यो को छोड़कर हिंसक प्राणियों से व्याप्त प्रदेश मे क्या आपको वनचरों

के समान वृत्ति अपनानी चाहिए ? सचमुच, प्रतिदिन वन के पशुओं का पीछा करने से मेरे शरीर के जोड़ ढीले पड़ गये है और मेरा इन पर वश नहीं रह गया है। मैं प्रार्थना करता हूं कि मुझे एक दि नही विश्राम करने के लिए छोड़ दीजिए।

राजाः (स्वगतम्) अयं चैवमाह ममापि काश्यपसुतामनुस्मृत्य मृगयाविक्लवं चेतः। कृतः?

न नमयितुमधिज्यमस्मि शक्तो

धनुरिदमाहितसायकं मृगेषु।

सहवसतिमुपेत्य यैः प्रियायाः

कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः॥3॥

राजाः (स्वगत) यह ऐसा कह रहा है और मेरा मन भी काश्यपसुता शकुन्तला की याद कर मृगया से विरक्त हो गया है। क्योंकि-

अर्थ-मैं चढ़ी हुई प्रत्यंचा वाले एवं बाण से युक्त इस धनुष को उन मृर्गो पर चलाने में मै समर्थ नहीं हूँ जिन्होंने एक साथ रह कर मेरी प्रिया को भोली चितवन का उपदेश दिया है ॥3॥

व्याख्या . 3. न नमयितुम शक्तः अस्मि (नमयितुम् शक्तः न अस्मि) = झुकाने में समर्थ नही हो पाता हूँ इदम् अधिज्यम् आहितसायकम् धनुः= इस प्रत्यंचा चढे हुए तथा बाण से युक्त धनुष को । अधिगता ज्या यस्मिन तत् इति अधिज्यम (बहुव्रीहि, धनुः का विशेषण) ज्या = डोरी, प्रत्यंचा ।यैः प्रियायाः मुग्धविलोकितोपदेशः कृत इव=जिनके द्वारा प्रिया शकुन्तला को मुग्ध दृष्टिपात की मानो शिक्षा दी गयी है ।। मुग्धानि विलोकितानि मुग्धविलोकितानि, तेषाम् उपदेशः शकुन्तला की चितवन् मृगों के समान भोली है। यहॉ उत्प्रेक्षा की गयी है कि मानो मृगों ने शकुन्तला को भोली दृष्टि का उपदेश दिया हो। मुग्ध का अर्थ है स्वाभाविक, अकृत्रिम।

पूर्वार्द्ध का करण उत्तरार्द्ध में उपन्यस्त होने से काव्यलिङ्ग है । 'कृत इव मुग्धविलोकितोपदेशः मे उत्प्रेक्षा है। वृत्यनुप्रास भी है। यहां कामपीड़ित नायक की अनुस्मृति नाम की अवस्था है।

विदूषकः (राज्ञो मुखं विलोक्य)अत्रभवान् किमपि हृदये कृत्वा मन्त्रयते। अरण्ये मया रूदितमासीत्।

विदूषकः (राजा का मुख देखकर)आप तो मन में कुछ सोच रहे है। मैने अरण्यरोदन ही किया।

राजाः (सस्मितम) किमन्यत्? अनतिक्रमणीयं मे सुहृदय्वाक्यमित्ति स्थितोऽस्मि।

राजाः (मुस्कराते हुए)और क्या? मेरे लिए मित्र के वचन उल्लंघन करने योग्य नहीं है, इसलिए मैं

(विरत) रूक गया हूँ।

विदूषक: चिरंजीव। (इति गन्तुमिच्छति)

विदूषक: चिरंजीवी होइये। (जाने लगता है)

राजा: वयस्य ! तिष्ठ, सावशेषं में वचः।

राजा: मित्र, रूको मेरी बात अभी पूरी नहीं हुई है।

विदूषक: आज्ञापयतु भवान्।

विदूषक: आप आज्ञा दीजिए।

राजा: विश्रान्तेन भवता ममाप्यनायासे कर्मणि सहायेन भवितव्यम्।

राजा: आप विश्राम करने के बाद मेरे एक बिना परिश्रम के कार्य में सहायक बनें।

विदूषक: किं मोदकखण्डिकामायाम्? तेन ह्ययं सुगृहीतः क्षणः।

विदूषक: **क्या लड्डू तोडने में? तब तो यही सुन्दर उत्सव है।**

राजा: यत्र वक्ष्यामि। कः कोऽत्र भो?

राजा: जिस कार्य में कहूंगा उसमें। अरे, कौन है यहॉ?

(दौवारिक का प्रवेश)

(प्रविश्य)

दौवारिक: (प्रणम्य) आज्ञापयतु भर्ता।

दौवारिक: **(**प्रणाम कर) आज्ञा दें, महाराज

राजा - रैवतक! सेनापतिस्तावदाहूयताम्।

राजा: रैवतक, सेनापति को बुलाओं।

दौवारिक: तथा। (इति निष्क्रम्य सेनापतिना, सह पुनः प्रविश्य) एष आज्ञावचनोत्कण्ठो भर्ता इतो दत्तदृष्टिरेव तिष्ठति। उपसर्पत्वार्यः

दौवारिक: जैसी आज्ञा (निकलकर सेनापति के साथ पुनः प्रवेश कर) ये महाराज आज्ञा देने के

लिए उत्कण्ठित होकर इसी ओर दृष्टि लगाये हुए बैठे है। आर्य, आप समीप चलें।

सेनापतिः (राजानमवलोय) दृष्टदोषापि स्वामिनि मृवया केवलं गुण एवं संवृत्ता। तथा हि देवः !

सेनापतिः (राजा को देखकर)यद्यपि मृगया में दोष देखे जाते है, तथापि महाराज के लिए तो यह केवल गुण ही हो गयी है। क्योंकि महाराज,

अनवरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपूर्व

रविकिरणसहिष्णु स्वेदलेशैरभिन्नम्।

अपचितमपि गात्रं व्यायतत्वादलक्ष्यं

गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति।।

अर्थ- निरन्तर प्रियाल वृक्ष की भूमि पर आघात करने से कठोर अग्रभाग वाले, सूर्य की किरणों को सहने में समर्थ, स्वेदकणों से रहित, दुर्बल होने पर भी विशालता के कारण दूर्बल न दिखायी पड़ने वाले पर्वतीय हाथी के समान ऐसा शक्तिशाली शरीर धारण करते है जिसका अग्रभाग निरन्तर धनुष की डोरी के आधात से कठोर हो गया है, जो सूर्य की किरणों का सहन करने में समर्थ एवं स्वेद बिन्दुओं से शून्य है और दुर्बल होने पर भी लम्बा - चौड़ा होने से दुर्बल नहीं दिखायी पड़ रहा है।।4।।

व्याख्या . इस पद्य में सेनापति राजा के शरीर की उपमा पर्वतीय हाथी के शरीर से देता है। यहां विशेषण श्लिष् है। अन वरतधनुर्ज्यास्फालनक्रूरपर्वम् =निरन्तर धनुष की डोरी के आघात से जिसका अग्रभाग कठोर हो गया है - राजा के पक्ष में। निरन्तर धनु अथवा प्रियाल नाम के वृक्ष को पृथिवी पर खीचने से जिसका अग्रभाग कठोर है अथवा प्रियाल वृक्ष के अग्रभाग की भूमि में रगड़ने से जिसका अग्रभाग कठोर है। अनवरतं यथा तथा धनुषः ज्यायः आसफालनेन क्रूरः पूर्व यस्य सः (बहुव्रीहि)। आस्फालन के भी दो अर्थ हैं (1) खीचना और (2) रगड़ना। 'ज्या' का अर्थ धनुष की डोरी और पृथिवी दोनो ही है 'ज्या मौर्वी ज्या वसुन्धरा'।

सनेनापतिः(उपेत्य) जयतु स्वामी, गृहीतश्वापदमरण्यम्। किमन्यत्रावस्थीयते ?

(समीप जाकर) जय हो महाराज की। बन के हिंसक पशुओं को घेर लिया गया है। अब यहॉ क्यों बैठे है ?

राजा: मन्दोत्साहः कृतोऽसिम मृगयापवादिना माढव्येन।

राजाः मृगया की निन्दा करने वाले माढव्य ने मेरा उत्साह मन्द कर दिया है।

सेना पतिः (जनान्तिकम्) सखे! स्थिरप्रतिबन्धो भव। अहं तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये।

(प्रकाशम्) प्रलपत्वेष वैधेयः। ननु प्रभुरेव निदर्शनम्

अर्थः-(जनान्तिक) मित्र, अपने पर दृढ रहना। मैं तब तक स्वामी के मनोभाव का अनुसरण करूगा। (प्रकट रूप से) बकने दीजिए इस मूर्ख को। आप ही प्रमाण हैं।

मदश्छेकृशोदरं लघु भवत्युथानयोग्यं वपुः

सत्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयों।

उत्कर्षः स च धन्विना यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः।।5।।

अर्थ -शरीर चर्बी के कम हो जाने से पतले उदर वाला, हल्का और उद्योगक्षम हो जाता है। जीवों की भय एवं क्रोध की अवस्थाओं में विकारयुक्त चित्तवृत्ति देखने को मिलती है। धनुर्धारियों के लिए यही गौरव की बात होती है कि बाण चंचल लक्ष्य पर सफल होते हैं। लोग मिथ्या ही मृगयाको व्यसन कहते है। इस प्रकार का मनोविनोद और कहॉ ।।5।।

व्याख्या . मेदश्छेदकृशोदरम् = चर्बी के घट जाने से कृश उदर वाला (वपुः का विशेषण) मेदसः छेदेन कृशम् उदरम् यस्य तत् (बहुव्रीहि)। छेद =√ छिद् घञ्। लघु =हल्का, फुर्तीला। उत्थानयोग्यम् = उद्यम के योग्य, उठने योग्य, उत्थानस्य योग्यम्। तत्पुरूष। सत्वानाम् भयक्रोधयोः विकृतिमत् चित्तं लक्ष्यते = जन्तुओं की भय और क्रोध की स्थितियों में विकार से युक्त चित्त देखने को मिलता है। विकृतिमत् चित्तम् = विकार से युक्त चित्त। धन्विनाम् = धनुष चलाने वालों का। धन्वाऽस्यास्तीति धन्वी इनि (व्रीहा्रादित्यात्)मत्वर्थ में। उत्कर्षः=गौरव, श्रेष्ठता। यत् चले लक्ष्ये इषवः सिध्यन्ति=जो चंचल लक्ष्य पर बाण प्रहार करते है या सफल होते है। व्यसनम्=बुराई, दुर्गुण। व्यसन की व्युतपत्ति है 'यस्माद् व्यस्यति श्रेयस्तस्माद् व्यसनमुच्यते ' जिससे व्यक्ति श्रेय से भ्रष्ट हो जाते हैं। विनोदः=मनोरंजन। यहॉ पर समुच्चयालंकार है।

विदूषकः अत्रभवान्प्रकृतिमापन्नः। त्वं तावदटवीतोऽटवीमाहिण्डमानो नरनासिकालोलुपस्य जीर्णऋक्षस्य जीर्णऋक्षस्य कस्यापि मुखे पतिष्यसि।

विदूषकः महाराज अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गए है। तू तो घूमता हुआ मनुष्य की नाक के लोभी किसी बूढ़े रीछ के मुख में पड़ जायेगा।

राजाः भद्र सेनापते! आश्रमसनिकृष्टे स्थिताः स्मः। अतस्ते वचो नाभिनन्दामि अद्य तावत्-

राजाः भद्र सेनापति, हम आश्रम के बहुत निकट रूके हुए हैं, तुम्हारे वचन का समर्थन नहीं करता। आज तो -

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं -

छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।

विश्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले

विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद्धनुः।।6।।

अथः- भैसे सींगों से बार-बार उछाले गये तालाब के जल में आलोडन करें। छाया में झुण्ड बनाकर मृगों के समूह निश्चिन्त हो जुगाली करें। बड़े-बड़े सूकर निर्भय होकर तलैयों में नागरमोथा खोदे और यह ढीले प्रत्यन्चाबन्धन वाला हमारा धनुष भी विश्राम करे ।।6।।

6. **महिषाः निपानसलिलं गाहन्ताम्**= भैंसे तालाबों के जल में स्नान करें । महिषः=भैंसे । नियतं पिबन्त्यस्मिन् इति निपानम् । कुएं के निकट के छोटे किन्तु यहॉ सामान्य जलाशय या तालाब का अर्थ है। शृड़गैः मुहुः ताडितम् = सीगों से बार-बार आलोडित किये गये (सलिलम् का विशेषण)। छायायां बद्धं कदम्बकं येन तत् तादृशम् । मृगाणां कुलम मृगकुलम् । रोमन्थम् अभ्यस्यतु = जुगाली करें। वराहपतिभिः वराहों के स्वामियों द्वारा अर्थात् बड़े-बडे सूकरों द्वारा । मुस्ताक्षतिः = मुस्ता नाम की घास उखाड़ने का कार्य पल्वले= गड्ढे में, तलैयों में । क्रियताम् - किया जाय ।

सेनापतिः यत्प्रभविष्णवे रोचते । जैसी आपकी इच्छा ।

राजाः तेन हि निवर्तय पूर्वगतान्वनग्राहिणः। यथा न मे सैनिका-स्तपोवनमुपरून्धन्ति तथा निषेद्धव्याः। पश्य-

शमप्रधानेषु तपोधंनेषु

गूढ़ हि दाहात्मकमस्ति तेजः।

स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्ता-

स्तदन्यतेजोभिभवाद् वमन्ति।।7।।

आगे गये हुए बनग्राहियों को लौटा दो ,मेरे सैनिक जिस तरह तपोवन में कोई विध्न न करें । वैसे ही निषेधित करें ।

अर्थ- शान्तिप्रधान तपस्वियों में जला देने वाला तेज छिपा रहता है । स्पर्श करने योग्य सूरूकान्त मणियों के समान वे दूसरे तेज से आक्रान्त होन पर अपने तेज को प्रकट करते है ।।7।।

7. **शमप्रधानेषु तपोधनेषु** = जिनमें शान्ति प्रधान है, जिनके मन में कोई विकार नहीं होता ऐसा तपस्वियों में दाहात्मकम् तेजः गूढम्=जलाने वाला तेज छिपा रहता है । स्पर्शानुकूलाः सूर्यकान्ताः इव = स्पर्श करने योग्य सूर्यकान्त मणियों के समान । अन्यतेजोभिभवात् = दूसरे ते द्वारा तिरस्कृत या

अभिभूत होने से।

सेनापतिः यदाज्ञापयति स्वामी।

सेनापतिः जैसी स्वामी की आज्ञा।

विदूषकः ध्वंसतां त उत्साहवृत्तान्तः।

विदूषकः भाड़ मे जाये तेरी उत्साहवर्धक बाते।

(निष्क्रान्तः सेनापतिः)

(सेनापति का प्रस्थान)निकल जाता है।

राजाः (सेनापति का प्रस्थान)

राजाः (परिजनं विलोक्य) अपनयन्तु भवत्यो मृगयावेशम्। रैवतक! त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरू।

राजाः (सेवकों को देखकर) आप लोग भी मृगया का वेश उतार दें। रैवतक, तुम भी अपना कार्य देखो।

परिजनः यद्देव आज्ञापयति। (इति निष्क्रान्तः)

परिजनः जैसी देव की आज्ञा।

(परिजनों का प्रस्थान)

विदूषकः **कृतं** भवतानिर्मक्षिकम् । सांप्रतमेतस्यां पादपच्छायायां विरचितलतावितानदर्शनीयायामासने निषीदतु भवान्, यावदहमपि सुखासीनो भवामि।

विदूषकः आपने मक्ख्यॉ भी भगादीं। अब इस लतावितान से सुन्दर लगने वाली वृक्ष की छाया में आप बैठें, तब तक मैं भी आराम से बैठू।

राजाः गच्छाग्रतः।

राजाः आगे चलो।

विदूषकः एतु भवान् (इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ)

विदूषकः आइये महाराज।

(दोनों घूमकर बैठते है)

राजाः माढव्य! अनवाप्तचक्षुःफलोऽसि, येन त्वया दर्शनीयं न दृष्टम्।

राजाः माढव्य, तुमने नेत्रों का फल नहीं प्राप्त किया तो देखने योग्य को देखा नहीं।

विदुषकः ननु भवानग्रतो मे वर्तते।

विदूषकः आप तो मेरे आगे ही है।

राजाः सर्वः खलु कान्तमात्मीयं पश्यति। तामाश्रमललामभूतां शकुन्तलामधिकृत्य ब्रवीमि।

राजाः सब अपने ही व्यक्ति को सुन्दर समझते हैं। उस आश्रम की शोभा शकुन्तला के विषय में कह रहा हूँ।

विदूषकः (स्वगतम्) भवतु अस्यावसरं न दास्ये। (प्रकाशम) भो वयस्य! ते तापसकन्यकाभ्यर्थनीया दृश्यते।

विदूषकः (स्वगत) अच्छा, इसे अवसर नहीं दूँगा। मित्र, लगता है अब तुम तपस्विकन्या की कामना करने लगे।

राजाः सखे ! न परिहार्ये वस्तुनि पौरवाणां मनः प्रवर्तते।

राजाः मित्र, परहेज करने योग्य वस्तुओं की ओर पुरूवंशियों का मन नहीं जाता।

सुरयुवतिसंभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।

अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्॥8॥

अर्थः- वह वस्तुतः अप्सरा से उत्पन्न है और उसके द्वारा छोड़ देने पर पायी जाने क कारण मुनि की पुत्री है। वह वैसी ही है, जैसे आक के पौधे पर टूट कर गिरा हुआ नवमालिका (चमेली) का फूल॥8॥

व्याख्या .8. सुरयुवतिसंभवम् = अप्सरा से उत्पन्न। अप्सरा जिसकी उत्पत्ति है। सुर युवतिः संभवः यस्य तत् (बहुव्रीहि)। मुनेः अपत्यम् = मुनि की सन्तान है। काले उज्झिताधिगतम् =उज्झितं च तत् अधिगत्म् इति (कर्मधारय) अर्कस्य = आक, धतूरा 'अर्कौऽर्कपर्णे स्फटिके रवौ ताम्रे दिवस्पतौ'- मेदिनी। नवमालिकाकुसुमम् = नवमालिकायाः कुसुमम् (तत्पुरूष) शकुन्तला नवमालिका के पुष्प् के समान है और कण्व की शुष्कता, पवित्रता, विरक्ति की ओर संकेत किया है। ' नवमालिकाकुसुमम् इव में उपमा है। आर्या छन्द है।

विदूषकः (विहस्य) यथा कस्यापि पिण्डखर्जूरैरूद्वेजितस्य तिण्तिण्यामभिलाषो भवेत तथा

स्त्रीरत्नपरिभाविनो भवत इयमभ्यर्थना।

विदूषक:(हँसकर) जैसे किसी भी पिण्डखजूर से ऊबे हुए को इमली खाने की इच्छा होती है वैसे ही उत्तम स्त्रियों का तिरसकार करने वाले आपकी यह कामना है।

राजा: न तावदेनां पश्यसि येनैवमवादीः।

राजा: तुमने अभी उसे देख नही है जिससे कह गये।

विदूषक:तत्खलु रमणीयं यद्भवतोऽपि विस्मयमुत्पादयति ।

विदूषक: वह तो निश्चय ही मनोहर होगी जो आप में भी विस्मय उत्पन्न कर रही है।

राजा: वयस्य ! किं बहुना।

राजा: मित्र, अधिक क्या कहें ।

चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्तवयोगा

रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।

स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे

धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।9।।

अर्थ:- मानों विधाता ने उसे चित्र में अंकित कर उसमें प्राणों का संचार कर दिया है, यहा रूप की राशि बने हुए अपने मन को ही लेकर उसी से उसकी रचना की है। जब मैं विधाता की सर्वशक्तिमत्ता और उसके शरीर पर विचार करता हूॅ तो वह मुझे स्त्रीरत्न की अनुपम सृष्टि प्रतीत होती है **।। 9 ।।**

व्याख्या . 9. चित्रे निवेश्य = चित्र में अंकित कर। परिकल्पितसत्तवयोगा = जिसमें जीवन का संचार किया गया है। रूपोच्चयेन = सौन्दर्य के समूह से, सौन्दर्य को एकत्र कर। रूपस्य उच्चयेन। मनसा = मन के द्वारा (अपने हाथों से नहीं)। विधिना = विधाता द्वारा, ब्रह्मा द्वारा विधत्ते इति विधिः। कृता नु = बनायी गयी है ' नु ' सन्देह को सूचित करता है। प्रथम दो पंक्तियों को दो वाक्यों के रूप में लिया जा सकता है अथवा एक वाक्य भी हो सकता है। स्त्रीरत्नसृष्टिः = स्त्रियों में श्रेष्ठ रचना स्त्रीरत्नस्य सृष्टिः **(तत्पुरूष)**। सा **(बहुव्रीहि)**। अपरा का अर्थ दूसरी भी लिया गया है। पहली स्त्रीरत्न की सृष्टि लक्ष्मी, तिलोत्तमा या उर्वशी को माना गया है, उसके बाद शकुन्तला दूसरी स्त्रीरत्न की सृष्टि है।

टिप्पणी - इस पद्य को कुछ विद्वानों नें चित्र पाठ माना है ,मनसा शब्द मनोयोगपूर्वक सर्जनाकी ओर संकेत करता है।

विदूषकः यद्येवं प्रत्यादेश इदानी रूपवतीनाम् ।

अर्थः- विदूषक यदि ऐसा है तो सभी सुन्दरियॉ आब तिरस्कृत हो गयी।

राजाः इदं च मे मनसि वर्तते -

राजाः और मेरे मन में तो ऐसा आता है कि

विशेष - स्त्रीरत्न का स्वरूप वृहत्संहिता में दिया गया है **-**

स्त्रीणाम् गुणा: यौवनरूप वेश दाक्षिण्य विज्ञानविलास पूर्वा: । स्त्रीरत्नसंज्ञा च गुणान्वितासु स्त्रीण्याधमोन्याश्चतुरस्यपुंस: । **78.13**

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै

रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं

न जाने भोक्तारं कमिह 'समुपस्थास्यति विधिः ।। 10 ।।

अर्थ - वह एक अनसूंघा पुष्प है, ऐसा पल्लव है जो नखों से तोड़ा नहीं गया है, एक अनबिंधा रत्न है, नया मधु है जिसके रस का आस्वादन नहीं किया गया है। वह पुण्य कर्मों के सम्पूर्ण एवं निष्कलुष फल के समान है। पता नहीं,विधाता इस लोक में किसे इसका भोक्ता बनाकर संयोग करायेगा ।।10।।

व्याख्या . 10. इस पद्य में शकुन्तला के निष्कुलष सौन्दर्य का वर्णन अनेक मनोरम उपमाओं द्वारा किया गया है। अनाघ्रतम् पुष्प् इव = जिसको किसी ने सूंघा नहीं है ऐसे पुष्प् के समान। न कररूहैः अलूनम् किसलयम् इव = नाखूनों से न काटे गये पल्लव के समान। स्वाभाविक कोमलता की ओर संकेत किया गया है। अनाविद्धम् रत्नम् = न छेदे गये रत्न के समान है।

अनास्वादितरसं मधु = जिसके रस का आस्वादन नहीं किया गया है ऐसा मधु है पुण्यानाम् अखण्डम् अनघं फलम् इव = पुण्यकर्मो के सम्पूर्ण एवं निर्दोष फल के समान है।

विदूषकः तेन हि लघु परित्रायतामेनां भवान्। मा कस्यापि तपस्विन् इङ्गुदीतैलमिश्रचिक्कणशीर्षस्य हस्ते पतिष्यति।

विदूषकः तब तो आप उसे शीध्र बचाइये। कहीं ऐसा न हो कि किसी इंगुदी के तेल से चिकने सिर वाले तपस्वी के हाथ में पड़ जाये।

राजा: परवती खलु तत्रभवती। न च संनिहितोऽत्र गुरूजनः।

राजा: वे तो पराधीना है और उनके पिता भी यहॉ नहीं है।

विदूषक: अत्रभवन्तमन्तरेण कीदृशस्तस्या दृष्टिराग ?

विदूषक: आपके प्रति उसकी प्रेमदृष्टि कैसी है।

राजा: निसर्गादेवाप्रगल्भः तपस्किन्याजनः। तथापि तु

राजा: स्वभाव से ही तपस्विकन्यायें लज्जाशीला होती है, फिर भी

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणं

हसितमन्यनिमित्तकृतोदयम्।

विनयवारितवृत्तिरतस्तया

न विवृतो मदनो न च संवृतः ।।11।।

अर्थ:- मेरे सामने देखने पर उसने ऑखे झुका ली। दूसरे बहाने से हॅसी। उसने अपने प्रेमभाव को जिसकी वृत्ति संयम के कारण नियन्त्रित कर ली गयी थी, तो खुलकर प्रकट किया और न ही छिपाया ।।11।।

व्याख्या . 11. इस पद्य में दुष्यन्त शकुन्तला की स्वाभाविक लज्जाशीलता का संकेत करता है। वह मुग्ध नायिका है अतः उसका यह संकोच ही गुण है। मयि अभिमुखे ईक्षणं संहृतम् = मेरे सामने देखने पर ऑखे झूका ली गयी । इससे शकुन्तला की श्रृगारलज्जा ध्वनित होती है । विनयवारितवृत्तिः = उसके द्वारा कामभाव को न तो व्यक्त किया गया और न पूर्णतः छिपाया गया। **न च संवृत'** में विरोधाभास है। यथासंख्य अलंकार है। वृत्यनुप्रास भी है। द्रुतविलम्बित छन्द है। लक्षण- द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ''।

विदूषक: न खलु दृष्टमात्रस्य तवाङ्कं समारोहति।

विदूषक: तो देखते ही तुम्हारी गोद में आकर नहीं बैठ जाती ?

राजा: मिथः प्रस्थाने पुनः शालीनतया काममाविष्कृतो भावः तत्रभवत्या

तथा हि -

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे

तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा।

आसीद्विवृत्तवदना च विमोचयन्ती

शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम् ।।12।।

राजाः परस्पर विदा होने के समय शालीनता के साथ ही उन्होंनें अपना प्रेम भाव निश्चित रूप से प्रकट कर दिया। क्योंकि -

अर्थः- वह सुन्दरी कुछ ही पग जाकर 'कुश का अंकुर पैर में चुभ गया' ऐसा विना अवसर के ही कहती हुई रूक गयी। वृक्षों की शाखाओं में नहीं उलझे हुए वल्कल को भी छुड़ाने का बहाना कर वह मेरी ओर देखती हुई खड़ी हो गयी थी।। **12** ।।

व्याख्या . 12. दर्भाड्कुरेण = कुश के नुकीले भाग से, दर्भस्य अड्कुरेण। अकाण्डे=विना अवसर के। न काण्डःअकाण्डः तस्मिन्। अचानक। तन्वी = पतले शरीर वाली, क्वृित्तवदना = मुख घुमाये हुए विवृत्तं वदनं यस्या सा (बहुव्रीहि)। वल्कलम् विमोचयन्ती=वल्कल वस्त्र को सुलझाती हुई, छुडाती हुई। वल्कल उलझा नहीं था, परन्तु राजा की ओर देखने के प्रयोजन से यह वस्त्र सुलझाने का बहाना कर सखियों से पीछे रह गयी और राजा की ओर मुख कर खड़ी हुई। यह मुग्धा नायिका की स्वाभाविक चेष्टा का वर्णन है। मुग्धा नायिका अपनी प्रेमभावना इसी प्रकार व्यक्त करती है। दोनों वाक्यों में व्याज से छिपाने का वर्णन होने से व्याजोक्ति भी है ' रेणरण ' मे छेकानुप्रास है।

विदूषकः तेन हिं गृहीत पाथेयो। कृतं त्वयोपवनं तपोवनमिति पश्यामि।

अर्थः- विदूषकः तब तो मार्ग के लिए कलेवा बॉध लो। देखता हूँ कि तुमने तपोवन को भी उपवन बना दिया।

राजाः सखे। तपस्विभिः कैश्चित्परिज्ञातोऽस्मि। चिन्तय तावत् केनापदेशेन सकृदप्याश्रमे वसामः।
राजाः मित्र कुछ तपस्वियों ने मुझे पहचान लिया है। जरा सोचो कि किस बहाने से एक बार ही फिर आश्रम में जा सकूं।

विदूषकः कोऽपरोऽपदेशस्तव राज्ञः? नीवारषष्ठभागमस्माकमुपाहरन्ति।

विदूषकः और कौन दूसरा बहाना है तुम्हारे जैसे राजा के लिए ? आप लोग नीवर का छठा भाग हमें लाकर दें ऐसा कहो जाकर।

राजाः मूर्ख, अन्यद् भागधेयमेतेषां रक्षणे निपतति, यद्रत्नराशीनपि विहायाभिन्द्यम्। पश्य

यदुत्तिष्ठति वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तत्फलम।

त्पः षड्भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः।।13।।

(नेपथ्ये)

हन्त सिद्धार्थौ स्वः।

अहा हम दोनों कृतार्थ हो गये

राजाः मूर्ख इनकी रक्षा केलिए तो दूसरा ही कर का अंश होता है, जो रत्नराशियों को छोड़कर भी अभिनन्दनीय होता है।

अर्थः- राजाओं को सभी वर्णो से जो कर रूपी फल मिलता है वह नश्वर होता है, किन्तु ये तपोवनवासी हमें तपस्या का छठा भाग देते हैं जो अक्षय्य होता है।।।13।।

13. वर्णेभ्यः उत्तिष्ठति=चारो वर्णो से उठता है, प्राप्त होता है । यहॉ चारों वर्णो के गृहस्थों से तात्पर्य है। गृहस्थों से वनवासी (आरण्यकाः) भिन्न है। नुपाणाम्=नृन पातीति नुपः क्षयि=नश्वर। तपःषड्भागम्=तपसः षड्भागम इति (तत्पु0)अक्षय्यम्=नष्ट न होने योग्य। क्षितपः षड्भागम्=तपस्या का छठा अंश, षट् भागः षड्भागः। तपस्या के धन की उत्कृष्टता वर्णित होने से व्यतिरेक अलंकार है।

(नेपथ्य में)अहा, हम दोनों कृतार्थ हो गये ।

राजाः (कर्ण दत्वा)अये! धीरप्रशान्तस्वरैस्तपस्विभिर्भवितव्यम् ।

अर्थः-(कान देकर) अरे, धीरे और प्रशान्त स्वर से लगता है कि तपस्वी लोग है (प्रविश्य)

दौवारिकः जयतु भर्ता । एतौ द्वे ऋषिकुमारकौ प्रतीहारभूमिमुपस्थितौ ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

दौवारिकः महाराज की जय । ये दो ऋषिकुकमार प्रतिहार-भूमि पर उपस्थित है ।

राजाः तेन हि अविलम्बितं प्रवेशय तौ ।

तो शीघ्र ले आओ उन दोनों को ।

दौवारिकः एष प्रवेशयामि । (इति निष्क्रम्य ऋषिकुमाराभ्यां सह प्रविश्य) इत इतो भवन्ती।

दौवारिकः अभी ले आया । (निकलकर दो ऋषिकुमारों के साथ प्रवेश कर) इधर-इधर आइये आप लोंग। (उभौ राजानम विलोकयतः) (दोनों राजा को देखते है।)

प्रथमः अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः। अथवोपपन्नमेतदृषिभ्यो नातिभिन्ने राजनि। कुतः-

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये

रक्षायोगादयमपि तपः प्रत्यहं संचिनोति।

अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारणद्वन्द्वगीतः

पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः ।।4।।

प्रथमः अहों, तेजसवी होने पर इसका शरीर विश्वास उत्पन्न कर रहा है। अथवा ऋषियों से बहुत भिन्न न दिखायी पड़ने वाले इस राजा के विषय में ऐसा अचित ही है, क्योंकि -

अर्थ - जैसे मुनि सभी शिष्यों द्वारा भोग्य गृहस्थाश्रम में स्थित है। जैसे मुनि शरीर रक्षा और आष्टांगिक योग के लिए प्रतिदिन तप का संचय करता है वैसे ही यह प्रजापरिपालन में तत्पर होकर प्रतिदिन पुण्य अर्जित कर रहा है। इसके लिए भी चारण स्त्री-पुरूष द्वारा गाया गया पवित्र 'मुनि' विशेषण आकाश को बार-बार छूता है, केवल राज शब्द उसके पूर्व संयुक्त रहता है।**।14।।**

व्याख्या . 14. आश्रमवासी राजा को एक तपस्वी के तुल्य बताते हुए अपने इस कथन का समर्थन करता है कि वह ऋषियों से अतिभिन्न नहीं है और इस कारण इसके प्रति विश्वास उत्पन्न होना उचित ही है । वसति अध्याकान्ता = घर बनाया है, निवास स्वीकार किया है । सर्वभोग्ये आश्रमे = सभी के द्वारा भोगे जाने योग्य, आश्रम में । रक्षायोगात् = (1) प्रजा की रक्षा के कारण या रक्षा रूपी योग द्वारा-राजा के पक्ष में । (2) धर्म की रक्षा करने वाले अष्टांग योग द्वारा-मुनि के पक्ष में। तपः संचिनोति = तपस्या का संचय करता है, धर्म का संचय करता है-राजा । चान्द्रायण आदि तप करता है मुनि । अस्य वशिनः = इस जितेन्दिय का । मुनि के समान राजा भी जितेन्द्रिय है। द्याम् स्पृशति= स्वर्ग को छूता है, स्वर्ग तक पहुँचता है । चारणद्वन्द्वगीतः=चारणों के द्वारा गाया गया। चारण लोग जोड़ों में ही उपस्थित होते है। राजपूर्वः राज शब्द जिसके पहले है ऐसा पवित्र मुनि शब्द अर्थात् राजमुनि=राजर्षि शब्द। राजन् इति शब्दों पूर्वः यस्मात् सः राजपूर्वः।

द्वितीयः गौतम! अयं स बलभित्सखो दुष्यन्तः।

द्वितीयः गौतम, क्या यही बल के सहारक इन्द्र का मित्र दुष्यन्त है?

प्रथमः अथ किम्?

प्रथमः और क्या?

द्वितीयः तेन हि-

द्वितीयः तब तो

नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्री-

मेकः कृत्स्नां नगरपरिधप्रांशुबाहुर्भुनक्ति।

आशसन्ते सुरयुवतयो बद्धवैरा हि दैत्यै-

रस्याधिज्ये धनुषि विजयं पौरूहूते च वज्रे ।।15।।

अर्थ- नगर की अर्गला के समान विशाल बाहु वाला यह राजा अकेले ही जो समुद्रों से श्याम वर्ण'की सीमा वाली धरती का पालन करता है उसमें कोई आश्चर्य नहीं , क्योंकि दैत्यों से वैर रखने वाली देवों की सुन्दरियॉ इसके प्रत्यंचायुक्त् धनुष पर और इन्द्र के वज्र पर विजय की आशा लगाये रहती **है। ।15।।**

व्याख्या . 15. न एतत् चित्रम् = यह आश्चर्यजनक नहीं है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उदधिश्यामसीमाम् कृत्स्नाम् धरित्रीम् = समुद्र जिसकी श्याम वर्ण की सीमा है ऐसी सम्पूर्ण पृथ्वी का। नगरपरिघप्राशुबाहुः= नगर की अर्गला के समान विशाल बाहुवाला, परिघ =अर्गला द्वारा बन्द करने की मोटी कीली। आशंसन्ते = आशा करते हैं। बद्ववैराः=जिनका दैत्यो से वैर है ऐसी देवों की स्त्रियॉं। बद्वं वैरं यासां ताः। अधिज्ये धनुषि = इस राजा के डोरी चढे हुए धनुष पर। पौरूहूतो वज्रे= इन्द्र के वज्र पर। पुरूहुत = इन्द्र (1) पुरू प्रचुरं हूतम् आह्वनं यज्ञेषु अस्य (2) पुरूणि हूतानि नामानि अस्य।

उभौ: (उपगम्य) विजयस्य राजन्।

दोनों (समीप जाकर)राजन् विज्यी होओ।

राजा: (आसनादुत्थाय) अभिवादये भवन्तौ।

राजा: (आसन से उठकर) आप दोनों का अभिवादन करता हूँ।

उभौ: स्वस्ति भवते। (इति फलान्युपहरतः)

दोनों- आपका कल्याण हो। (दोनों फल भेंट करते है)

टिप्पणी - रिक्त पाणिर्नसेवेत राजानं श्रोत्रियस्तथा। राजा और श्रोत्रिय के पास खाली हाथ नहीं

जाना चाहिए।

राजा: सप्रणामम् परिगृह्य आज्ञापयितुमिच्छामि।

राजा: (प्रणामसहित ग्रहण कर)आपकी आज्ञा पाना चाहता हूँ।

उभौ : विदितो भवानाश्रमसदामिहस्थस्ते भवन्तं प्रार्थयन्ते।

दोनों- आश्रमवासियों को यह ज्ञात हुआ है कि आप यहीं है, अतः वे आपसे प्रार्थना करते हैं।

राजा: किमाज्ञापयन्ति ?

राजा: क्या आज्ञा देते हैं?

उभौ: तत्रभवतः कण्वस्य महर्षेरसान्निध्याद्रक्षासि न इष्टिविध्नमुत्पादयन्ति । तत्कतिपयरात्रं सारथिद्वितीयेन भवता सनाथीक्रियतामाश्रम इति।

दोनों- पूज्य महर्षि कण्व के उपस्थित न होने से राक्षस हमारे यज्ञ में विघ्न उत्पन्न कर रहे है। तो कुछ रात्रियों तक सारथि को साथ लेकर आप आश्रम को सनाथ करें।

राजा:अनुहृहीतोऽस्मि। विदूषक (अपवार्य) एषेदानीमनुकूला तेऽभ्यर्थना।

राजा: मैं अनुगृहीत हुआ।

विदूषक: (अपवारित) यह प्रार्थना तो अब तुम्हारे अनुकूल है।

राजा: (स्मितं कृत्वा) रैवतक! मद्वचनादुच्यतां सारथिः सबाणासनं रथमुपस्थापयेति।

राजा: (मुस्कुराकर) रैवतक, मेरी ओर से सारथि से कहो कि धनुष्सहित रथ लेकर आवे।

दौवारिक: यद्देव आज्ञापयति। (इति निष्क्रान्त)

दौवारिक: जैसी महाराज की आज्ञा।(दौवारिक का प्रस्थान)

उभौ: (सहर्षम)

अनुकारिणि पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि।

आपन्नभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः।।16।

दोनों (सहर्ष)

अर्थ:- पूर्वजों का अनुकरण करने वाले तुम्हारे विषय में यह अनुरूप् है। पुरूवंशी राजा विपत्ति में पड़े हुए लोगो के अभयदान- रूपी सत्र यज्ञ में दीक्षित होते हैं।।16।।

व्याख्या . 16. पूर्वेषाम् अनुकारिणि त्वयि = अपने पूर्वजों का अनुकरण करने वाले तुम्हारे विषय में

। अनुकर्तु: शीलमस्य इति अनुकारी, इदम् युक्तरूपम् = यह उचित है,योग्य है। अतिशयेन युक्तरूपम् (प्रशंसायां रूपम् से रूपप् प्रत्यय)। आपन्नाभयसत्रेषु = विपत्तिग्रस्त लोगों को अभय देने के यज्ञों में।

टिप्पणी - सत्रयाग न्यूनतम् 12 दिन का होता है। सत्र शब्द से राजा के आश्रम में रूकनें की न्यूनतम समय सीमा की व्यंजना हुई है।

राजा: (सप्रणाम्) गच्छतं पुरो भवन्तौ अहमप्यनुपदमागत एव।

राजा: (प्रणाम करते हुए) आप लोग आगे चलें मै भी आपके पीछे ही पहुँच रहा हूँ।

उभौ: विजयस्व। (इति निष्क्रान्तौ)

दोनों- विजयी होओ। (दोनों का प्रस्थान)।

राजा: माढव्य! अप्यस्ति शकुन्तलादर्शने कुतूहलम्?

राजा: माढव्य, क्या तुम्हें शकुन्तला को देखने का कुतूहल है ?

विदूषक: प्रथमं सपरीवाहमासीत्। इदानी राक्षसवृत्तान्तेन बिन्दुरपि नावशेषितः।

विदूषक: पहले तो उमड़ रहा था। अब राक्षसों के वृत्तन्त से बिन्दुमात्र भी नहीं बचा है।

राजा: **मा भैषी**:। ननु मत्समीपे वर्तिष्यसे।

राजा: मत डरो, तुम तो मेरे पास ही रहोगे।

विदूषक: मैं राक्षसों से सुरक्षित हो गया।

विदूषक: एष राक्षसाद्रक्षितोऽस्मि। **(प्रविश्य)**

अर्थ:- (दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक: सज्जो रथो भर्तुर्विजयप्रस्थानमपेक्ष्यते। एष पुनर्नगराद्देवानीमाज्ञाप्तिहरः करभकः आगतः।

दौवारिक: रथ सज गया है और आपके विजय-प्रस्थान की प्रतीक्षा कर रहा है और इधर नगर से राजमाता का सन्देशवाहक करभक आया हुआ है।

राजा: (सादरम्) किमम्बाभिः प्रेषितः?

राजा: (आदरसहित) क्या माताजी को भेजा हुआ ?

दौवारिक: अथ किम् ?

दौवारिक: और क्या ?

राजा: ननु प्रवेश्याताम्

राजा: ले आओ उसे।

दौवारिक: तथा। (इति निष्क्रम्य, करभकेण सह प्रविश्य) एष भर्ता, उपसर्प।

दौवारिक: अच्छा। (निकलकर और करभक के साथ पुनः प्रवेश कर) ये महाराज हैं, पास जाओं

करभक: जयतु भर्ता। देव्याज्ञापयति-आगामिनि चतुर्थदिवसे प्रवृत्तपारणो में उपवासो भविष्यति।

तत्र दीर्घायुषावश्यं संभावनीया इति।

करभकः जय हो महाराज। देवी आज्ञा देती है - आगामी चौथे दिन मेरे उपवास का पारण होगा, उस अवसर पर चिरंजीवी आप अवश्य उपस्थित हों।

राजाः इतस्तपस्विकार्यम्, इतो गुरूजनाज्ञा। द्वयमप्यनतिक्रमणीयम्। किमत्र प्रतिविधयेम्?

राजाः इधर तपस्वियों का कार्य है, उधर गुरूजन की आज्ञा है। दोनों का अल्लंघन नहीं किया जा सकता। इस विषय में अब क्या उपाय करें?

विदूषकः त्रिशङ्कुरिवान्तराले तिष्ठ।

विदूषकः त्रिशंकु के समान बीच में लटके रहो

राजाः सत्यमाकुलीभूतोऽस्मि-

कृत्ययो र्भिन्निदेशत्वाद्वैधीभवति मे मनः।

पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा।।17।।

राजाः सचमुच, कुछ सोच नहीं पा रहा हूँ।

अर्थ - दोनों कार्यो के भिन्न-भिन्न स्थान पर होने के कारण मेरा मन वैसे ही द्विविधा में पड़ गया है जैसे आगे पर्वत से अवद्ध होकर नदी का प्रवाह **।।17।।**

व्याख्या 17. कृत्ययोः भिन्नदेशत्वात् = दो कार्यो के भिन्न - भिन्न स्थानों पर होने से भिन्नः देशः ययोः तयोः भावः तस्मात्। दो कार्य हैं। -तपस्विवचनपालन तथा माता के आदेश का पालन। में मनः द्वैधीभवति - मेरा मन दुविधा में पड़ा है। द्वयोः स्थानयोः स्थितिः द्वैधम्, द्वि धमुच् प्रत्यय। पुरः शैले प्रतिहतम् = आगे पर्वत से रोके गये, स्रोतोवहः स्रोतः यथा = नदी के प्रवाह के समान, स्रवति इति स्रोतः (स्रु गतौ = असुन् प्रत्यय तुक् , का आगम)

(विचिन्त्य) सखे! त्वमम्बया पुत्र इति प्रतिगृहीतः। अतो भवानितः प्रतिनिवृत्य तपस्विकार्यव्ग्रमानसं मामावेद्य तत्रभवतीनां पुत्रकृत्यमनुष्ठातुमर्हति।

(सोचकर) मित्र, तुम्हे माता जी ने पुत्र के रूप् में माना है। इसलिए आप यहॉ से लौटकर तपस्वियों

के कार्य में मेरा मन उलझ गया है ऐसा निवेदन कर माताजी का पुत्रकर्म करा दें।

विदूषकः न खलुस मां रक्षोभीरूकं गणय।

विदूषकः लेकिन मुझे राक्षसों से डरने वाला मत समझना।

राजा: (सस्मितम्) कथमेतद् भवति संभाव्यते ?

राजा: (मुस्कराकर) ऐसा आपके विषय में कैसे संभव हो सकता है ?

विदूषक: यथा राजानुजेन गन्तव्यं तथा गच्छामि।

विदूषक: जैसे राजा के अनुज को जाना चाहिए वैसे आऊँगा।

राजा: ननु तपोवनोपरोधः परिहरणीय इति सर्वानुयात्रिकांस्त्वयैव सह प्रस्थापयामि।

राजा: सचमुच, तपोवन में कोई विघ्न न हो इसलिए सभी अनुयात्रिकों को तुम्हारे साथ ही भेज दूँगा

विदूषक: तेन हि युवराजोऽस्मीदानीं संवृत्तः।

विदूषक: तब तो मै युवराज हो गया हॅू।

राजा: (स्वगत्) चपलोऽयं वटुः। कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तः पुरेभ्यः कथयेत्।

राजा: (स्वगत) यह बटु चपल है। कहीं मेरी शकुन्तला-विषयक अभिलाषा को अन्तः पुर की रानियों से न कह दे।

भवतु एनमेव वक्ष्ये। अच्छा इससे ऐसा कहूँ गा।

(विदूषक हस्ते गृहीत्वा प्रकाशम्) वयस्य! ऋषिगौरवादाश्रमं गच्छामि।

न खलु सत्यमेव तापस कन्यकायां ममाभिलाषः पश्य-

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो

मृगशावैः सममेधितो जनः।

परिहासविजल्पितं सखे।

परमार्थेन न गृहा्रतां वचः ।।18।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे) ।।इति द्वितीयोऽड्.कः।।

(विदूषक का हाथ पकड़कर प्रकट रूप में) वयस्य, ऋषियों के प्रति सम्मान के कारण आश्रम में जा रहा हॅू। वस्तुतः तपसिवकन्या में मेरी अभिलाषा की बात सत्य नहीं है देखो-

अर्थ - कहॉ हम और कहॉ कामभावना से दूर रहने वाला, मृगछौनों के साथ पालापोसा गया व्यक्ति? मित्र, परिहास में कहे गये वचनों को सत्य मत मान लेना ।।18।।(सबका प्रस्थान) ।।

द्वितीय अंक का वर्णन समाप्त।।

4.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् तृतीय अंक

अथ विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति कुशानादाय यजमानशिष्यः)

शिष्यः अहो! महानुभावः पार्थिवो दुष्यन्तः। प्रविष्टमात्र एवाश्रमं तत्रभवति राजनि निरूपद्रवाणि नः कर्माणि प्रवृत्तानि भवन्ति।

का कथा बाणसन्धाने जयाशब्देनैव दूरतः।

हुड्कारेणेव धनुष स हि विघ्नानपोहति ।।1।।

यावदिमान्वेदिसंसतरणार्थ उपनयामि । (परिक्रम्यावलोक्य च आकाश) प्रियंवदे! कस्येदमुशीरानुलेपनं मृगालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयंन्ते ? (आकर्ण्य) किं ब्रवीषि? आतपलड्घनाद् बलवदस्वस्था शकुन्तला, तस्याः शरीरनिर्वाणायेति ? तर्हि त्वरितं गम्यताम्। सखि, सा खलु भगवतः कण्वस्य कुलपतेरूच्छवसितम्। अहमपि तावद्वैतानिकं शान्त्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्जयिष्यामि।

(इति निष्क्रान्तः) ।।इति विष्कम्भकः।।

अर्थः- (विष्कम्भक)

(तब कुशों को लेकर यजमान कण्व का शिष्य प्रवेश करता है)

शिष्यः अहो, राजा दुष्यन्त महाप्रभावशाली है। उन महाराज के आश्रम में प्रवेश करते ही हमारे यज्ञकर्म निर्विघ्न सम्पन्न हो रहे है।

अर्थ- बा ण चलाने की तो बात ही क्या, वे दूर से प्रत्यन्चा की टंकार मात्र से ही जो मानो धनुष् की हुंकार से , विघ्नों को दूर भाग देते है **।।1।।**

तब तक वेदी पर बिछाने के लिए इन कुशों को . ऋत्विजों के पास पहुँचता हूँ। (घूमकर और और देखकर, आकाशभाषित) प्रियंवदा, किसके लिए यह खस का लेप और नालसहित कमलिनी के पत्ते लिये जा रही हो ? (सुननु का अभिनय कर) क्या कहती हो ? लू लगने से शकुन्तला बहुत अस्वस्थ है, उसके शरीर को शान्ति देने के लिए? तो शीघ्र जाइये। सखि वह तो कुलपति भगवान कण्व का प्राण है। मैं भी तब तक उसके लिए यज्ञ का शान्तिजल गौतमी के हाथ भेजता हूँ। (यह कहकर चला जाता है)। (ततः प्रविशति कामयमानावस्थो राजा)

राजाः (निःश्वस्य)

जाने तपसो वीर्य सा बाला परवतीति मे विदितम्।

अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम् ।।2।।

(मदनाबाधां निरूप्य) भगवन्कुसुमायुध! त्वया चन्द्रमसा च विश्वसनीयायामतिसन्धीयते कामिजनसार्थः। कुतः

त्व कुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो-

र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।

विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै-

स्त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि।।3।।

(तब विरही जैसी अवस्था में राजा प्रवेश करता है।)

राजाः (लम्बी श्वास लेकर)

अर्थ - तपस्या की शक्ति को जानता हूँ। वह मुग्धा बाला पराधीना है यह भी मुझे विदित है, फिर भी मैं इस हृदय को उसके समीप से लौटा लेने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ ।।2।।

(कामपीड़ा का अभिनय कर) भगवान् कुसुमायुध, तुम और चन्द्रमा दोनों ही विश्वसनीय हो, किन्तु तुम दोनों ही कामपीडित जनों के समूह को धोखा दे रहे हो क्योंकि-

अर्थ - तुम्हारा पुष्पों के बाण वाला होना और चन्द्रमा का शीतल किरणों वाला होना, दोनों ही बातें मेरे जैसों के लिए विपरीत दिखायी पड़ रही है। चन्द्रमा तो हिमशीतल किरणों द्वारा अग्नि बरसा रहा है और तुम भी पुष्प् बाणों को वज्र की शक्ति से भर दे रहे हो ।।3।।

व्याख्या . 3.तव कुसुमशरत्वम् = तुम्हारा पुष्पबाण वाला होना, कुसुमानि एव शराः यस्य यः कुसुमशरः तस्य भाव । इन्दोः शीतरश्मित्वम् = चन्द्रमा का शीतल किरणों वाला होना, शीताः रश्मयः यस्य तस्य भावः। कामदेव और चन्द्रमा दोनों ही सुख देते हैं अतः विश्वसनीय हैं, किन्तु कामसन्तप्त विरही जनों को ये और भी सन्तप्त करते हैं। इदं द्वयं मद्विधेषु अयथार्थम् दृश्यते =ये दोनों मुझ जैसे के लिये असत्य शीतरश्मित्व। अर्थस्य योग्यं सदृशं वा यथार्थ तस्य विरूद्धम् अयथार्थम् , न यथार्थम् (नञ् तत्पु0) इनदुः हिमगर्भैः मयूखैः अग्नि विसृजति = चन्द्रमा हिमगर्भित किरणों से अग्नि बिखेर रहा है। रात्रि में चन्द्रमा पीड़ित कर रहा है और दिन में कामदेव पुष्पों के बाणों से दग्ध कर

रहा है। त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि = तुम भी पुष्पों के बाणों को वज्र की शक्ति से युक्त कर रहे हो या वज्र के समान दृढ बना रहे हो। वज्रस्य सारः इव सारः येषां ते वज्रसाराः (बहुव्रीहि)। न वज्रसाराः अवज्रसारा, अवज्रसारान् वज्रसारान् करोषि इति वज्रसारी करोषि (च्वि प्रत्यय)।

(परिक्रम्य) क्व नु खलु संस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः श्रमक्लान्तमात्मानं विनोदयामि ? (निःश्वस्य) किं नु खलु से प्रियादर्शनादृते शरणमन्यत् ? यावदेनामन्विष्यामि। (सूर्यमवलोक्य) इमामुग्रातपवेलां प्रायेण लतावलयवत्सु मालिनीतीरे ससखीजना शकुन्तला गमयति। तत्रैव तावद्गच्छामि ।

(परिक्रम्य संस्पर्श रूपयित्वा) अहो, प्रवातसुभगोऽयमुद्देशः।

शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरङ्गाणाम्।

अङ्गैरनङ्गतप्तैरविरलमालिङ्गितुं पवनः।।4।।

अर्थः-(घुमकर) यज्ञ कर्म के पूरा हो जाने पर तपस्वियों से जाने की अनुमति पाकर अब कहॉ जाकर श्रम से थके मन को बहलाऊँ (लम्बी सॉसे लकर)मेरे लिए प्रिया के दर्शन को छोड़कर और शरण ही कहॉ है? तो उसे ही ढूढ ता हूँ। (सूर्य की ओर देखकर) शकुन्तला इस तीव्र धूप की वेला को प्रायः लताकुंजो वाले मालिनि के तट पर सखियों के साथ बिताती है। तो वहीं चलता हूँ (घूमकर और वायु के स्पर्श का अभिनय कर) अहो, यह स्थान तो सुन्दर वायु से मनोहर है।

अर्थ - काम से तप्त अंगो से कमलों के गन्ध से युक्त और मालिनी के तरंगों के कण लेकर बहने वाले पवन का प्रगाढ अलिगन किया जा सकता है **।।4।।**

(परिक्रम्यावलोक्य च) अस्मिनवेतसपरिक्षिप्ते लतामण्डपे संनिहितया तया भवितव्यम्। तथा हि-

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढ़ा जघनगौरवात् पश्चात्।
द्वारेऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्तिर्दृश्यतेऽभिनवा।।5।।

यावद्विटपान्तरेणावलोकयामि (परिक्रम्य तथा कृत्वा, सहर्षम्) अये, लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। एषा में मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमाघिशयाना सखीभ्यामन्वास्ते । भवतु श्रोष्याम्यासां विश्रम्भकथितानि।(इति विलोकयन् स्थित:)।

(ततः प्रविशति यथोक्तव्यापरा सह सखीभ्यां शकुन्तला) (घूमकर और देखकर) इस बेतो से घिरे

लतामण्डप में ही वह बैठी होगी। क्योंकि (नीचे देखते हुए) -

अर्थ - इसके पाण्डुवर्ण की बालुका वाले द्वारा पर चरणचिह्नों की नयी पंक्ति दिखायी दे रही है, जो आगे की ओर उठी हुई है और पीछे की ओर नितम्बों की गुरूता के कारण अधिक धंसी हुई है।।5।।

सख्यौ - (उपवीज्य सस्नेहम) हला शकुन्तले! टपि सुखयति ते नलिनीपत्रवातः?

दोनों ; सखियॉः (पंखा झलकर, स्नेहपूर्वक) सखि शकुन्तला, क्या कमलिनी के पत्ते की वायु तुझे सुख दे रही हैं?

शकुन्तलाः किं वीजयतो मां सख्यौ ?

शकुन्तलाः क्या सखियॉ मझ पर हवा कर रही है ?

(सख्यौ विषादं नाटयित्वा परस्परमवलोकयतः)

(सखियॉ विषाद का अभिनय करती हुई एक दूसरे को देखती है)

राजाः बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला दृष्यते । (सवितर्कम्) तत्किमयमातपदोषः स्यात् उत यथा मे मनसि वर्तते ? (साभिलाषं निर्वर्ण्य) अथवा कृतं सन्देहेन -

स्तनन्यस्तोशीरं शिथिलितमृणालैकवलयं

प्रियायाः साबाधं किमपि कमनीयं वपुरिदम् ।

समस्तापः कामं मनसिजनिदाघप्रसरयो -

र्न तु ग्रीष्मस्यैवं सुभगमपराद्धं युवतिषु ।। 6 ।।

राजाः शकुन्तला का शरीर बहुत अधिक अवस्थ दिखायी दे रहा है। (वितर्क के साथ) तो क्या यह लू का रोग है या जैसा मेरे मन में है वैसा ही है। (अभिलाषापूर्वक ध्यान से देखकर) अथवा सन्देह कैसा ?

अर्थः- प्रिया का यह अस्वस्थ शरीर, जिसके स्तनों पर खस का लेप रखा गया है, और जिसमें धारण किया गया कमलनाल का एक कंकण शिथिल हो गया है , कुछ ही मनोहर लग रहा है। निश्चय ही, कामदेव और लू के प्रभाव में ताप समान होता है , किन्तु युवतियों पर ग्रीष्म का प्रभाव ऐसा सौन्दर्यवर्धक नहीं होता ।। 6 ।।

प्रियंवदाः (जनान्तिकम्) अनसूये ! तस्य राजर्षेः प्रथमदर्शनादारभ्य पर्युत्सुकेव शकुन्तला। किं नु खलु तस्यास्तन्निमित्तोऽयमातङ्को भवेत् ?

प्रियंवदाः (जनान्तिक) अनसूया, उस राजर्षि के प्रथम दर्शन के समय से ही शकुन्तला उत्कण्ठित-सी रहती है, कहीं ऐसा तो नहीं कि इसका यह रोग उसी के लिए हो ?

अनुसूयाः सखि ! ममापीदृश्याशङ्का हृदयस्य। भवतु प्रक्ष्यामि तावदेनाम्। (प्रकाशम्) सखि !

प्रष्टव्यासि किमपि। बलवान्खलु ते सन्तापः।

अनसूया: सखि मेरे भी मन में ऐसी भी आशंका है। अच्छा, तो पूछती हूॅं इससे (प्रकट रूप में) सखी, तुझसे कुछ पूछना है। सचमुच, तेरा सन्ताप बहुत अधिक है।

शकुन्तला: (पूर्वार्धेन शयनादुत्थाय) हला! किं वक्तुकामासि ?

अर्थ: शकुन्तलाः(शरीर के ऊपर के भाग को शय्या से उठाकर) सखि, क्या कहना चाहती हो ?

अनसूया: हला शकुन्तले ! अनभ्यन्तरे खल्वावां मदनगतस्य वत्तान्तस्य । किन्तु यादृशीतिहासनिबन्धेषु कामयमानानामवस्थ श्रूयते तादृशीं तब पश्यामि । कथय किं निमित्तं ते सन्ताप: विकारंखलु परमार्थतोज्ञात्वानारम्भ: प्रतीकारस्य।

अनसूयाः सखि शकुन्तला, कामविषयक वृत्तान्त मे हमारी कोई पहुँच नहीं है, किन्तु इतिहास की कथाओं में कामपीड़ितो की जैसी अवस्था सुनने में आती है, वैसी ही दशा तेरी देख रही हूँ। बोलो, किस कारण से तेरा यह सन्ताप है। रोग, को ठीक - ठीक जाने विना उसकी चिकित्सा नहीं आरम्भ की जा सकती।

राजा: अनसूयामप्नुगतो मदीयस्तर्कः। नहि स्वाभिप्रायेण में दर्शनम्।

राजा: अनसूया के मन में भी मेरा ही तर्क उठा है। ज्ञान अपने प्रयोजन से ही प्रेरित नहीं है।

शकुन्तला:(आत्मगतम्) बलवान्खलु मेऽभिनिवेशः। इदानीमपि सहसैतयोर्न शक्नोमि निवेदयितुम्।

शकुन्तला: (आत्मगत) सचमुच, मेरा अभिनिवेश प्रबल है। अब भी मैं सहसा इन दोनों के कह नहीं पा रही हूँ।

प्रियंवदा: सखि शकुन्तले! सुष्ठु एषा अवितथमाह भणति। किमात्मन आतङ्कमुपेक्षसे? अनुदिवसं खलु परिहीयसेऽङ्गैः। केवलं लावण्यमयी छाया त्वां न मुञ्चति।

प्रियंवदा: सखि शकुनतला, यह ठीक ही कह रही है। अस्वस्थाता की उपेक्षा क्यों कर रही हो? दिन-दिन तेरे अंग दुर्बल होते जा रहे हैं, केवल कान्ति की शोभा तेरा साथ नहीं छोड़ रही है।
राजा: अवितथमाह प्रियंवदा। तथा हि,

क्षामक्षामकपोलमाननमुरः काठिन्यमुक्तंस्तनं
मध्यः क्लान्ततरः प्रकामविनतावंसौ छविः पाण्डुरा।
शोच्या च प्रियदर्शना च मदनक्लिष्टेयमालक्ष्यते
पत्राणामिव शोषणेन मरूता स्पृष्टा लता माधवी ।। 7 ।।

राजा: सत्य ही कहा प्रियंवदा ने । क्योंकि -

अर्थ - मुख अत्यन्त दुर्बल कपोलो वाला होगया है । वक्षस्थल से स्तनों की कठोरता चली गयी है। कटि और भी क्षीण हो गयी है। कन्धे बहुत अधिक झुक गये हैं और शरीर की कान्ति पियरा गयी है। पत्तों को सुखाने वाले वायु द्वारा स्पर्श की गयी माधवी लता के समान मदनसन्तप्ता यह दयनीया लगने के साथ ही देखने में मनोहर लग रही है **।।7।।**

शकुन्तला: सखि! कस्य वाऽन्यस्य कथयिष्यामि? आयासयित्रीदानी वा भविष्यामि ।

अर्थ: सखि, और किससे कहूँगी ? तुम दोनों को कष्ट देने वाली ही बनूँगी ।

उभे: अतएव खलु निर्बन्धः। स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःख सह्य वेदनं भवति ।

दोनों सख्यिॉ: इसी से तो हमारा आग्रह है। क्योंकि जनों में बांट लेने पर दुखः की वेदना सह्य बन जाती है ।

राजा:

पृष्टा जनेन समदुःखसुखेन बाला

नेयं न वक्ष्यति मनोगतमाधिहेतुम्।

दृष्टो निवृत्य बहुशोऽप्यनया सतृष्ण-

मत्रान्तरे श्रवणकातरतां गतोऽस्मि ।। 8।।

राजा: दुःख एवं सुख में सहभागी व्यक्ति के पूछने पर यह मुग्धा बाला मन में छिपाये गये व्यथा के कारण को नहीं बातयेंगी ऐसा नहीं हो सकता । यद्यपि इसने मुड-मुड़ कर मुझे कई बार प्यासे नयनों से देखा है, तथापि इस बीच मैं सुनने के लिए कातर हो उठा हॅू ।8 ।

शकुन्तला: सखि ! यतः प्रभृति मम दर्शनपथमागतः स तपोवनरक्षिता राजर्षिः तत आरभ्य तद्गतेनाभिलाषेणैतदवस्थास्मि संवृत्ता ।

शकुन्तला: सखि जिस समस से वह तपोवन का रक्षक राजर्षि मेरी दृष्टि मे आया उसी समय से

उसको पाने की अभिलाषा से मैं इस दशा में पहॅुच गयी हूँ।

राजा: (सहर्षम्) श्रुतं श्रोतव्यम् ।

अर्थ: (सहर्ष) सुन लिया जो सुनना चाहता था ।

स्मर एवं तापहेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः।

दिवस इवार्धश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य ।। 9 ।।

अर्थ - कामदेव ही मेरे सन्ताप का हेतु था और वही मुझे शान्ति देने वाला हो गया, जैसे जीवलोक के लिए ग्रीष्म की समाप्ति पर आधी बदली वाला दिवस होता है ॥ 9 ॥

शकुन्तलाः तद्यपि वामनुमतं तदा तथा वर्तेथां तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि । अन्यथाऽवश्यं सिन्चतं में तिलोदकम् ।

शकुन्तलाः तब यदि तुम दोनों को उचित लगे तो ऐसा करो जिससे उस राजर्षि की मेरे ऊपर कृपा हो, नही तो मेरे लिए अवश्य ही तिलोदक की अंजलि देना ।

राजाः संशयच्छेदि वचनम् ।

राजाः इस वचन ने सब संशय समाप्त कर दिया ।

प्रियंवदाः (जनान्तिकम्) अनसूये! दूरगतमन्मथाक्षमेयं कालहरणस्य ।

यस्मिन्बद्धभावैषा स ललामभूतः पौरवाणाम् तद्युक्तमस्या अभिलाषोऽभिनन्दितुम् ।

प्रियंवदाः (जनान्तिक) अनसूया, इसकी कामव्यथा बहुत दूर तक बढ गयी है, यह विलम्ब सहन नहीं कर सकती , इसकी अभिलाषा अभिनन्दन के योग्य है ।

अनसूयाः तथा यथा भणसि ।

अनसूयाः ऐसा ही है जैसा तुम कह रही हो ।

प्रियंवदाः (प्रकाशम्) सखि ! दिष्ट्यानुरूपसतेऽभिनिवेशः। सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति ? क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते ?

प्रियंवदाः (प्रकट रूप में) सखि, सौभाग्य से तेरा झुकाव तेरे अनुरूप ही है । सागर को छोड़कर और कहॉ महानदी गिरती है ? सहकार को छोडकर और कौन वृक्ष पल्लविता माधवीता के भार को सॅभाल पाता है ?

राजाः किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते ?

राजाः इसमें आश्चर्य ही क्या, यदि दोनों विशाखाएं चन्द्रलेखा का अनुसरण कर रही हैं?

अनसूयाः कःपुनरूपायो भवेद्येनाविलम्बितं निभृतं च संख्या मनोरथं संपादयावः?

अर्थः अनसूयाः कौन सा ऐसा उपाय हो सकता है, जिससे हम अविलम्ब और गुप्त रूप से सखी की

मनोकामना पूरी करें?

प्रियंवदाः निभृतमिति चिन्तनीयं भवेत शीघ्रमिति सुकरम् ।

प्रियंवदाः ' गुप्तरूप से' यह बात तो सोचनी पड़ेगी किन्तु 'शीघ्र' कहो तो यह बहुत सरल है।

अनसूयाः ननु स राजर्षिरेतस्यां स्निग्धदृष्ट्या सूचिताभिलाष एतान् दिवसान् प्रजागरकृशो लक्ष्यते।

अनसूयाः उस-राजर्षि ने इस पर प्रेमपूर्ण दृष्टि से अपनी अभिलाषा सूचित कर दी है और वह इन दिनों रात-रात भर जागने से दुर्बल दिखायी दे रहा है।

सराजाः यमित्थंभूत एवास्मि। तथा हि -

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्विवर्णमर्णमणीकृतं

निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः।

अनभिलुलितज्याघाताङ्क मुहुर्मबन्धनात्

कनकवलंयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ।।10।।

राजाः सचमुच, मैं ऐसा ही हो गया हूँ। क्योंकि

अर्थ - रात-रात भर बाहु के ऊपर रखे गये ऑख के कोने से बहते हुए और हृदय के ताप से उष्ण ऑसुओं से जिसकी मणियॅा मलिन बना दी गयी है ऐसा यह सोने का कंकण कलाई से गिर-गिर जा रहा है और जब मैं इसे बार-बार ऊपर उठाता हॅू तो धनुष की प्रत्यंचा के आघातचिन्ह को स्पर्श नहीं करता **।।10।।**

प्रियंवदाः (विचिन्त्य) हला! मदनलेखोऽस्य क्रियताम्। इमं देवप्रसादस्यापदेशेन सुमनोगोपितं कृत्वा तस्य हस्तं प्रापयिष्यामि।

प्रियंवदाः (सोचकर) सखि, उसके लिये एक प्रेमपत्र लिखवाया जाये, उसे मैं फूलों में छिपाकर देवता के प्रसाद के बहाने से उसके हाथ में पहुँचा दॅूगी।

अनसूयाः रोचते मे सुकुमारः प्रयोगः। किं वा शकुन्तला भणति ?

अनसूयाः यह सुन्दर प्रयोग मुझे भी चॅच रहा है, लेकिन शकुनतला क्या कह रही है ?

शकुन्तलाः को नियोगो विकल्प्यते ?

शकुन्तला ; क्या मैं तुम दोनों का आदेश टाल सकती हॅू ?

प्रियंवदाः तेन ह्यात्मन उपन्यासपूर्वं चिन्तय तावल्ललितपदबन्धनम्।

प्रियंवदाः तब अपना उल्लेख करते हुए कोई सुन्दर पद्य सोचो।

शकुन्तलाः हला चिन्तयाम्यहम्। अवधीरणाभीरूकं पुनर्वेपते मे हृदयम्।

शकुन्तलाः सखि, सोचती हूॅ, किन्तु तिरस्कार के डर से शङ्कित मेरा हृदय कॉप रहा है?

राजाः (सहर्षम्) -

अयं स ते तिष्ठति सङ्गमोत्सुको

विशङ्कसे भीरू! यतोऽवधीरणाम्।

लभेत् वा प्रार्थयिता न वा श्रियं

श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्॥11॥

अर्थ- हे भयशीले, तुम जिसस तिरस्कार की आशंका कर रही हो वह मैं तुम्हारे मिलन के लिए उत्कण्ठित होकर उपस्थित हूँ। याचना करने वाला लक्ष्मी को प्राप्त करे, चाहे न करे, किन्तु लक्ष्मी जिस पुरूष को चाहती हो वह उसके लिए दुर्लभ कैसे हो सकता है **? ॥ 11॥**

सख्यौः आत्मगुणावमानिनि! क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं शारदीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति ?

दोनों सखियॉः अरी अपने गुणों का अपमान करने वाली, अब कौन भला शरीर को शान्ति देने वाली शरद् की चॉदनी को वस्त्र के छोर से रोकता है ?

टिप्पणी - ग्रीष्म ऋतु में ज्योत्सना की तरह शीतलता के शरीर में है , जो उसे वरवर्णिनी नारी सिद्ध करता है।

शकुन्तलाः (सस्मितम्) नियोजितेदानीमस्मि।

शकुन्तलाः (मुस्कान के साथ) अब तो मैं इस कार्य में लगा ही दी गयी हूँ। (बैठकर सोचती है।)

राजाः स्थाने खुल विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि। यतः

उन्नमितैकभ्रूलत्तमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः॥
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन॥ 12॥

राजाः सचमुच ठीक अवसर पर अपलक नेत्र से प्रिया को देख रहा हूँ क्योंकि -

अर्थ- पदो की रचना करती हुई इसका मुख, जिसकी एक भ्रूलता ऊपर उठी हुई है, रोमांचयुक्त कपोल से मेरे प्रति अनुराग को व्यक्त कर रहा है॥12॥

शकुन्तलाः हला, चिन्तितं मया गीतवस्तु। न खलु संनिहितानि पुनर्लेखनसाधनानि।

शकुन्तलाः सखि, मैंनं गीत का विषय सोच लिया है, परन्तु लिखने के साधन तो पास में है ही नहीं।

प्रियंवदाः एतस्मिन्शुकोदरसुकुमारे नलिनीपत्रे नखैर्निक्षिप्तवर्ण कुरू ।

प्रियंवदाः इस शुक के उदर के समान कोमल कमलिनी के पत्ते पर नखों से वर्ण अङ्कित कर दो।

शकुन्तलाः (यथोक्त रूपयित्वा) हला! शृणुतमिदानीं संगतार्थ न वेति।

उभेः अवहिते स्वः।

शकुन्तलाः (वाचयति)

त्व न जाने हृदयं मम पुनः कामो दिवापि रात्रावपि।

निर्घृण! तपति बलीयस्त्वयि वृत्तमनोरथान्यङ्गानि।।13।।

शकुन्तलाः (कहे गये अनुसार करने का अभिनय कर) सखि, तुम दोनों सुनो, ठीक अर्थ निकल रहा है या नहीं।

दोनो सखियॉः हम दोनों ध्यान दे रही है।

शकुन्तलाः (वॉचती है)

अर्थ - हे निर्दय, तुम्हारे हृदय को मैं नहीं जानती, किन्तु कामदेव दिन में भी और रात में भी तुम्हारे में अपनी साध लगाये हुए मेरे अंगों को अत्यधिक ताप दे रहा **है ।।13।।**

राजः (सहसोपसृत्य)

तपति तनुगात्रि! मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।।

ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा हि कुमुद्वतीं दिवसः।।14।।

राजाः (सहसा आगे बढ़कर)-तन्वङ्गि। मदन तुम्हें ताप दे रहा है, किन्तु मुझे तो वह निरन्तर जला ही रहा है। दिवस जितना चन्द्रमा को कान्तिविहीन कर देता है उतना कुमुदिनी को नहीं ।।14।।

सख्यौः (सहषम्)स्वागतमविलम्बिनो मनोरथस्य।)

दोनों सखियॉ (सहर्ष) स्वागत है विलम्ब न करने-वाले मनोरथ का।

(शकुन्तलाऽभ्युत्थातुमिच्छति (शकुन्तला सम्मानप्रदर्शन हेतु उठना चाहती है।)

राजाः अलमलमायासेन।

सन्दष्टकुसुमशनानयाशुक्लान्तबिसभङ्गसुरभीणि ।

गुरूपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ।।15।।

तुम्हारे ये अड्ग, जिनमें पुष्प् की शय्या लगी हुई है, जो शीघ्र मुरझाये हुए कमलनाल के खण्डों से सुगन्धित हैं, शिष्टाचार के योग्य नहीं है **।।15।।**

अनसुयाः इतः शिलातलैकदेशमलकरोतु वयस्यः।

अनसूयाः इधर, शिलातल के एक भाग को प्रिय मित्र अलंकृत करें।

(राजोपविशति, शकुन्तला सलज्जा तिष्ठति) (राजा बैठता है शकुन्तला लज्जि होकर बैठी रहती है।)

प्रियंवदाः द्वयोर्ननु युवयोरन्योन्यानुरागः प्रत्यक्षः सखीस्नेहो मां पुनरूक्तवादिनीं करोति।

प्रियंवदाःतुम दोनों को एक दूसरे का प्रेम ज्ञात है। किन्तु सखी का प्रेम मुझे पुनः कहने के लिए प्रेरित कर रहा है।

राजाः भद्रे! नैतत्परिहार्यम्। विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति।

राजाः भद्रे, इसमें संकोच न करें। क्योंकि जिसके कहने की इच्छा हो उसे न कहने पर पश्चात्ताप ही होता है।

प्रियंवदाः आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितत्यमित्येष युस्माकं धर्मः।

प्रियंवदाः विपत्ति में पड़े हुए राज्य के निवासी व्यक्ति के लिए राजा को कष्टनिवारक होना चाहिए यह आप लोगों का धर्म है।

राजाः नास्मात्परम्।

राजाः इससे बढकर काई धर्म नहीं।

प्रियंवदाः तेनहीयमावयो: प्रियसखी त्वामुद्दिश्येदमवस्थान्तरं भगवता मदनेनारोपिता। तदर्हस्यभ्युपत्या जीवितं अस्या : अवलम्बितुम्।

प्रियंवदाः तो इस कारण हमारी इस प्रियसखी को भगवान् कामदेव ने तुम्हें लक्ष्य कर और ही

अवस्था में पहुँ चा दिया है, अतः आप अनुग्रह कर इसका जीवन बचायें।

राजाः भद्रे ! साधारणोयं प्रणय: सर्वथानुगृहीतोस्मि।

राजाः भद्रे , यह प्रार्थना दोनों ओर समान है। मैं सर्वथा अनुग्रहीत हुआ हूँ।

शकुन्तलाः (प्रियंवदामवलोक्य) हला ! किमन्तुः पुरविरहपर्युत्सुकस्य राजर्षेरूपरोधंन ?

शकुन्तलाः (प्रियंवदा को देखकर) सखि अन्तपुर की रानियों के विरह से उत्कण्ठित राजर्षि को क्यों रोकती हो ?

राजाः **इदमनन्यपरायणमन्यथा**

हृदयसन्निहिते ! हृदयं मम ।

यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे

मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः।।16।।

अर्थ- हृदय के भीतर सम्यक् निवास करने वाली प्रिये, यदि तुम मेरे इस अनन्यपरायण हृदय की अन्यथा समझती हो, तो मदिरेक्षणे, कामदेव के बाणों सेबिद्ध हुआ भी मैं पुनः मारा गया **।।16।।**

अनुसूयाः वयस्य! बहुवल्लभा राजानःश्रूयन्ते । यथा नौ प्रियसखी बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वर्तय ।

अनसूयाः प्रिय मित्र सुना जाता है कि राजाओं की अनेक पत्नियॉ होती है । हमारी यह प्रियसखी अपने बन्धुओं के लिए चिन्ता का कारण न बन जाये, ऐसा ही व्यवहार करें ।

राजाः भद्रे । किं बहुना-

राजाः भद्रे अधिक क्या कहूँ ?

परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।

समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ।।17।।

अर्थ-अनेक पत्नियों के होने पर भी मेरे वंश की प्रतिष्ठा दो ही है-समुद्ररूपी वस्त्र वाली पृथ्वी और

मनोहर वस्त्र धारण करने वाली आपकी यह सखी **।।17।।**

उभेः निर्वृते स्वः।

दोनो सखियॉः हम दोनों निश्चिन्त हो गयी हैं ।

प्रियंवदाः अनसूये! यथैष इतो दत्तदृष्टिकरूत्सुको मृगपोतको मातरमन्विष्यति ।

एहि संयोजयाव एनम्। (इत्युभे प्रस्थिते)

प्रियंवदा: (अन्यत्र दृष्टि डालते हुए)-अनसूया, देखो, यह बेचारा मृगछौना इधर ही दृष्टि डाले हुए अपनी मॉ को ढूँढ रहा है। आओ, इसे पहुँ चा दें।(दोनों जाने लगती है।

शकुन्तला: हला! अशरणास्मि। अन्यतरा युवयोरागच्छतु।

शकुन्तला: क्या दोनों चली ही गयीं?

उभे: पृथिव्याः शरणं स तव समीपे वर्तते। जो पृथ्वी का रक्षक है , वह तुम्हारे पास है।

शकुन्तला: कथं गते एव ? क्या तुम लोग चली गयी।

राजा: अलमावेगेन। नन्वयमराधयिता जनस्तव समीपे वर्तते।

राजा; घबराने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी आराधना करने वाला यह व्यक्ति तो तुम्हारे समीप है।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्

संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।

अङ्के निधाय करभोरू यथासुखं ते

सवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।।18।।

अर्थ - क्या मैं शीतल और थकान को दूर करने वाले कमलिनी दल के पंखों से ठंडी हवा करू अथवा हे करभोरू, तुम्हारे कमल के समान लाल चरणों को गोद में रखकर इस प्रकार दबाऊॅ कि तुम्हें सुख मिले **? ।।18।।**

शकुन्तला: न माननीयेष्वात्मानमपराधयिष्ये। (इत्युत्थाय गन्तुमिच्छति)

शकुन्तला: माननीय जन के प्रति अपने को अपराधिनी नहीं बनाऊँगी। (उठकर जाना चाहती है।)

राजा: सुन्दरी! अनिर्वाणो दिवसः इयं च ते शरीरावस्था,

उत्सृज्य कुसुमशयनं नलिनीदलकल्पितस्तनावरणम्।

कथमातपे गमिष्यसि परिबाधापेलवैरङ्गैः।।19।। (इति बलादेनां निवर्तयति)

राजा: सुन्दरि, दिन ढला नहीं है और तुम्हारे शरीर की यह दशा है।

इस पुष्पशय्या को छोड़कर, जिसमें कमलिनी के पत्ते से स्तनों का आवरण बनाया गया है, तुम सर्वत्र व्याप्त सन्ताप के कारण कोमल अड्गो से धूप में कैसे जाओगी ।।**19**।। (बलपूर्वक उसे लौटाता है।)

शकुन्तलाः पौरव! रक्षाविनयम्। मदनसन्तप्तापि न खल्वात्मनः प्रभवामि।

अर्थः- शकुन्तलाः पौरव, अविनय रहने दो । काम से सनतप्त होने पर भी मेरा अपने ऊपर अधिकार नहीं है ।

राजाः भीरू! अलं गुरूजनभयेन । दृष्ट्वा ते विदितधर्मा तत्रभवान्नात्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि च-

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।

श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः।।20।।

राजाः भीरू, गुरूजनों का भय मत करो। तुम्हें देखकर धर्मज्ञ पूज्य कुलपति इसमें कोई दोष नहीं मानेगे। और भी-

अर्थ - अनेक राजर्षि-कन्याओं का गान्धर्व विधि से विवाह हुआ है और उनके माता-पिता ने उनका अभिनन्दन भी किया है, ऐसा सुना जाता है ।।**20**।।

शकुन्तलाः मुन्च तावन्माम्। भूयोऽपि सखीजनमनुमानयिष्ये।

शकुन्तलाः तो मुझे छोड़ो। मैं फिर सखियों से अनुमति लॅूगी।

राजाः भवतु, मोक्ष्यामि।

राजाः अच्छा छोड़ दूं गा।

शकुन्तलाः कदा ?

शकुन्तलाः कब ?

राजा ;

अपरिक्षतकोमलस्य यावत्

कुसुमस्येव नवस्य षट्पदेन।

अधरस्य पिपासता मया ते

सदयं सुन्दरि! गृह्ते रसोऽस्य ।।21।।

राजा - जब हे सुन्दरि जैसे भौंरा अक्षत होने से कोमल नवीन पुष्प् का रस ग्रहण करता है, वैसे ही प्यासा हुआ मैं अक्षत होने से कोमल इस अधर का रस दयापूर्वक ले लूँ गा **।।21।।**

(इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति, शकुन्तला परिहरति नाट्येन। नेपथ्ये)चक्रवाकवधू आमन्त्रयस्य सहचरम्। उपस्थिता रजनी ।

शकुन्तला (ससंभ्रमम्)पौरव! असंशयं मम शरीरवृत्तान्तोलम्भायार्या गौतमीत एवागच्छति। यावद्विटपान्तरितो भव ।

अर्थः-(उसका मुख ऊपर उठाना है, शकुन्तला बचाने का अभिनय करती है ।)

(नेपथ्य में)

चक्रवाकवधू सहचर से विदा ले लो । रात्रि आ पहुँची है । वस्तुत: यह संकेतवाक्य है , अर्थ व्यंग्य है ।

शकुन्तलाः (घबड़ाहट के साथ) पौरव, निःसन्देह मेरे शरीर का समाचार जानने के लिए आर्या गौतमी इधर ही आ रही हैं ।तब तक शाखाओं के पीछे छिप जाओं ।

राजाः तथा (इत्यात्मानमवृत्य तिष्ठति)

राजाः अच्छा। (अपने को छिपाकर खड़ा हो जाता है)

(ततः प्रविशति पात्रहस्ता गौतमी सख्यौ च)

(तब हाथ में जल का पात्र लिए हुए गौतमी और दोनों सखियॉ प्रवेश करती है।)

सख्यौः इत इत आर्या गौतमी ।

दोनों सखियॅाः इधर, इधर से आर्या गौतमी।

गौतमीः (शकुन्तलामुपेत्य) जाते! अपि लघुसन्तापानि तेऽड्गानि?

गौतमीः (शकुन्तला के पास जाकर)बच्ची, क्या तेरे अंगों का सन्ताप कुछ कम हुआ?

शकुन्तलाः अस्ति मे विशेषः।

शकुन्तलाःकुछ लाभ है ।

गौतमीः अनेन दर्भोदकेन निरावाधमेव ते शरीरं भविष्यति । (शिरसि शकुन्तलामभ्युक्ष्य) वत्से,

परिणतो दिवसः। एहि उटजमेव गच्छामः। (इतिप्रस्थिता)

गौतमी: इस दर्भ के जल से तेरा शरीर नीरोग हो जायेगा। (शकुन्तला के सिर पर जल छिड़कर) बेटी, दिन ढल गया। आओ, कुटी में ही चलें।

(सभी चल देते हैं)

शकुन्तला:(आत्मगतम्) हृदय! प्रथममेव सुखोपनते मनोरथे कातरभावं न मुन्चसि । सानुशयविघटितस्य कथं ते साम्प्रतं सन्तापः? (पदान्तरे स्थित्वा प्रकाशम्)लतावलय सन्तापहारक! आमन्त्रये त्वां भूयोऽपि परिभोगाय।

(इति दुःखेन निष्क्रान्ता शकुन्तला सहेतराभिः)

अर्थ:- (आत्मगत)हृदय, पहले तो सरलता से मनोरथ के उपस्थित होने पर तूने संकोच नहीं छोड़ा और अब पश्चात्ताप के साथ अलग होने पर तुझे सन्ताप क्यों हो रहा है? (एक पद चलकर रूकती हुई प्रकट रूप में) लतावलय सन्तापहारक, मैं तुम्हारा फिर परिभाग के लिए आमन्त्रण करती हूँ।

(ऐसा कहकर शकुन्तला दुःख के साथ अन्य स्त्रियों सहित चली जाती है।)

राजाः(पूर्वस्थानमुपेत्य, सनिःश्वासम्) अहो! विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। मया हि-

मुहुरङ्गुलिसंवृताघरोष्ठ

प्रतिषेधा क्षरविक्लवाभिरामम्।

मुखमंसविवर्ति पक्ष्मलाक्ष्याः

कथमप्युन्नमितं न चुम्बितं तु ।।22।।

क्व नु खलु संप्रति गच्छामि? अथवा इहैव प्रियापरिभुक्तमुक्ते लतावलये मुहूर्त्त स्थास्यामि। (सर्वतोऽवलोक्य)

राजा: (पहले स्थान पर आकर दीर्घ श्वास छोड़ते हुए) अहो, अभीष्ट वस्तु की सिद्धि विघ्नों से भरी होती है क्योंकि मैंने-

अर्थ- उस सुन्दर नेत्रों वाली के बार-बार अंगुलियों से ढॅके गये अधर वाले, निषेध के शब्दों के अस्पष्ट उचारण के कारण मनोहर एवं कन्धे की ओर मुड़े हुए मुख को किसी प्रकार ऊपर उठाया, किन्तु उसे मैं चूम नहीं सका **।।22।।**

अब मैं कहॉ जाऊॅ? अथवा यहीं पर प्रिया द्वारा सेवन करने के उपरान्त छोड़े गये लताकुन्ज में कुछ देर

रहूँ। (चारो ओर देखकर)

तस्याः पुष्पमयी शरीरलुलिता शय्या शिलायामियं

क्लान्तो मन्मथलेख एष नलिनीपत्रे नखैरर्पितः ।

हस्ताद् भ्रष्टमिदं बिसाभरणमित्यासज्यमानेक्षणो

निर्गन्तु सहसा न वेतसगृहाच्छक्नोमि शून्यादपि ।।23।।

अर्थः- यह शिला पर शरीर से दबायी गयी उसकी फूलों की शय्या है। यह कमलिनी के पत्ते पर नखों से अंकित मुरझाया हुआ प्रेमपत्र है। यह हाथ से गिरा हुआ कमलनाल का आभूषण है। इस प्रकार मेरी दृष्टि बंध गयी है और मैं इस सूने वेतसकुंज से भी सहासा निकल कर जा नहीं पा रहा हूॅ।।23।।

राजन्! **सायंतने सवनकर्मणि संप्रवृत्ते**

वेदीं हुताशनवती परितः प्रयस्ताः।

छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः

सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ।।24।।

राजाः अयमहमागच्छामि ।

(इति निष्क्रन्तः)।।इति तृतीयोऽड्.कः।।

अर्थः- (आकाश में) राजन्,सायंकालीन यज्ञकर्म के सम्यक् चलते रहने पर अग्नि से युक्त वेदी के चारों ओर फैली हुई, सन्ध्या के मेघों जैसी पिंगल वर्ण की राक्षसी छायाए भय उत्पन्न करती हुई बार-बार विचरण कर रही हैं ।।24।।

राजाः यह मैं आ रहा हूँ। (निकल जाता है)

अभ्यास प्रश्न 1-

निम्नलिखित प्रश्नों में से सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. द्वितीय अंक के प्रारम्भ में रंगमंच में कौन प्रवेश करता है -

   क. विदूषक ख. राजा

   ख. प्रतिहारी घ. सारथी

2. कामी स्वतां पश्यति यह कथन किसका है -

क. शारंगरव ख. शारद्वत

ग. राजा घ. विदूषक

3. मृगया को निरर्थक ही व्यसन कहते हैं ,ऐसा मनोविनोद कहाँ यह कथन किसका है -

क. राजा ख. तपस्वी

ग. सेनापति घ. सारथी

4. तपस्वियों के तेज की तुलना किस मणि से की गई है –

क. हरित मणि ख. नीलमणि

ग. सूर्यकान्तमणि घ. पद्ममणि

5. विधाता ने किस अलौकिक नारी सौन्दर्य की रचना की –

क. अनुसूया ख. प्रियंवदा

ग. शकुन्तला घ. वसुमती

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित सूक्तियों की व्याख्या कीजिए 1

1. न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधि: ।
2. स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ।
3. सर्व तत् किल मत्परायणमहो कामी स्वतां पश्यति ।

4.5 सारांश

इस इकाई को अध्ययन के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि द्वितीय अंक में दुष्यन्त की शकुन्तला के प्रति आसक्ति प्रारम्भ से ही दृष्टिगोचर होती है । दुष्यन्त सरलता से आश्रम में रूकने का अवसर प्राप्त करता है और राजधानी से देवी पारण के लिये बुलाये जाने पर विदूषक को भेज देता है । जिस प्रेम ने प्रथम अंक में जन्म लिया और द्वितीय अंक में विकास प्राप्त किया वह इस तृतीय अंक में पूर्णता को प्राप्त हुआ है । इसके साथ ही आपने यह भी जाना कि राजा दुष्यन्त व्यक्तिगत कर्त्तव्यों से ऊपर प्रजा के प्रति कर्त्तव्यों को महत्व देता है । वह मुनियों को अत्यधिक सम्मान देता है ।

4.6 शब्दावली

मेदश्छेदकृशोदरम् = चर्बी के घट जाने से कृश उदर वाला (वपुः का विशेषण) मेदसः छेदेन कृशम् उदरम् यस्य तत् (बहुव्रीहि) ।

उत्थानयोग्यम् = उद्यम के योग्य, उठने योग्य, उत्थानस्य योग्यम् । तत्पुरूष । विकृतिमत् चित्तम्=

विकार से युक्त चित्त ।

त्वमपि कुसुमबाणान् वज्रसारीकरोषि = तुम भी पुष्पों के बाणों को वज्र की शक्ति से युक्त कर रहे हो या वज्र के समान दृढ बना रहे हो। वज्रस्य सारः इव सारः येषां ते वज्रसाराः (बहुव्रीहि)।

4 .7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 - 1. क 2. ग 3. ग 4. ग 5. ग ।

अभ्यास प्रश्न 2 के उत्तर - सूक्तियों की व्याख्या द्वितीय अंक में देखिये।

4 . 8 सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डेय प्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान

गौतमनगर गोरखपुर संस्करण 1998

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तारिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ,संस्करण1982।

4.9 सहायक ग्रन्थ

(1) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार डा0 उमेशचंद्र पाण्डेयप्रकाशक प्राच्य भारती संस्थान

गौतमनगर गोरखपुर संस्करण1998

(2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् व्याख्याकार तारिणीश झा प्रकाशक केन्द्र-रेलवे क्रासिग सीतापुर रोड लखनऊ,संस्करण1982।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- अभिज्ञानशाकुन्तलम् के द्वितीय अंक का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

2- अभिज्ञानशाकुन्तलम् के तृतीय अंक का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई 5 . अभिज्ञान शाकुन्तलम् का चतुर्थ अंक (मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)

इकाई की रूपरेखा -

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अभिज्ञान शाकुन्तलम् चतुर्थ अंक श्लोक संख्या 1 से 11 तक
(मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)
5.4 अभिज्ञान शाकुन्तलम् चतुर्थ अंक श्लोक संख्या 12 से 22 तक
(मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)
5.5 सारांश
5.6 शब्दावली
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारतीय संस्कृत नाट्यकारों में कालिदास का नाम अति आदर से लिया जाता है उनकी अनुपम कृति अभिज्ञान शाकुन्तलम् से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है। इससे पूर्व के ईकाइयों के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगे कि किस प्रकार राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला से विवाह किया और यज्ञ की समाप्ति पर हस्तिनापुर चला गया।

प्रस्तुत इकाई में राजा के वियोग में पति का अनुसरण करती हुई शकुन्तला को दुर्वासा के आने का भास नही होता जिससे घटनाक्रम वही विपरीत अवस्था में पहुँच जाती है। दुर्वासा शाप देकर तथा उससे बचने का उपाय बताकर अर्न्तध्यान होते हैं। साथियों की चिन्ता पुनः काश्यप का आना और शकुन्तला को विदा करने की रचना का वर्णन प्राप्त होता है साथ ही काश्यप द्वारा शकुन्तला की मंगलमय विदाई के समय उपदेश है। यह अंक शाकुन्तलम् का प्राण है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेगें कि -

* अभिज्ञान शाकुन्तलम् का चतुर्थ अंक की कथावस्तु क्या है ?

* अभिज्ञान शाकुन्तलम् का चतुर्थ अंक में क्या वर्णन किया गया है ?

* तत्रश्लोकचतुष्टय: कौन से है

* इसमें मुख्य रूप से किस छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है

* इसमें किस रस की प्रधानता है

5.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् ,चतुर्थ अंक श्लोक संख्या 1 से 11तक (मूलपाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)

(ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ)

(तब फूल तोडने का नाटक करती हुयी दोनो सखियाँ प्रवेश करती है)

अनुसूया - प्रियंवदे ! यद्यपि गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलानुरुप भर्तृगामिनी संवृत्तेति निर्वृत्तं में हृदयं तथाप्येतावच्चिन्तनीयम्।

अनुसूया - प्रियंवदा ! यद्यपि गान्धर्व रीति से शकुन्तला का मंगलमय विवाह सम्पन्न हुआ और

उसने अपने अनुरूप पति को प्राप्त कर लिया इसलिए मेरा मन खुश है तथापि इतनी चिन्ता है।

प्रियंवदा - कथमिव ?

प्रियंवदा - कौन सी ?

अनुसूया - अद्य स राजर्षिरिष्टिं परिसमाप्य ऋषिभिर्विसर्जित आत्मनो नगरं प्रविश्यान्त:पुरसमागतः इतो गतं वृत्तान्त्रं स्मरति वा न वेति।

अनुसूया - आज वह राजर्षि यज्ञ समाप्त होने के कारण ऋषियो से विदा किया गया अपने नगर मे प्रविष्ट होकर अन्तः पुर की रानियो से समामग होने के बाद यहाँ का वृतान्त स्मरण कर रहा है की नहीं ?

प्रियंवदा – विस्रब्धा भव। न तादृशा आकृति विशेषा गुणविरोधिनों भवन्ति। तात इदानीमिमं वृतान्तं श्रुत्वा न जाने किं प्रतिपत्स्यत इति।

प्रियंवदा - इस सम्बन्ध में निश्चिन्त रहो। उस प्रकार की विशिष्ट आकृतियाँ गुणों के विरोधी नहीं होती। इस समय पिता इस समाचार को सुनकर न जाने क्या सोचेगे?

अनुसूया - यथा अहं पश्यामि तस्यानुमंत भवेत्।

अनुसूया - जैसा मै सोच रही हूँ वे इसे अनुमति दे देगे।

प्रियंवदा - कथमिव ?

प्रियंवदा- कैसे ?

अनुसूया - गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेंत्ययं तावत्प्रथमः संकल्पः। तं यदि दैवमेव संपादयति नन्वप्रयासेन कृतार्थो गुरूजनः।

अनुसूया - योग्य वर को कन्या प्रदान करनी चाहिए माता - पिता का प्रथम संकल्प होता है। यदि उसे भाग्य पूरा कर दे तो गुरूजन (माता - पिता)बिना प्रयास के ही कृतार्थ हो जाते हैं।

प्रियंवदा - (पुष्प भाजनं विलोक्य) सखि अवचितानि बलिकर्म पर्याप्तानि कुसुमानि।

प्रियंवदा - (फूलों की टोकरी देखकर) सखि! पूजा कर्म हेतु हमनें पर्याप्त फूल तोड़ लिए है।

अनुसूया- ननु सख्या: शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवताऽअर्चनीया।

अनुसूया- अरेः सखि शकुन्तला के सौभाग्य देवता की पूजा करनी है।

प्रियंवदा - युज्यते (इति तदेव कर्माभिनयत:)

प्रियंवदा - ठीक है (दोनो फूल चुनने का अभिनय करती है)

(नेपथ्ये) अयमहे भोः । (नेपथ्य से) अरे !मै यह आया हूँ।

अनुसूया- (कर्ण दत्वा) सखि ! अतिथिनामिव निवेदितम्।

अनुसूया- (कान देकर) सखि! किसी विशिष्ट अतिथि की पुकार लग रही है।

प्रियंवदा - ननूटज संनिहिता शकुन्तला।

प्रियंवदा - शकुन्तला तो कुटी में है।(आत्मगतम्) अद्य पुनर्हृदयेनासन्निहिता ।

(मन में) आज वह मन से कही और है।

अनुसूया- भवतु; अलमेतावदिभः कुसुमै: (इति प्रस्थिते) ।

अनुसूया- ठीक है, बस करो इतने ही फूल रहने दो। (इस प्रकार चल देती है)

(नेपथ्ये) (नेपथ्य से)

आः **अतिथिपरिभाविनी**! - अरे! अतिथि का तिरस्कार करने वाली !

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा

तपोधनं वेत्सि न मामुपारिथतम् ।

स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्

कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।। 1।।

अन्वय - अनन्यमनसा यम् विचिन्त्यन्ती उपस्थितं तपोधनं माम् न वेन्सि,सः त्वां प्रमत्तः प्रथमं कृतां कथामिव बोधितो अपि सन् न स्मरिष्यति ।

अनुवाद - एकाग्रचित मन से जिसका ध्यान करती हुयी तुम आये हुए मुझ तपस्वी पर ध्यान नही दे रही हों वह याद दिलाये जाने पर भी वैसे ही स्मरण नहीं करेगा जैसे पागल व्यक्ति पहले कही हुयी बातो की स्मरण नहीं करता।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे ऋषि शकुन्तला को शाप देता हुआ कहता है कि अनन्यमनसा = एकाग्रचित मन से, यम् = जिसका, विचिन्तयन्ती = ध्यान कर रही हो, उपस्थित = आये हुए,

तपोधनं माम् = मुझ तपस्वी प र, न वेत्सि = ध्यान नहीं दे रही हो, स = वह, त्वाम् = तुम्हें ,प्रमत्तः = पागल व्यक्ति के समान, प्रथमं = पहले, कृता कथां इव् कही गयी बातों मे, बोधितोऽपि = याद दिलाये जाने पर न स्मरिष्य ति = स्मरण नहीं करता।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अनन्यमनसा = न अस्ति अन्यत् अवलम्बनं यस्य तत अनन्यम् , अनन्यं मानसं यस्याः सा अनन्यमानसा। विचिन्तयन्ती =वि +चित् + णिच् + शतृ + डीप्। प्रस्तुत श्लोक में कार्व्यालेग, उपमा त था छेकानुप्रास अलंकार है और वंशस्थ छन्द है। शप की घटना शकुन्तलम् का मोड़ बिन्दु है , इससे राजा के धीरोदात्ततत्व की रक्षा हो गयी।

प्रियंवदा हा धिक । अप्रियगेव संवृत्तम्। कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला (पुरोऽवलोक्य) न खलु यस्मिन्कस्मिन्नपि । एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः तथा शप्त्वा वेगवल्लोत्फुल्लयाः दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः। कोऽन्यो हुतवहाद्दग्धुं प्रभवति ?

प्रियंवदा - किसी पूज्य अतिथि के प्रति शून्य हृदया शकुन्तला ने अपराध कर दिया (सामने देखकर) जिस किसी व्यक्ति के प्रति नही ये तो दुर्वासा है जो अत्यन्त क्रोधित होने वाले महर्षि है। वैसा शाप देकर चरण क्षेप वाली तीव्रगति से लौट रहे है। अग्नि को छोड़कर भला कौन जला सकता है।

अनुसूया - गच्छ! पदयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुप कल्पयामि

अनुसूया - जाओ। पैरों पर गिरकर उन्हें लौटाओ तब तक मैं अर्ध और जल तैयार करती हूं।

प्रियंवदा - तथा। (इति निष्क्रान्ता)

प्रियंवदा -ठीक है। (चली जाती है)

अनुसूया - (पदान्तरे स्खलितं निरुप्य) अहो! आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्र हस्तात्पुष्पभाजनम्। (अति पुष्पोच्चयं रूप्यति)।

अनुसूया - (कुछ पग चलकर गिरने का अभिनय करते हुए) अरे ! घबड़ाहट से लड़खड़ाती हुई चाल के कारण पुष्प् की टोकरी गिर पड़ी (फूल बीनने का नाटक करती है)। (प्रविश्य) (प्रियंवदा प्रवेश करती है)

प्रियंवदा - सखी ! प्रकृतिवक्र: स कस्यानुनं प्रतिगृहणाति ? किमपि पुनः सानुक्रोश: कृत:।

प्रियंवदा - सखी ! प्रकृति से कुटिल वे किसकी प्रार्थना सुनते है ? फिर भी उन में कुछ दया आयी।

अनुसूया - तस्मिन् बहवेतदपि, कथय।

अनुसूया - उनके सम्बन्ध में यही बहुत है ।, कहो ।

प्रियंवदा - यदानिवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया - भगवन् प्रथम इति प्रेक्ष्याडविज्ञाततपः प्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैकोऽपराधां मर्षितत्य इति ।

प्रियंवदा - जब उन्होने आने की इच्छा की तब प्रार्थना की - भगवन प्रथम भूल है विचार कर तपस्या को प्रभाव को न जानने वाली अपनी बेटी के प्रथम अपराध को क्षमा करें ।

अनुसूया - ततस्ततः

अनुसूया - तब क्या हुआ ।

प्रियंवदा – ततो न मे वचनमन्यथाभवितुं नहिति, किन्तुभिज्ञानाभरणदर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयमाणं स्वयमन्तर्हितः।

प्रियंवदा - तब मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु पहचान चिन्ह रुपी किसी आभूषण को देखने पर शाप समाप्त हो जायेगा। यह कहते हुए वे स्वयं अन्तर्ध्यान हो गये।

अनुसूया – शक्यमिदानीमाश्वासयितुम् । अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रास्थेतेन स्वानामधेयाङ्कितमङगुलीयकं स्मरणीयामिति स्वयं पिनद्धम् । तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति ।

अनुसूया - अब हम निश्चिन्त हो सकती हैं, राजा नें जाते समय अपने नाम से अंकित अंगूठी स्मृति चिन्ह के रुप में स्वयं पहनाई है शकुन्तला के लिए उपाय अपने वश में ही रहेगा ।

प्रियंवदा - सखि ! ऐहि देवकार्यम् तावत् निर्वर्तयावः। (इति प्रिरिक्रामतः)

प्रियंवदा - सखी ! आओ देवता पूजन का कार्य पूरा कर ले (दोनो घूमती है)

प्रियंवदा - (विलोक्य) अनुसूये ! पश्य तावत वामहस्तोपहित वदनालिखितेव प्रियसखि भर्तृगतया चिन्तयात्मानंमपि नैषा विभाययति, किं पुनरागन्तुकम्

प्रियंवदा - (देखकर) अनुसूया ! देखों बायें हाथ पर मुख रखकर सखी चित्र के समान लग रही है। पति के सम्बन्ध में चिन्ता के कारण अपनी सुध - बुध नही है। तो आगन्मुक की क्या बात है।

अभ्यास प्रश्न - 01

---

1. न तादृशा आकृति विशेषा .... भवन्ति ।

2. शकुन्तला को गले लगाकर कौन समझा रहा था।

(1) शारंगरव (2) प्रियंवदा

(3) काश्यप (4) अनुसूया

3. शकुन्तला को शाप किसने दिया ?

(1) गौतम (2) तपस्वी

(3) विश्वामित्र (4) दुर्वासा

4.दुर्वासा ने क्या दिखाने से शाप का प्रभाव कम होना बताया है -

(1) कपड़ा (2) शरीर

(3) पहचान का आभूषण (4) कुछ नही

अनुसूया - प्रियंवदे द्वयोरेव नौ मुख येव वृत्तान्ततिष्ठतु। रक्षितव्य रवलु प्रकृति पेलवा प्रिय सखी।

अनुसूया - प्रियवदा यह शाप की बात हम दोनों के मुख तक ही रहे, प्रकृत्ति से कोमल प्रिय सखी की रक्षा करनी चाहिए।

प्रियंवदा - कोनामोष्णोदकेन नवमालिकां सिंचति ? (इति उभे निष्क्रान्ते)

प्रियंवदा - गर्म जल से नवमालिका जैसी कोमल को सींचेगा। दोनों का प्रस्थान

(इति विष्कम्भकः) (विष्कम्भक समाप्त)। ततः प्रविशति (सुप्तोस्थित शिष्य) (सोकर जगा हुआ शिष्य प्रवेश करता है)

शिष्यः -वेलोपलक्षणार्थमादिष्टोऽस्मि तत्र भवता प्रवसादुपावृत्तेन काश्यपेन । प्रकाशम निर्गतस्तावदवलोकयामि कियवदशिष्टं रजन्या इति। (परिक्रम्यावलोक्य च) हन्ते प्रभातम। यथा हि-

शिष्य - तीर्थ से लौटे हुए पूजनीय काश्यप ने समय जानने के लिए आदेश दिया है तो बाहर निकलकर देखता हूँ कि रात कितनी बाकी है। (घूमकर और देखकर) अरे सुबह हो गया। क्योकि -

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना -
माविष्कृतोऽरूणपुरः सरः एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपदव्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ।। २ ।।

अन्वय - एकतः ओषधीनां पति: । अस्त शिखरं याति । एकतः अरुणपुर: सर: अर्क: आविष्कृत: भवति। तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्याम् लोक: आत्मदशान्तरेषु नियम्यते इव।

अनुवाद - एक तरफ औषधीनां का पालक चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा है और दूसरी तरफ अरूण को आगे किये हुए सूर्य उदय हो रहा है। दोनो तेजो का अस्त और उदय द्वारो मानों संसार अपने (सुख - दुख) अवस्थाओं में बंधा हुआ है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में शिष्य द्वारा प्रकृति से सुख और दुख का सम्बन्ध जोड़कर कहा गया है कि एकत: एक तरफ औषधीनाम् पति = औषधियों के स्वामी चन्द्रमा अस्तिशिखरं याति = अस्ताचल को जा रहा है। एकत: = एक तरफ, अरूणपुर: सर: अर्क: =अरूण को आगे किये हुए सूर्य, आविष्कृत: = उदय हो रहा है। तेजोद्वयस्य युगपद् = दो तेजों के एक साथ, व्यसनोदयाभ्यां = अस्त होना और उदय होना, लोक, = संसार आत्मदशान्तरेषु = अपने अवस्थावों में, नियम्यत इव मानों बधा हुआ है

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अस्तिशिखर = अस्यन्ते सूर्यकिरणानि इति अस्त:। अस्तस्य शिखर अस्तशिखर (तत्पु0) आविष्कृत = अविस् +कृ + क्त । व्यसन् = वि + अस् +ल्युट भावे। शिशुपालवध महाकाव्य के नौवे सर्ग में चौसठवें श्लोक में ऐसी ही बात कही गयी है (उदयमहिमरश्मिर्याति शितांशुस्त हतविधिलसितानां हा विचित्रों विपाक:। प्रस्तुत श्लोक में दृष्टान्त , निदर्शना, समासोक्ति, तुल्ययोगिता तथा यथासंख्य अलंकार है और बसन्त तिलका छन्द है।

अपि च - और भी -

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे

दृप्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य

दुःखानि नूनमतिमात्र सुदु:सहानि ॥ ३ ॥

अन्वय - शशिनि अन्तर्हिते सा एवं कुमुद्वती संस्मरणीय शोभा मे दृष्टि न नन्दयति । नूनम् अबलाजनस्य इष्टप्रवासजनितानि दुःखानि अतिमात्रसुदु:सहानि।

अनुवाद - चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर वही कुमुदनी, जिसकी सुन्दरता अब स्मृति की वस्तु रह गयी हैं मेरी दृष्टि को आनन्दित नही करती। निश्चय ही स्त्रियो के लिए प्रियतम के प्रवास से उत्पन्न कष्ट अत्यन्त असह्य होता है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में उसी क्रम में शिष्य कहता है कि शशिनि = चन्द्रमा के, अन्तर्हिते = अस्त

हो जाने पर। सा एव = वही कुमुदनी = संस्मरणीय शोभा = जिसकी सुन्दरता अब स्मृति की वस्तु रह गयी है मे हरि मेरी दृष्टि कोन नन्दयति = आनन्दित नहीं करती नूनम् = निश्चय ही अवलाजनस्य = स्त्रियों के लिए , इप्टप्रवासजनितानि = प्रियतम के प्रवास से उत्पन्न दुःखानि = कष्ट अतिमात्र दुःसहानि = अत्यन्त् असहय होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - संस्मरणीय शोभा = संस्मरणीय शोभा यस्या सा इष्टप्रवासजनितानि = इष्टस्य प्रवासेन जनितानि। प्रवास =प्र + वस् +आस। प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति,काव्यालिंग , अर्थान्तरन्यास , छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास तथा श्रुत्यनुप्रास अलंकार है तथा वंशस्थ छन्द है।

अनुसूया - यद्यपि नाम विषयपराङमुखस्यापि जनस्यैतन्न विदितं तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायामनार्यमा चरितम्।

अनुसूया - यद्यपि विषयाभिमुख व्यक्तियों को (शकुन्तला) सांसारिकता का ज्ञान नहीं है फिर भी उस राजा ने शकुन्तला के प्रति उचित आचरण नही किया।

शिष्य – यावदुपस्थितां होमवेलां गुरूवे निवेदयमि ।

शिष्य - तब तक गुरू जी से निवेदन कर देता हूँ कि हवन का समय हो गया है। (इति निष्क्रान्ता) (इस प्रकार चला जाता है)

अनुसूयाः प्रतिबुद्धापि कि करिष्यामि ? न मे उचितेष्वपि निजकार्येषु हस्तपादं प्रसरति। काम इदानी सकामो भवतु ; येनासत्य सन्धे जने शून्य हृदया सखी पदं कारिता। अथवा दुर्वाससः कोपः एषः विकारयति । अन्यथा कथ स राजर्षिस्तादृशानि मन्त्रयित्वैतावत्कालस्य लेखमात्रमपि न विसृजति? तदितोऽभिज्ञानमङ्गुलीयकं तस्य विसृजावः। दु:खशीले तपस्वी जने कोऽप्यर्थताम् ? ननु सरवीगामी दोष इति व्यवसितापि न पारयामि प्रवासप्रतिनिवृत्तस्य तातकाश्यपस्य दुष्यन्तपरिणीतामापन्तसत्वां शकुन्तलां निवेदयितु इत्थंगतऽस्याभि: कि करणीयम्।

अनुसूया - जगकर भी क्या कँरूगी ? प्रातः कालोचित कार्यो मे मेरे हाथ पैर नहीं चल रहे है अंब काम देवकी इच्छा पूरी हो जिससे झूठ बोलने वाले व्यक्ति में शून्य हृदयवाली सखी का मन लिप्त किया है। अथवा दुर्वासा के शाप से उत्पन्न विकार है। अन्यथा कैसे वह राजा उस प्रकार की बात करके अभी तक एक पत्र भी नही प्रेषित किया है तब हम यहाँ से पहचान हेतु अंगुठी भेज। कष्ट सहने वाले तपस्वियों में किससे प्रार्थना की जाय ? चूँकी गड़बडी सखी का है इसलिए निश्चय करने पर भी तीर्थ से लोटकर आये हुए पिता काश्यप से मै यह प्रार्थना नहीं कर पा रही हूँ , कि शकुन्तला दुष्यन्त से परिणीत हो चुकी है और गर्भ धारण की है। इस परिस्थिति में हम क्या करें ?

(प्रविश्य) (रंगमंच पर प्रियंवदा प्रवेश करती है)

प्रियंवदा - (सहर्षम्) सखी ! त्वरस्य शकुन्तलाया: प्रस्थान कौतुकम् निर्वर्तयितुम् ।

प्रियंवदा - (प्रसन्न होकर) सखि ! शीघ्रकरो शकुन्तला का मंगल विदाई करनी है ।

अनुसूया - श्रुणु इदानीं सुखशयनपृच्छिका शकुन्तलासकाशं गतास्मि । ततो यावदेनां लज्जावनतमुखी परिष्वज्य तातकाश्यपेनैवमभिनन्दितम् । दिष्टया धूमाकुलितदृष्टेरपि पावकः एवाहुति: पतिता । वत्से । सुशिष्यपरिदत्ता विद्येवाशोचनीया संवृता अद्यैव ऋषिभिरक्षितां त्वां भर्तुः सकाशं विसर्जयामि इति ।

प्रियवंदा - सुनो, अभी सुख पूर्वक सोयी की नही यह पूछने शकुन्तला के पास गयी थी, तब उसी समय लज्जा के कारण नीचे मुख करने वाली उसे गले लगाकर पिता काश्यप ने इस प्रकार प्रशंसा की - सौभाग्य से धूयें से विकृत दृष्टि वाले भी यजमान की आहूति अग्नि में ही पड़ी । पुत्री। योग्य शिष्य को दी गयी विद्या के समान मेरे लिए अशोचनीय हो गयी है । आज ही ऋषियों के संरक्षण में तुम्हें पति के पास भेज देता हूँ ।

अनुसूया - अथ केन सूचितस्तातकाश्यपस्य वृत्तान्तः?

अनुसूया - यह वृत्तान्त पिता कण्व से किसने कहा ?

प्रियंवदा - अग्निशरणं प्रविष्टस्य शरीर विना छन्दोमय्या वाण्या संस्कृतमाश्रित्य

प्रियंवदा - यज्ञ शाला में प्रवेश करने पर शरीर से रहित छन्दोमयी वाणी ने ।

(संस्कृत का आश्रय लेकर)

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।

अवेहि तनयां ब्रह्मन्नग्निगर्भा शमीमिव ।। 4।।

अन्वय - ब्रहमन् ! दुष्यन्तेन भुव: भूतये आहितं तेज: दधानां तनयां अग्निगर्भाम् शमीम इव अवेहि।

अनुवाद - हे ब्राहमण ! दुष्यन्त के द्वारा पृथ्वी के कल्याण के लिए स्थापित तेज को धारण करने वाली पुत्री को अपने भीतर अग्नि को छिपानें वाली शमीलता के समान समझिए ।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में आकाशवाणी द्वारा शकुन्तला के परिणिता होने की बात काश्यप् से कही गयी है हे ब्रह्मन = हे ब्राहमण, दुष्यन्तेन = दुष्यन्त के उपर भुवः भूतये = पृथ्वी के कल्याण केलिए , अहित तेजः = स्थापित तेज को, दधानां = धारण करने वाली, तनयां = पुत्रीं का, अग्नि गर्भाम् = अपने भीतर अग्नि को छिपाने वाली शमीलतां इव अवेहि = शमीलता के समान समझिए ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - तेजः तिज् + असुन। दधानां = धा + शानच् + टाप्। प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार तथा अनुष्टुप छन्द है।

अनुसूया - (प्रियंवदामाशिलष्य) सखि ! प्रियं में , किन्त्यद्यैव शकुन्तला नीयत इत्युत्कण्ठासाधारणं परितोषमनुभवामि।

अनुसूया - (प्रियंवदा को गले लगाकर) सखि, मेरे लिए अच्छी बात हुई, किन्तु आज ही शकुन्तला को पहुँचाया जा रहा हैं। इससे उत्कण्ठा से युक्त परम सन्तोष का अनुभव कर रही हूँ।

प्रियंवदा – सखि आवां तावदुत्कण्ठां विनोदयिष्याव:। सा तपस्विनी निवृता भवतु।

प्रियंवदा - सखि हम लोग तो उत्कण्ठा को दूर कर लेगी। वह तपस्विनी तो सुखी हो जाय।

अनुसूया - तेन ह्येताश्मेश्चूतशाखावलाम्बिते नालिकेर समुद्गक एतस्मिन्निमित्तमेष कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। तदिमां हस्तसंनिहितां कुरू। यावदहमपि तस्यं मृगरोचनां तीर्थमृत्तिकां दूर्वाकिसलयानीति मङ्गलसमालम्भानि विरचयामि।

अनुसूया - तब इस आम के वृक्ष पर लटके हुए नारियल के डिब्बे में इसी प्रयोजन से देर तक ताजी रहने वाली केसर की माला मैने रखा है। तुम इसे अपने हाथ में ले लो। तब तक में भी उसके लिए मृगरोचना, तीर्थों की मिट्टी , दूब, पल्लव आदि मांगलिक वस्तुएं तैयार करती हूँ।

प्रियंवदा - तथा क्रियताम्।

प्रियंवदा - वैसा ही करो।

(अनुसूया निष्क्रान्ता, प्रियंवदा नाट्येन सुमनसो गृह्णाति)

(अनुसूया चली जाती है,प्रियंवदा फूल लेने का अभिनय करती है।)

(नेपथ्ये) **(नेपथ्य में)**

गौतमी : ! आदिश्यन्तां शार्ङ्गरवमिश्रा: शकुन्तलानयनाय।

गौतमी: शार्ङ्गरव आदि को शकुन्तला को ले जाने का आदेश दे दो।

प्रियंवदा - (कर्ण दत्वा) अनुसूये ! त्वरस्य , एते खलु हस्तिनापुरगामिन: ऋषयः अकार्यन्तें

प्रियंवदा - (कान लगाकर) अनुसूया जल्दी करो। हस्तिनापुर जाने वाले इन ऋषियों को पुकारा जा रहा है। (प्रविश्य समालम्भन हस्ता)

अनुसूया - सखि ! एहि गच्छाव:।

अनुसूया - सखि, आओं चले।

(इति परिक्रामतः) **(दोनों घूमती हैं)**

प्रियंवदा - (एषा) सूर्योदय एव शिखामज्जिता प्रतिष्ठितनीवारहस्ताभि: । स्वस्तिवाचनिकाभिरभिनन्द्यमाना शकुन्तला तिष्ठति। उपसर्पाव एनां।

प्रियंवदा - (देखकर) यह सूर्योद्रय के समय ही सिर से स्नान की हुई शकुन्तला बैठी है। और हाथ मे नीवार लेकर स्वस्तिवाचन करके तापसियां उसका अभिनन्दन कर रही है। चलो उसके समीप चलें।

टिप्पणी - शिरस्नान ओषधि स्नान है। वृहत्संहिता में कहा गया है कि - त्वक्कुण्ठ रेणुनलिका स्पृक्कारसतगरवालकैस्तुल्यै: केसर पत्रविमिश्रैर्नरपति योग्यम् शिरस्नानम्।

77.5

(इत्युपसर्पत:) **(दोनों समीप जाती है)**

(ततः प्रविशति यथोदिष्ट व्यापारासनस्था शकुन्तला)

(तब पहले की तरह से बैठी हुई शकुन्तला दिखाई देती है)

तापसीनामन्यतमाः - (शकुन्तलांप्रति) जाते ! भर्तुबहुमानसूचकं महादेवी शब्दं लभस्व।

तापसियों में एक - (शकुन्तला से) बेटी ! पति के अत्यधिक आदर को सूचित करने वाली महादेवी पद को प्राप्त करो।

द्वितीया – वत्से ! वीरप्रसविनी भवः।

दूसरी तापसी - पुत्री वीर पुत्र की माता होवो।

तृतीया: - वत्से ! भर्तुर्बहुमता भव।

तीसरी तापसी - पुत्री, पति की अत्यन्त प्यारी बनो।

(इत्याशिषो दत्वा गौतमी वर्ज निष्क्रान्ता:)

(इस प्रकार आर्शीवाद देकर गौतमी के अतिरिक्त अन्य तापसियाँ चली जाती हैं)

सख्यौ: - (उपसृत्य) सखि! सुखमज्जनं मे भवतु।

शकुन्तला: - स्वागतं मे सख्यौ इतो निषीदतम्।

शकुन्तला - मेरी सखियों का स्वागत है। तुम दोनो इधर बैठो।

उभे: - (मंगलपात्राण्यादाय उपविश्य) हला ! सज्जा भव। यावन्मङगलसमालम्भनं विरचयाव:।

दोनों सखियाँ - (माड़गलिक पात्रों को लेकर और बैठकर) सखी तैयार हो जाओ। तब तक हम मंगल की सामग्रियां सजाती है।

शकुन्तला - इदमपि बहु मन्तव्यम् दुर्लभमिदानी मे सखीमण्डनं भविष्यतीति।

शकुन्तला - यही मेरे लिये बहुत है। मेरे लिए सखियों द्वारा अब सजाया जाना दुर्लभ हो जायेगा।

(इति वाष्पं विसृजति) (आँसू गिराती है)

उभे: - सखि ! उचित न ते मंगलकाले रोदितुम्।

दोनों सखियो - सखि ऐसे शुभ समय पर रोना उचित नहीं है

(इत्यश्रूणि प्रमृज्य नाटयेन प्रसाधयतः)

(आँसूओं को पोंछकर सजाने का अभिनय करती है)

प्रियंवदा - आभरणोचित रूपम् आश्रमसुलभै: प्रसाधनै विप्रकार्यते ।

प्रियंवदा - जो रूप आभूषणों के योग्य है। वह आश्रम में सुलभ प्रसाधनों से विगाड़ा जा रहा है।

(प्रविश्योपायनहस्तो) (हाथ में उपहार लिए दो ऋषिकुमार प्रवेश करते है)

ऋषिकुमारकौ: - इदमलंकरणम् ! अलंक्रियेतामत्रभवति।

दोनों ऋषि कुमार - यह अलंकार है। इनको आप सजाइये।

(सर्वा विलोक्य विस्मिता:) (सभी देखकर विस्मित होती है)

गौतमी: - वत्स नारद ! कुत एतत् ?

गौतमी -पुत्र नारद , यह कहाँ से ?

प्रथम: - तातकाश्यपप्रभावात।

प्रथम - ऋषिकुमार पिता कश्यप के प्रभाव से।

गौतमी: - किं मानसी सिद्धिः ?

गौतमी - क्या उनकी मानसी सिद्धि है ?

द्वितीय:- न खलु श्रूयताम् तत्रभवता वयंमाज्ञप्ता: शकुन्तला हेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरत इति। तत इदानीं।

द्वितीय ऋषिकुमार - ऐसा नहीं है। पूज्य गुरूजी ने हमें आदेश दिया कि शकुन्तला के लिए वनस्पतियो से फूल चुन लाओ। तब इस समय-

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरूणा माङ्गल्यमाविष्कृतं

निष्ठयूतश्चरणोपरागसुलभो लाक्षारसः केनचित्।

अन्येंभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै ,

र्दत्तान्याभरणानि न: किसलयोद्भेद प्रतिद्वन्द्विभि: :।। 5।।

अन्वय - (न:) केनचित् तरूणा इन्दुपाण्डु मांगल्यम् क्षौमम् आविष्कृतम्। केनचित् चरणोपरागसुलभ: निष्ठधूतः। अन्येभ्यः तत्किसलेयोदभेदप्रतिद्वन्द्विभिः आपर्वभागोत्थितैः वनदेवताकरतलैः आभरणानि दत्तानि।

अनुवाद:- किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के समान सफेद मंगलमय रेशमी वस्त्र प्रगट किया। किसी वृक्ष ने चरणो में उपयोग करने योग्य महावर निकाल कर दिया। दूसरे वृक्ष ने कलाई तक उठी हुई और उन वृक्षों के कोमल पल्लवों जैसी लगने वाली, वनदेवियों की हथेलियों मे हमे आभूषण प्रदान किये।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में वृक्षों द्वारा शकुन्तला को दिये गये आभूषणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि केनचित तरूणा = किसी वृक्ष ने, इन्दुपाण्डु = चन्द्रमा के समान सफेद माङ्गल्यम क्षौमम् - सौभाग्यदायक = मंगनेमयी रेशमी वस्त्र आविष्कृतमः प्रकट किया , केनचित् किसी वृक्ष ने चरणोपभोगसुलभः चरणों में उपयोग करने योग्य लाक्षारस:- महावर, निष्ठ्यूत निकालकर दिया, अन्येभ्य=अन्य वृक्षों ने तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः = कोमल पल्लवो के समान लगनें वाली आपर्वभागोत्थितै: = कलाई तक उठी हुई। वनदेवताकरतलैः = वन देवियों के हथेलियों ने, आभरणानिदत्तानि - आभूषण प्रदान किये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – क्षौमम = क्षुमा + अण्, मांगल्यम् - मंगल्य + अण् निष्ठयतः निव+ ष्ठित +क्त् आपर्वभागोत्थ्सिर्ते =पर्वणोभगः प्रदेशः पर्वभागः तत्पर्यन्तम् आपर्णभागम् (अव्ययीभाव) आपर्वभागं उत्थिताः (सहसुपेति समास) प्रस्तुत श्लोक में उपमा, संसृष्टि, श्रुत्यानुप्रास तथावृत्यनुप्रास अलंकार है और शार्दूलबिक्रीडित छन्द है।

प्रियंवदा: -(शकुन्तला विलोक्य) हला ! अनयाभ्युपपत्या सूचिता मे भर्तुगेहेऽनुभवितव्या राजलक्ष्मीरिति।

प्रियंवदा - (शकुन्तला को देखकर) सखि इस कृपा से सूचित हो रहा है कि पति के घर में राजलक्ष्मी बनेगी।

(शकुन्तला व्रीड़ां रूपयति) -(शकुन्तला लज्जा का नाटक करती है)

प्रथम: - गौतम ,एह्येहि अभिषेकोत्तीर्णाय काश्यपाय वनस्पतिसेवां निवेदयावः।

प्रथम ऋषि कुमार - गौतम , आओ, स्नान कर उठे हुए काश्यप् से वनस्पतियों के सेवा के सम्बन्ध मं बतायें।

द्वितीय - तथा (इति निष्क्रान्तौ)

द्वितीय ऋषि कुमार - अच्छा (इस प्रकार दोनो चले जाते है।)

सख्यौ: - अये ! अनुपयुक्तभूषणोऽयंजनः। चित्रकर्मपरिचयेनाङगेषु आभरणपिनियोग कुर्वः।

दोनो सखि - अरे ! हमने तो कभी आभूषणों का प्रयोग नही किया है। चित्रों के परिचय से तुम्हारे अंगों में आभूषण पहनाते है।

शकुन्तला: -जाने वां नेपुणम।

शकुन्तला - तुम दोनों की निपुणता से मैं परिचित हूँ।

(उमे नाट्येनालंकुरुतः) (दोनो आभूषण पहनाने का नाटक करती है।)

(ततः प्रविशति स्नानोत्तीर्णः काश्यपः) (तब रंगमंच पर स्नान करके उठे काश्यप का प्रवेश होता है।)

अभ्यास प्रश्न-2

1- .औषधियों के स्वामी किसे कहा गया है-

1.सूर्य को 2. यम को

3.कण्व को 4.चन्द्रमा को

2- शकुन्तला के गर्भवती होने की सूचना कण्व को कैसे प्राप्त होती है -

1. अनुसूया द्वारा 2. शकुन्तला द्वारा

3. प्रियंवदा द्वारा 4. छन्दोमयी वाणी द्वारा

3- शकुन्तला को वनस्पतियाँ क्या देती है -

1. वस्त्र 2. अलंकार
3. महावर 4. सभी

4 - काश्यप के दृष्टि में गृहस्थ लोग अपनी पुत्री की विदाई में पीड़ित होते है या नही?-

काश्यपः -

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया

कण्ठः स्तम्भ्तिवाष्पवृत्ति कलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः

पीड्यन्ते गृहिणः कथंनु तनयाविश्लेष दुःखैर्नवैः ।। 6।।

अन्वय- अद्य शकुन्तलाः यास्यति इति हदयम् उत्कष्ठया संस्पृष्टम्। कण्ठ: स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुष: दर्शनं चिन्ताजडम। अरण्यौकसः मम तावत् स्नेहात् इदं ईदृशं वैक्लव्ययम्, गृहिणः नवैः तनयविश्लेषदुःखैः कथं न पीडयन्ते।

अनुवाद - आज शकुन्तला जायेगी इसलिए मेरा हदय उत्कष्ठा से भर आया है। कण्ठ अश्रुप्रवाह को नियंत्रित करने के कारण विकृत हो रहा है। और दृष्टि चिन्ता के कारण् निश्चेष्ट हो गयी है। वन में रहने वाले मुझको स्नेह के कारण ऐसी बेचैनी हो रही है तो गृहस्थ लोग पुत्री के अलग होने के नये दुःखों से क्यों नही दुःखी होते होगें ?

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में कण्व ने पुत्री के भविष्यमाण वियोग से उत्पन्न हुए मानसिक एवं शारीरिक स्थिति को कहा है कि - अद्य = आज, शकुन्तला यास्यति = शकुन्तला जायेगी, इति = इसलिए, हदयं = मेरा हदय, उत्कण्ठयासंस्पृष्टम् = उत्कण्ठा से भर आया है। कण्ठः = कण्ठ, स्तम्भितवाष्पवृत्त्किकलुषः = रोके गये अश्रु प्रवाह के कारण विकृत हो गया है। दर्शनम्चिन्ताजडम् = दृष्टि चिन्ता के कारण जडवत हो गयी है। अरण्यौकस: मम = वन में रहने वाले मुझको। स्नेहात = स्नेह के कारण, इदम् इदृशं वैक्लव्यम् = ऐसी बैचेनी हो रही है, गृहिण: = गृहस्थ लोग, नवै: तनयाविश्लेष दुःखै = पुत्री के अलग होने के नये दुःखौ से, कथं न पीडयन्ते = क्यो नही दुःखी होते होगें, प्रस्तुत श्लोक में व्यतिरेक , समुच्चय, वृत्यनुप्रास अलंकार है तथा शार्दुलविक्रीडित छन्द है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - उत्कंण्ठया = उत + कण्ठ + अ+ टाप्। संस्पृष्टम् = सम + स्पृश + क्त। दर्शनम् = दृश +ल्युट। विश्लेष = वि + श्लिष् + घ´। प्रस्तुत श्लोक चतुर्थ अंक के चार महत्वपूर्ण श्लोकों में प्रथम है। इसमें डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी नें वात्सल्य माना है करूण रस नहीं।

(इति प्रिक्रमति) (चारों ओर घूमते है।)

सख्यौः - हला शकुन्तले ! अवसितमण्डनासि। परिधत्स्व साम्प्रतं क्षौमयुगलम्। (शकुन्तलोत्थाय परिधत्ते)

दोनों सखियां - सखि शकुन्तला तुम्हारा श्रृंगार पूर्ण हुआ। अब रेशमी जोड़ा धारण् कर लो। (शकुन्तला उठ कर पहनने का नाटक करती है)

गौतमीः - जाते ! एष त आनन्दपरिवाहिणा चक्षुषा परिष्वजमान इव गरूरूपस्थितः आचारं तावत्प्रतिपद्यस्व।

गौतमी -ये तुझे आनन्दाश्रु बहाने वाले नेत्रों से आलिंगन सा करते हुए पिता आये है, तो अभिवादन आचार का पालन करों।

शकुन्तलाः - तात ! वन्दे।

शकुन्तला - पिता जी प्रणाम।

काश्यपः - वत्से!

काश्यप - पुत्री।

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तृर्बहुमता भव।

सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरूमवाप्नुहि।। 7।।

अन्वय - ययाते: शमिष्ठा इव, भर्तुः बहुमता भव। सा पुरूम् इव त्वम् अपि सम्राजं सुतम अवाप्नुहि।

अनुवाद - जैसे राजा ययाति को शर्मिष्ठा अत्यधिक प्यारी बनी। वैसे ही तुम पति की प्रिय बनों। जैसे शर्मिष्ठा ने पुरू नामक सम्राट पुत्र को प्राप्त किया उसी प्रकार तुम भी सम्राट पुत्र को प्राप्त करो।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला को आशीर्वाद देते हुए कहते है कि ययाते शर्मिष्ठाइव = जिस प्रकार राजा ययाति को शर्मिष्ठा अत्यन्त प्यारी बनी, भर्तु बहुमता भव = वैसे ही तुम पति की प्रिय बनो। सापुरूमेव = जैसे शर्मिष्ठा ने पुरू नामक पुत्र को प्राप्त किया।, त्वम् अपि सम्राजं सुतं = उसी प्रकार तुम भी सम्राट पुत्र को।, अवाप्नुहि = प्राप्त करो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - सम्राजं = सम् + राज + क्विप। उक्त श्लोक में उपमा अलंकार है तथा अनुष्टुप छन्द है।

गौतमी - भगवन ! वरः खल्वेषः नाशिषः।
गौतमी - भगवन् ! यह वस्तुत: वरदान है आशीर्वाद नहीं।

काश्यप - वत्से ! इत: सद्योहुताग्नीन् प्रदक्षिणी कुरूष्व । (सर्वे परिक्रामन्ति)

काश्यप - पुत्री ! जिसमें शीघ्र हवन किया गया है उस अग्नि की प्रदक्षिणा करो । (सभी परिक्रमा करते हैं)

कश्यप - (ऋकछन्दसाऽशास्ते)

कश्यप - (ऋग्वेद के छन्द से आर्शीवाद देते हैं)

अभी वेदिं परितः क्लृप्तिधिष्ण्या:

समिद्वन्त: प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।

अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धै-

वैंतानास्त्वां बह्नयः पावयन्तु ।।8।।

अन्वय - अमी समिद्वन्तः वेदिम् परितः कलृप्तधिष्ण्याः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भा: वैताना: हव्नयः हव्यगन्धैः दुरितम् अपहान्तः त्वा पावयन्तु।

अनुवाद - यह यहा काष्ठ से सम्बद्ध वेदी के चारों ओर जिनके स्थान बने है। जिनके किनारो पर कुश बिछाया गया है जो हव्य पदार्थो के गन्धों से अनिष्ट को नष्ट कर रही है तुम्हे पावन बनाये।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला को आशीर्वाद देते हुए कहते है कि अमी समिद्वन्तः = यह यश काष्ठो से सम्बद्व वेदिम् परितः = वेदी के चारों ओर क्लृप्तधिष्ण्या: = जिनके स्थान बने है प्रान्तसंस्तीर्णदर्भा: जिनके किनारों पर कुश विछाया गया है; वैताना हवनय:= जो हव्यपदार्थो हव्यगन्धै =गन्धो से दुरितं अपहनन्तः =अनिष्ट को नष्ट कर रही है, त्वां पावयन्तु =तुम्हे पावन बनाये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

समिद्वन्त:=समिध: सन्ति येषां इति, समधि +मतुप्। प्रान्संस्तीर्णदर्भा =प्रान्तेषु सस्तीर्णा: दर्भा येषांतं बहुवीहि । अपहनन्तः =अप+हन्+शतृ। प्रस्तुत श्लोक में परिकर अलंकार है तथा त्रिष्टुप वैदिक छन्द है।

प्रतिष्ठस्वेदानीग् (सदृष्टिक्षेपम) क्व ते शार्ड़गरवमिश्राः ?

अब प्रस्थान करो (इधर उधर देखकर) शारर्गरव आदि कहां है?(प्रविश्य) (शिष्य प्रवेश करता है)

शिष्यः - भगवन् ! इमे स्मः ।

शिष्य - भगवन ! मैं यह हूं ।

काश्यप - भगिन्यास्ते मार्गमादेशय।

काश्यप -अपनी बहन को मार्ग दिखाये।

(सर्वे परिक्रमन्ति) (सब घूमते है)

काश्यप - भो भो ! संनिहितातपोवनतरवः।

काश्यप - अरे तपोवन में स्थित वृक्षों।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्माष्वपीतेषु या,

नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसूमप्रसूति समये यस्या भवत्युसवः

सेयं याति शकुन्तला , पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।। 9।।

अन्वय - युष्मासु पीतेषु या प्रथमं जलं पातु न व्यवस्यति। प्रियमण्डनापि यां भवतां स्नेहेन पल्नवम् न आदन्ते वः आद्ये कुसुमप्रसूतिसमये यस्या उत्सवः भवति। सा इयं पतिगृह याति। सर्वै अनुज्ञायताम्।

अनुवाद - जो (प्रातःकाल) आप को जल पिलाये बिना स्वयं जल पीने के लिए उद्यत नहीं होतीं; अलंकार प्रिय होने पर भी जो अति स्नेह के कारण आपके (कोमल) पल्लव को नहीं तोड़ती है, आपके प्रथम बार फूल खिलने पर जिसका लिए उत्सव होता था; वही शकुन्तला अपने पति के गृह जा रही है आप सभी जाने की अनुमति दों।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में शकुन्तला के जाते समय तपोवन वृक्षों से अनुमति मागता हुआ कहता है कि - अपीतेषुया = जो आपको जल पिलाये बिना, प्रथमं जलं =पहले जल, पातुं न व्यवस्पति =पीने के लिए उद्यत नही होती, प्रियमण्ऽनापि = अलंकार होने पर भी , या भवतां = जो आपके, स्नेहेन = स्नेह के कारण, पल्लवम् = पल्लव को, न आदत्ते = न ही तोड़ती है, वः आाद्ये =आपके प्रथमवार, कुसुमप्रसूतिसमये = फूल खिलने पर , यस्याः उतसवः भवति = जिसके लिये उत्सव का दिन होता था। सा इयं शकुन्तला = वही शकुन्तला, पतिगृह याति = पति गृह जा रही है। सर्वै अनुज्ञायताग् = आप सभी जाने की अनुमति दे।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अपीतेषु =न विधते पीतं येषां तेऽपीताः तेषु (व० प्री०) प्रियमण्डनापि = प्रिय मण्डन यस्याः सा तथोक्ता (व० प्री०) आदत्ते = आ + दा + लट् प्र० पु० ए०। प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति, काव्यलिंग, समुच्चय, वृत्यानुप्रास तथा श्रुत्यानुप्रास अलंकार है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

(कोकिलरवं सूचयित्वा) (कोयल के कलरव की ओर सूचित करके)

अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवास बन्धुभिः।

परभृतविरूतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ।। 10 ।।

अन्वय - इयं शकुन्तला वनबास बन्धुभिः तरुभिः अनुमतगमना यथा कलं परभृतम् एभिः ईदृशम् प्रतिवचनीकृतम्।

अनुवाद -इस शकुन्तला को तपोवन में निवास करते समय वन्धुओं ने वृक्षो के द्वारा जाने की आज्ञा दे दी गयी है। क्योकि अपने कलरव से कोयल ने इस प्रकार उत्तर दिया है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में शकुन्तला के मंगल विदाई के समय कोयल के मधुर कलरव के सम्बन्ध में कहा गया है कि - इयं शकुन्तला = इस शकुन्तला को,वनबास बन्धुभिः = तपोवन में निवास करते समय बन्धु बने हुए, तरुभिः = वृक्षों के द्वारा , अनुमतगमना = जाने की अनुमति दे दी गयी है, यथा = क्योकि ,जैसे , कलरवभृतविरुतम् = अपने कलरव से कोयल, एभिः ईदृशं = इस प्रकार, प्रतिवचनीकृतम = उत्तर दिया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

अनुमतगमना = अनुमतं गमनं यस्याः सा (बहु०), प्रतिवचनीकृतम् = प्रतिवच +चि + कृ + क्त। प्रस्तुत श्लोक में परिणाम अलंकार है तथा अपरवम्त्र नामक छन्द है।

(आकाशे) **(आकाश से)**

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि -

छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।

भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्याः

शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पन्थः।।११।।

अन्वय - अस्याः पन्थाः कमलिनीहरितैः सरोभिः रम्यान्तरः छायान्दुमैः नियमितार्कमयूखतापः कुशेशयरजोमृदुरेणुः शान्तानुकूलपवन च शिवः च भूयात्।

अनुवाद - इसका मार्ग कमलिनियों से हरे बनें हुए सरोवरों के कारण मध्य भाग में सुन्दर, घनी छाया वाले वृक्षों के द्वारा अल्प किये गये सूर्य के ताप वाला कमल पराग के समान कोमल धूलि से युक्त, शान्त एवं अनुकूल समीर वाला तथा मंगलकारी हो।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में आकाशवाणी के माध्यम से शकुन्तला को आशीर्वाद दिया गया है कि- अस्याः पन्थाः = इसके मार्ग, कमलिनीहरितै: = कमलिनी से हरे, सरोभि: = सरोवरो के कारण, रम्यान्तरः = मध्य भाग में सुन्दर, छायान्दुमैः = घनी छाया वाले वृक्षों के द्वारा, नियमितार्कमयूखतापः = अल्प किये गये सूर्य के ताप द्वारा, कुशेशयरजोमृदुरेणुः = कमल पराग के समान कोमल धूलि से युक्त, शान्तानुकूलपवन च = शान्त एवं समीर वाला, शिवः च भूयात् =तथा मंगलकारी हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - कमलिनीभिः हरितै: (तत्पु०) रम्यान्तरः = रम्यं अन्तरं यस्य स यथोक्तः (बहु०) कुशेशयः कुशे +शी+ अच्। शान्तानुकूलपवनः = शान्तश्चासौ अनुकूलश्च शान्तानुकूलः शान्तानुकूलः पवनः यास्तिन प्रस्तुत श्लोक में तुल्योगिता, परिकर, काव्यलिंग, वृत्यनुप्रास तथा श्रुत्यनुप्रास अलंकार है तथा वसन्ततिलका छन्द है।

5.4 अभिज्ञान शाकुन्तलम् चतुर्थ अंक, श्लोक संख्या 12 से 22 तक (अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)

(सर्वे सविस्मयमाकर्णयन्ति) (सब विस्मय पूर्वक सुनते है)

गौतमी - जाते ! ज्ञातिजनास्निग्धाभिरनुज्ञातगमनासि तपोवन देवताभि। प्रणम् भगवतीः।

गौतमी - बेटी ! बन्धुजनों के समान स्नेह करने वाली तपोवन की देवियों ने तुम्हे जाने की अनुमती दे दी है। इन देवियों को नमस्कार करो ।

शकुन्तला - (सप्रणामं परिक्रम्य जनान्तिकम्) हला प्रियंवदे ! नन्वार्यपुत्रदर्शनोत्सुकायाः अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन मे चरणौ पुरतः प्रवर्तेते।

शकुन्तला -(प्रणाम पूर्वक घूमकर हाथो के ओट से) सखि प्रियंवदा आर्यपुत्र के दर्शनार्थ व्याकुल होने पर भी आश्रम स्थान को छोड़ते हुए मेरे पैर बड़े दुःख के साथ आगे बढ रहै है।

प्रियंवदा - न केवलं तपोवनविरहकातरा सखयेव। त्वयोपास्थितवियोगस्थ तपोवनस्यापि तावत्समवस्था प्रियंवदा - केवल सखि ही तपोवन के वियोग से व्याकुल नही है। तुमसे इस समय वियोगित होने वाले तपोवन की भी समान अवस्था दिखई पड़ रही है।

उदगलितदर्भकवला। मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्य श्रूणीव लताः।१२॥

अन्वय - गृग्यः उद्गलितदर्भकवलाः मयूरा परित्यक्त नर्तनाः लता अपसृतपाण्डुपत्राः अश्रूणि मुन्चयन्ति इव ।

अनुवाद - हरिणियों ने कुश के ग्रास उगल दिये है, मोरो ने नृत्य करना छोड़ दिया है। पीले पत्तों का त्याग करती हुयी लताए मानो अश्रु बहा रही है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में कवि प्रकृति की मानवीय रूप मे उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है कि - मृग्यः= हरिणियों ने, उद्गलितदर्भकवलाः=कुश ने ग्रास उगल दिये है, मयूरा परित्यक्त नर्तनाः = मोरो ने नृत्य करना छोड़ दिया है, लता = वन की लताएँ अपसृतपाण्डपत्राः = पीले पत्तो का त्याग करती हुयी लताए, अश्रूणि मुन्चयन्ति इव = मानो अश्रु बहा रही है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

उदगलितदर्भकवला = उदगलितः दर्भाणां कवलः याभिः ताः (बहु०) परित्यक्त नर्तना = परित्यक्तः नर्तनं यस्ते (बहु०) अपसृमपाण्डपत्रा मन्चन्त्यश्रणीव लताः प्रस्तुत श्लोक में समासोक्ति तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है ओर आर्या छन्द है।

शकुन्तला - (संस्मृत्वा) तात ! लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये।

शकुन्तला - (कुछ याद कर) ! पिताजी ! लताभगिनी वनज्योत्सना से तब तक विदा ले लूँ।

काश्यप - अवैमि ते तस्यां सोदर्यास्नेहं । इयं तावद्दक्षिणेन।

काश्यप - मैं समझ रहा हूँ। तुम्हारा उससे सहोदर जैसा प्रेम है। यह तुम्हारे दाहिनी तरफ है।

शकुन्तला - (लतामुपेत्यालिड़्मा) वनज्योत्सने ! चूतसंगतापि मां प्रत्यालिंगेतोगताभिः शाखाबहाभिः । अद्य प्रकृति दूरपरिवर्तिनी भविष्यामि।

शकुन्तला - (लता के पास जाकर आलिंगन कर) हे वनज्योत्सने ! आम के साथ लिपटी होने पर भी बाहर निकली शाखा रुपी भुजायों से गले मिलो। सम्भव मै दूर देश गामिनी हो रही हूँ।

काश्यप –

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे

भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम् ।

चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय-

मस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः ।। 13।।

अन्वय - मया तवार्थे प्रथमं एव संकल्पितं आत्मसदृश भर्तार सुकृतैः गता । इयम् नवमालिका चूतेन

संश्रितवती । सम्प्रति अहं अस्यां च, त्वयि च, बीतचिन्तः।

अनुवाद - मेरे द्वारा तुम्हारे लिए जिस प्रकार के पति की संकल्पना की गयी थी वैसे ही अपने योग्य पति को तुमने अपने पुण्य कर्मो से प्राप्त किया। यह नवलतिका ने आम्र वृक्ष का सहारा पा लिया । इस समय इसके प्रति तथा तुम्हारे प्रति मै चिन्ता रहित हो गया हूँ ।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला तथा नवमलिका लता के प्रति निश्चियता का अनुभव करते हुए कहते है कि - मया = मेरे द्वारा,तवार्थे = तुम्हारे लिए, प्रथमं एव संकल्पितं = जिस प्रकार के पति की संकल्पना की थी, आत्मसदृश = (वैसा) अपने योग्य, भर्तारं = पति को तुम ,सुकृतैः गता = अपने पुण्य कर्मों से प्राप्त किया, इयम् नवमालिका = यह नवमालिका ने, चूतेन संश्रितवती = आम्र वृक्ष का सहारा पा लिया । संप्रति = इस समय अहं अस्यां च = इसके प्रति त्वयि च = और तुम्हारे प्रति ,बीतचिन्तः = चिन्ता रहित हो गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – आत्मसदृशम् = आत्मनः सदृशय (तत्पुरूष) संश्रितवती = संश्रितम, अस्तीति संश्रितवती, बीतान्तिः = वीता चिन्ताः यस्य (बहु०) प्रस्तुत श्लोक में तुल्योगिता, समासोक्ति, तथा काव्यलिंग अलंकार है तथा बसन्ततिलका छन्द है।

इतः पन्थानं प्रतिपद्यस्व - इधर से प्रस्थान करो।

शकुन्तला - (सख्यौ प्रति) हला। एषा द्वयोयुवयोर्नन्‍ु हस्ते निक्षेपः।

शकुन्तला - (दोनों सखियों के प्रति) सखि ! इसको तुम दोनो को धरोहर के रूप में सौप रही हूँ।

संख्यौ - अयं जने कस्य हस्ते समर्पितः? (इति वाष्पं विहरतः)

दोनों सखियाँ - हम लोगों को किसेके हाथ मे दे रही हो (इस प्रकार रोने का अभिनय करती है)

काश्यप - अनुसूये ! अलं रूदित्वा । ननु भवतिभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला।

काश्यप - अनुसूया ! रोना बन्द करो। तुम दोनों को ही शकुन्तला को ढाढस दिलाना है।

(सर्वे परिक्रामन्ति) (सभी रंग मंच पर घूमते है)

शकुन्तला - तात ! एषोटजपर्यन्तचारिणी गर्भ मन्थरा मृगवधूर्यदानघप्रसवा भवति तदा मह्यं कंमपि प्रियनिवेदयितृक विसर्जयिष्यथ।

शकुन्तला - पिता जी ! आश्रम के चारो ओर विचरण करने वाली गर्भ धारण करने से जिसकी गति मन्द है यह मृगवधू कष्ट रहित प्रसव के बाद मेरे समीप इस शुभ समाचार हेतु किसी को भेजिएगा।

कश्यप - नेदं विस्मरिष्यामः।

कश्यप - यह नहीं भूलूंगा।

शकुन्तला - (गति भङ्ग रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते ?

शकुन्तला - (लड़खहाने का अभिनय कर) कौन है जो मेरे वस्त्र को खीच रहा है?

(इति परावर्ते) (इस प्रकार घूमती हैं)

काश्यप - वत्से ! काश्यप - पुत्री!

यस्यत्वयां व्रणविरोपणमिङगुदीनां

तैलं न्यषिच्यत मुखे कुश सूचिविद्धे।

श्यामाकमुष्टिपरिवर्धितको जहाति

सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ।।1 4।।

अन्वय - यस्य कुशसूचिविद्धे मुखे त्वया व्रणविरोपनम् इंगुदीनां तैल न्यषिन्यत सः अथं श्यामाकमुष्ठिपरिवर्धितकः पुत्रकृतकः मृगः ते पदवीं न जहाति।

अनुवाद - जिसके कुशों के तीक्ष्ण अग्रमात्र से कंटे हुए मुख मे तेरे द्वारा घावभरने वाला इंगुदी नामक तेल लगाया गया था और जिसे श्यामाक की मुट्ठी खिला -खिलाकर स्नेह के साथ पाल - पोस कर बढ़ाया था, वही पुत्र बना मृग तेरा मार्ग नहीं छोड़ रहा है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे मृगछौना द्वारा शकुन्तलाके वसन खीचे जाने के बाद काश्यप् कहते है कि यस्य = जिसके, कुशसूचिविद्धे = कुशोके तीक्ष्ण अग्रमाग से कटे हुए, मुखे = मख में, त्वया = तेरे द्वारा , व्रणविरोपनम् = घावभरने वाला, इंगुदीनां तैल = इंगुदी नामक तेल, न्याषिन्यत् = लगाया गया था। सः अथं = वही, श्यायाकयुष्ठिपरिवर्धितकः = श्यामाक की मुð्ी खिला खिलाकर स्नेह के साथ पाल - पोस कर बढ़ाया गया था, पुत्रकृतकः = पुत्र बना, मृगः मृग ते पदवी = तुम्हारा मार्ग, न जहाति नही छोड़ रहा है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी –

व्रणविरोपणम् = व्रणानां विरोपणम् वि रूप+णिच् +ल्युट् कुशसूचिविद्धे = कुशानां सूचिमिः विदधे कुशसूचि विद्धे (तत्पु०)। न्यषिच्यत = निसिच्+अड़ प्रस्तुत श्लोक मे छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, तथा काव्यलिंग अलंकार है और बसन्तलिलका छन्द है ।

शकुन्तला - वत्स। कि सहवास परित्यागिनीं मामनुसरसि? अचिरप्रसूतया जनन्या विना बर्धितोऽसि। इदानीमपि मया विरहितं त्वां तातश्चिन्तयिष्यति। निवर्तस्व तावत्।

शकुन्तला - पुत्र! एक साथ निवास को छोड़ने वाली मेरा अनुसरण कर रहे हो ? जन्म लेते ही विना मा के रहने पर तुम्हे मैने बढाया है। इस समय भी मेरे न रहने पर पिता जी तुम्हारा ध्यान रखेगे। अतएव लौट जावों।

(इति रूदती प्रस्थिता) (रोती हुयी चल देती है)

काश्यप - **उत्पक्ष्मणोर्नयनयोरूपरूद्धवृत्तिं**

बाष्पं कुरू स्थिरतया विहानुबन्धम्।

अस्मिन्नलक्षितनतोन्नतभूमि भागे

मार्गे पदानि खलु ते विषमीभवन्ति ।। 15 ।।

अन्वय - उत्पक्ष्मणोः नयनयोः उपरूद्धवृत्ति वाष्पं स्थिरतया विरतानुबन्धनम् कुरू। खलु अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे अस्मिन् मार्गे ते पदानि विषमीभवन्ति।

अनुवाद - उन्नत बरौनियों वाले आखों मे प्रवाह को अवरूद्ध करने वाले आँसू को धैर्यतापूर्वक निरन्तर बहने से रोको। क्योकि न देखे गये ऊँची-नीची भूमि वाले मार्ग में तुम्हारे पैर सीधे नहीं पड़ रहे हैं।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे काश्यप शकुन्तला को रोने से मना करते हुए कहते है कि उत्पक्ष्मणोः = उन्नत वरौनियों वाले, नयनयोः = आँखो मे, उपरूद्धवृत्ति = प्रवाह को अवरूद्ध करने वाले, वाष्पम् = आँसू को, स्थिरतया = धैर्यतापूर्वक, विरतसुबन्धम् कुरू = निरन्तर वहने से रोको। खलु = क्योकि, अलक्षितनतोन्नतभूमिभागे = न देखे गये ऊँची-नीची भूमि वाले मार्ग में, ते पदानि = तुम्हारे पैर, विषमीभवन्ति = सीधे नही पड़ रहे हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - उत्पक्ष्मणो = उद्गतानि पक्ष्माणि ययोतयोः (बहु) उपरूद्धवृत्तिं = उपरूद्धा वृत्तिः येन तम् ( ) स्थिरतया = स्थिर + तल् तृ०एव विहत = वि + रम् + क्त। विषमीभवत्ति = विषम + भू + लट्। प्रस्तुत श्लोक मे काव्यलिंग अलंकार है तथा बसन्त तिलका छन्द है।

शाड़र्गरव – भगवन्। ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यं इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरम्। अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि।

शाड़र्गरव - भगवन् ! तालाब तक स्नेही जनों के साथ विदा करने के लिए जाना चाहिए। इस प्रकार

शास्त्रों में सुना जाता है। यहीं से संदेश देकर लौट जाइये।

काश्यप - तर्हीं मां क्षीर वृक्षच्छायामाश्रयामः।

काश्यप - इसलिए इस दूध वाले वृक्ष की छाया का आश्रय लेकर हम रूके।

टिप्पणी - यहॉ क्षीर का वृक्ष है , इसके पत्ते कोमल व सघन होते हैं। इसमें छोटे –छोटे फल लगते हैं , मीठे होते है , इसकी समिधा का प्रयोग गायत्री की आराधनामें होता है, सम्पादक नें इसका पेड़ देखा है। इसे बरगद आदि बताने वाले वाले भ्रान्त हैं।

(सर्वे परिक्रम्य स्थिताः) (सभी घूमकर खड़े होते हैं)

काश्यप - (आत्मगतम्) किं नुखलु तत्रभवतो दुष्यन्तस्य युक्तरूपमस्माभिः संदेष्टव्यम् ?

काश्यप - (मन में) माननीय दुष्यन्त के लिए हम कौन सा उचित संदेश दे सकते हैं ?

शकुन्तला - (जनान्तिकम्) हला ! पश्य नलिनीपत्रान्तरितमपि सहचरमपश्यन्त्यातुरा चक्रवाक्यारटति दुष्करमहं करोमिति तर्कयामि।

शकुन्तला - (हाथ की ओट से) सखि ! देखो नलिनी पत्र के ओट में होने पर सहचर को न देखकर चक्रवाकी चिल्ला रही है इससे तो मै विचार करती हूँ कि मै कठिन कार्य कर रही है।

टिप्पणी – चक्रवाकी का रोदन अपशकुन है , जो आने वाले अशुभ का संकेतक है।

अनुसूया - सखि ! मैव मन्त्रयस्व।

अनुसूया - सखि ! ऐसी बाते न सोचो।

एषापि प्रियेण बिना गमयति रजनीं विषाददीर्घतराम्।

गुर्वपि विरहदु:खमाशाबन्ध: साहयति ।। 16 ।।

अन्वय - एषा अपि प्रियेण बिना विषाददीर्घतराम् रजनी गमयति आशाबन्धः गुरू अपि विरहदुःख साहयति।

अनुवाद - यह भी प्रियतम के बिना दु: ख के कारण बड़ी बनी हुयी रात्रि बिताती है। आशा का बन्धन विरह के महान दु:ख को भी सहन करने योग्य बना देता है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे शकुन्तला को आशा बधाते हुए अनुसूया कहती है कि - एषा अपि =यह भी, प्रियेण बिना = प्रियतम् के बिना, विषाददीर्घतराम् = दु:ख के कारण बड़ी बनी हुयी, रजनी =

रात्रि, गमयति = , बिताती है। आशाबन्धः =आशा का बन्धन,गुरू अपि विरह दुःख =विरह के बड़े दुःख को भी, साहयति = सहन करवा देता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – विषादः दीर्धतराम् =विषादेन् दीर्घतराम् (तत्पुरू०) आशाबन्धः आशायाः बन्धः। प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा आर्या छन्द है।

काश्यप - शार्ड़गरव ! इति त्वया मद्वचनात्स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यः।

काश्यप - हे शार्ड़गरव ! शकुन्तला को अपने आगे कर तुम मेंरे वचन को राजा से कहना।

शार्ड़गरव - आज्ञापयतु भवान्।

शार्ड़गरव - आप आज्ञा दे।

काश्यप -

अस्मान्साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-

स्त्वयस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताग्।

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,

भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद् वाच्यं वधूवन्धुभिः ।।7।।

अन्वयः अस्मान् संयमधनान् च आत्मनः उच्चैः कुलं च त्वयि अस्या कथमपि अवान्धवकृतां तां स्नेह प्रवृत्ति च साधु विचिन्त्य, त्वया इयं दारेषु सामान्यप्रतिपतिपूर्वक दृश्या। अतः परं भाग्यायत्तम्। तत खलु बधूवन्धूभिः न वाच्यम।

अनुवाद - हम लोगो के पास संयम ही धन है (तथा) अपने उत्तम कुल का, आपके प्रति इसके स्वाभाविक रूप से बन्धुओं से रहित कराये गये उस प्रेम सम्बन्ध का सम्यक विचार कर आपके द्वारा इसको अपनी पत्नियों में समान आदर देते हुए देखे। इससे अधिक तो भाग्य के अधीन है। जिसे वधू के भइयों को नहीं कहना चाहिए।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे काश्यप राजा के लिए संदेश देते हुए शारंगरव से कहते है कि-अस्मान् संयमधनान = हम लोगों के पास संयम ही धन है (तथा) आत्मनः उच्चैकुलं च = और अपने उत्तम कुल का, त्वयि अस्था = आपका उसके प्रति कथमपि = स्वाभाविकरूप से, अबान्धवकृतां = बन्धुवो से रहित कराये गये,तां स्नेह प्रवृत्तिच् = उससे प्रेम सम्बन्ध का, साधु विचिन्त्य = सम्यक विचार कर, त्वया = आपके द्वारा , इयं = इस, दारेषु = अपनी पत्नियों में, सामानयप्रतिपत्तिपूर्वकं = समान आदर देते हुए, दृश्या = देखे, अतः पर = इससे अधिकतो भाग्ययत्म = भाग्य के अधीन है।

ततः खलु = जिसे, वधू बन्धूभिः = वधू के अभिजनों को, न वाच्यम = नहीं कहना चारिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – संयमधनान् = संयम एव धन येषां (बहुब्रीहि) अबान्धवकृतां = न बान्धवकृतां अबान्धवकृतां ताम् । प्रस्तुत श्लोक में अप्रस्तुतप्रसंशा, काव्यलिंग तथा वृत्यनुप्रास अलंकार है तथा शार्दुलविक्रीडित छन्द है ।

शारंगरव - गृहीतः सन्देश । शारंगरव - सन्देश को ग्रहण किया ।

काश्यप - वत्से! त्वमिदानीमनुशासनी

यासि। वनौकसोऽपि सन्तो लौकिकज्ञा वयम्।

काश्यप - पुत्री! इस समय तुम्हे शिक्षा देनी है। तपोवनवासी होने पर भी लौकिकता का ज्ञान हमे है।

शारंगरव - न खलुधीमयं कश्चितविषयोनाम् ।

शारंगरव - विद्वत् जनों को कुछ भी अज्ञात नहीं होता ।

काश्यप - सा त्वमितः पतिकुलं प्राप्य -

काश्यप - यह तुम यहाँ से स्वामी के घर पहुँचकर-

शुश्रुषस्व गुरून् कुरू प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने

भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी

यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।18।।

अन्वय - गुरून् शुश्रुष्व । सपत्नीजने प्रियसरवीवृत्तिं करू। विप्रकृतापि रोषणतया भर्तुः प्रतीपं मा स्म गमः। परिजने भूयिष्ठं दक्षिणा भव। भाग्येषु अनुत्सेकिनी । एवं युवतयः गृहिणीपद यान्ति। वामा कुलस्य आधयः।

अनुवाद - श्रेष्ठ जनों की सेवा करना । अपने सौत के साथ प्रियसखी के समान व्यवहार करना। तिरस्कृत होने पर भी क्रोध से स्वामी के विपरीत आचरण न करना । सेवकों के प्रति उदार बनना तथा भाग्योदय के समय घमंड न करना। इस प्रकार युवतियाँ गृहस्वामिनी का पद प्राप्त करती है उसके विपरीत व्यवहार करने वाली कुल के लिए शोक का कारण बनती है ।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला को समझाते हुए कहते है कि गुरून शुश्रुस्व = श्रेष्ठ

जनों की सेवा करना। सपत्नीजने प्रियसरवीवृत्तिं करू = अपने सौत के साथ प्रियसखी के समान व्यवहार करना। विप्रकृतापि रोषणतया = तिरस्कार होने पर भी क्रोध से,भर्तुः प्रतीपं मास्मगमः = स्वामी के विपरीत आचरण न करना। परिजने भूयिष्ठ = सेवको के प्रति उदार बनना तथा, भाग्येषु अनुत्सेकिनी = भाग्योदय के समय घमंड न करना। एवं युवतयः = इस प्रकार युवतियाँ , गृहिणीपदं यान्ति = गृहस्वामिनी का पद प्राप्त करती है । वामा कुलस्य आधयः = इसके विरूद्र आचरण करने वाली कुल के लिए शोक का कारण बनती है ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - शुश्रुष्व = शु+ सन् + लोट लरप् । प्रियसखीपृत्ति = प्रिय: सखी (कर्मधारय) प्रियसंख्याः वृत्तिम् (तत्पु०)। विप्रकृतापि = वि + प्र + कृ + क्त + टाप् । युवति = यूवन् + ति । प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास, रुपक, निर्दशना अलंकार है तथा शार्दूलविक्रीडितछन्द है ।

कथं वा गौतमी मन्यते । गौतमी का इस पर क्या राय है ।

गौतमी - एतावान्वधूजनस्योपदेशः । जाते एतत् सर्वम् खलु अवधारय

गौतमी - यही वधू के लिए उपदेश होता है। पुत्री । यह सब कुछ ठीक से स्मरण करलो ।

काश्यप - वत्से ! परिष्वजस्व मां सखीजनं च ।

काश्यप - पुत्री मुझसे और अपने सखियों के गले मिलो ।

शकुन्तला - तात् ! इतं एव कि प्रियंवदाऽनसूये सख्यो निवर्तिष्यन्ते ।

शकुन्तला - पिताजी ! यहाँ से ही क्या प्रियंवदा आदि सखियाँ चली जायेगी ।

काश्यप - वत्से ! इमे अपि प्रदेये। न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम्। त्वया सह गौतमी यास्यति ।

काश्यप -पुत्री ! इनकी भी शादी करनी है। इनका वहाँ जाना अच्छा नही है।तुम्हारे साथ गौतमी जायेंगी ।

शकुन्तला: (पितरमाश्लिस्य) कथमिदानीं तातस्याड़कापरिभ्रष्टा मलयतरोन्मीलिता चन्दनलतेण दंशान्तरे जीवितं धारयिष्ये।

शकुन्तला: (पिता के गले मिलकर) किस प्रकार अब मैं मलय वृक्ष से उखाडी गयी चन्दन लता के समान पिता के अंक से छूटकर अन्य देश में जीवन धारण करूँगी।

काश्यप - वत्से ! किमेवं कातरासि ?

काश्यप - पुत्री ! इस प्रकार अधीर क्यो हो रही हो।

अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदं

विभवगुरूभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला।

तनयमचिरात् प्राचीवार्क प्रसूय च पावनं

मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ।। 19 ।।

अन्वय - वन्से, त्वम अभिजनवतः भर्तु श्लाघ्ये गृहिणीपदं स्थिता, तस्य विभवगुरुभिः कृत्यैः प्रतिक्षण आकुला अचिरात् प्राची अर्क इव पावनं तनयं प्रसूय च मम् विरहजां शुचं न गणयति।

अनुवाद - पुत्री ! तुम अति उत्तम कुल वाले पति के सम्माननीय गृहस्वामिनी के पद पर अधिष्ठित होकर उसके वैभव के कारण बड़े कार्यो में हरपल व्यस्त रहकर शीघ्र ही जिस प्रकार पूरब दिशा भगवान सूर्य को उत्पन्न करती है उसी प्रकार पावन पुत्र को जन्म देकर मुझसे वियोग के दु: ख पर ध्यान नहीं देगी।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप शकुन्तला को समझाते हुए कहते है कि वत्से = पुत्री, त्वम् =तुम, अभिजनवतः = अति उत्तम कुल वाले, भर्तुः = पति के, श्लाध्ये = सम्माननीय, गृहिणीपदं = गृहस्वामिनी के पद पर,। स्थिता = अधिष्ठित रहकर तस्य = उसके विभवरूभिः = वैभव के कारण बड़े कार्यो में, प्रतिक्षण आकुला = हर पर व्यस्त रहकर, अचिरात प्राची = शीघ्र ही पूरव दिशा अर्क इव = जिसरूप सूर्यका प्रसूय उत्पन्न होती है उसी प्रकार पावन तनयं प्रसूय = सभी को पावन बनाने वाले पुत्र को उत्पन्न रूप मम विरदजां = मुझसे वियोग के दु:ख को शुचं न गणयिष्यसि = ध्यान नहीं दोगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - अभिजनः = अभि+जन्+घञ् । श्लालाघ्य: = श्लाघ्+ण्यत् प्रत्यय। तन्य = तन् +अयन्। प्रसूय = प्र + स्+कत्वा प्रस्तुत श्लोक में उपमा, काव्यलिंग, वृत्यनुप्रास अलंकार है तथा हरिणी छन्द है।

(शकुन्तला पितुः पादयोः पतति) (शकुन्तला पिता जी के चरणों पर गिरती है)

शकुन्तला - (सख्यावुपेत्य) हला ! द्वे अपिमां सममेव परिष्वजेथाम् ।

शकुन्तला - (सखियों के समीप जाकर) सखि ! तुम दोनो मुझसे एक साथ गले मिलो ।

सखयौ - (तथा कृत्वा) सखि! यदि नाम स राजा प्रत्यभिज्ञानमन्थरो भवेत ततस्तस्येदमात्मनामधेयाङ्किकतमङ्गुलीयकं दर्शय।

दोनों सखियाँ - (वैसे ही करती हुयी) सखि ! यदि कदाचित् वह राजा तुम्हे पहचानने मे विलम्ब

करे तो उन्हे उनके नाम के अक्षरो वाली अंगूठी दिखाना।

शकुन्तला - अनेन संदेहेन् वामाकम्पितास्मि।

शकुन्तला - तुम दोनों के इस संदेह से मै कम्पित हो उठी हूँ।

सख्यौ - मा भैषीः। **अतिस्नेहः पापशंकी।**

दोनों सखियाँ - डरो ना। अति स्नेह के कारण शंका हो रही है।

शारंगरव – युगान्तरमारूढ़ सविता। त्वरतामत्रभवती।

शाड़र्गरव - सूर्य दो पहर में पहुचा है। आप शीघ्रता करे।

शकुन्तला - (आश्रमाभिमुखी स्थित्वा) तात कदा नु भूयस्तपोवन प्रेक्षिष्ये।

शकुन्तला - (आश्रम की ओर मुख करके) पिताजी कब मै पुनः इस तपोवन में आऊँगी ?

काश्यप - **भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी**

दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।

भर्त्रां तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं

शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन् ।।20।।

अन्वय - चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी भूत्वा अप्रतिरथं दौष्यन्ति तनयंनिवेश्य तदर्पितकुटुम्बभरेण भर्त्रा सार्धम् अस्मिन् शान्ते आश्रमे पुनः पदं करिष्ये।

अनुवाद - दीर्घकाल पर्यन्त चारो समुद्र तक विस्तारित पृथ्वी की सौत बनकर दुष्यन्त से उत्पन्न कभी पराजित न होने वाले पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाकर उसको राज्य का भार दे देने वाले अपने स्वामी के साथ तुम फिर इस तपोवन में निवास करोगी।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक मे शकुन्तला के पुनः आगमन के सम्बन्ध मे काश्यप कहते है कि -चिराय = दीर्घकाल पर्यन्त, चतुरन्तमहीसपत्नी = चारों समुद्र तक विस्तारित पृथ्वी की सौत, भूत्वा = बनकर, अप्रतिरथं = कभी पराजित न होनेवाले। दौष्यन्तिं तनयं निवेश्य = दुष्यन्त से उत्पन्न पुत्र को राज सिंहासन पर बैठाकर, तदर्पितकुटुम्बभरेण = उसको राज्य का भार दे देने वाले भर्ता सार्धम = अपने स्वामी के साथ, अस्मिन शान्तं आश्रमे पुनः पद करिष्यामि = तुम फिर इस तपोवन में निवास करोगी।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - चतुरन्तमहीसपत्नी = चत्वार: अन्ताः यस्याः तादृशा मध्याः सपत्नी।

(बहुव्रीहिसंज्ञकक तत्पुरूष) दौष्यंत्तिम् दुष्यन्तस्य अपत्यम् पुमान् । दुष्यन्त + इन्। निवेश्य = नि + विश +णिच् + कत्वा (ल्यप्) । प्रस्तुत श्लोक में मायादीपक और काव्यलिंग अलंकार है तथा वसन्ततिलका छन्द है।

गौतमी – जाते। परिहीयते गमन बेला। निवर्तय पितरम्। अथवा चिरेणापि पुनः पुनरेवैव मन्त्रयिष्यते। निवर्ततां भवान।

गौतमी - पुत्री ! प्रस्थान का समय व्यतीत हो रहा है। पिता को लौटा दो। नही तो बहुत देर तक बार बार ऐसे ही उपदेश देते रहेगे। महानुभाव आप लौटे।

काश्यप - वत्से ! उपरूध्यते तपोऽनुष्ठानं।

काश्यप - पुत्री! यज्ञ कर्म में विघ्न हो रहा है।

शकुन्तला - (भूयः पितरमाशिलष्य) तपश्चरणपीड़ितं तात शरीरम्। तन्मातिमात्रं मम् कृतः उत्कण्ठितुम्।

शकुन्तला - (पुनः पिता के गले लगकर) तपस्या करने के कारण शरीर आपका दुर्बल हो गया है। आप मेरे लिए अधिक चिन्ता न कीजिएगा।

काश्यप - (सनिःश्वासम्) काश्यप (उच्छवास लेकर)

शममेष्यति मम शोकः कथ नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।

उटजद्वारविरूढं नीवारवलिं विलोकयतः ।। 21 ।।

अन्वय – वत्से ! त्वया रचितपूर्वम् उटजद्वारविरूढं नीवारवलिं विलोकयतः मम शोकः कथं नु शमम्।

अनुवाद - पुत्री! तुम्हारे द्वारा जो पहले रखा गया था कुटी के द्वार पर उगे हुए निवारधान को देखकर मेरा शोक कैसे शान्त हो सकेगा।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप के जाने के बाद भी शोक होने का कारण बताते हुए कहते है कि - वत्से =पुत्री, त्वयाः तुम्हारे द्वारा रचितपूर्वम् = पहले से रखा गया, उटजद्वारविरूढं = कुटी के द्वार पर उगे हुए, नीवारबलिं = नीवार धान की,विलोकयतः =देखकर मम शोकः मेरा शोक कथंनु शमम्= कैसे समाप्त हो सकेगा।

व्याकरणात्मक टिप्पणी - उटजद्वारविरूढं = उटजद्वार विरूढ़ उटजद्वारविरूढं। उटात् जायते इति उटजः उट् + जन +। प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग तथा परिकर अलंकार है और आर्या छन्द है।

सख्यौ - (शकुन्तलां विलोक्य) हाधिक् हा धिक। अन्तर्हिता शकुन्तला वनराज्या।

दोनों सखियाँ - (शकुन्तला को देखकर) हाय दुःख है, हाय दुःख है। शकुन्तला वन पक्तियों में छिप गयी।

काश्यप - (सनिःश्वासम्) अनुसूये! गतवटीवां सहचारिणी। निगृह्य शोकमनुगच्छतं मां प्रस्थितम्।

काश्यप - (लम्बी श्वास लेकर) अनुसूया! तुम लोगों की सखी गयी। मै आश्रम मे जा रहा हूँ। दुःख को रोककर मेरे पीछे पीछे आवो।

उभे - तात् ! शकुन्तला विरहित शून्यमिव तपोवनं कथ प्रविशावः?

दोनो - पिताजी! शकुन्तला से रहित सूने वन आश्रम में हम कैसे प्रवेश करे।

काश्यप - स्नेहप्रवृत्तिरेवंदर्शिनी। (सविमर्श परिक्रम्य) हन्त भो! शकुन्तला पतिकुलं विसृज्य लब्धमिदानी स्वास्थ्यम्। कतः।

काश्यप - स्नेह के कारण इस प्रकार दृष्टिगत होता है। (विचार करके घूमकर) अरे! शकुन्तला को स्वामी के घर भेजकर मुझे मानसिक शान्ति मिली। क्योकि-

अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ।। 22।।

अन्वय - कन्या हि परकीयः एव अर्थः। अद्य तां परिग्रहीतुः संप्रेष्य मम अयम् अन्तरात्मा प्रत्यर्पितन्यास इव प्रकामं विशद जातः।

अनुवाद - कन्या पराया धन होती है। आज उसे विवाह करने वाले स्वामी के पास भेजकर मेरी यह अंतरात्मा धरोहर लौटाने वाले के समान अन्तः करण अति प्रसन्न हो गया है।

व्याख्या - प्रस्तुत श्लोक में काश्यप कन्या को पराया धन मानते हुए कहते है कि - कन्या हि परकीयः एव अर्थः = कन्या पराया धन होती है। अद्यतां = आज उसे, परिग्रहीतुः =विवाह करने वाले के, संप्रेष्य = साथ भेजकर, मम अयम्=मेरा यह अन्तरात्मा = मन, प्रत्यर्पितन्यास इव = धरोहर लौटाने वाले के समान, प्रकामं विशदः जातः =अति प्रसन्न हो गया है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी – **परकीयः = परस्य अयम परकीयः। प्रत्यर्पितन्यास = प्रत्यर्पितः न्यासः येन सः (बहुव्रीहि) प्रस्तुत श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है।**

(इति निष्क्रान्ता सर्वे) -(सब प्रस्थान करते है)। **चतुर्थ अंक का वर्णन विराम ।।**

अभ्यास प्रश्न -3

1. काश्यप किस मन्त्र से शकुन्तला को आशीर्वाद देते हैं:-

(1) ऋग्वेद से (2) लौकिक छन्द से

(3) देते ही नही (4) कुछ कर नही सकेमे।

2. प्रकृति के तरफ से शकुन्तला को जाने की सूचना किससे प्राप्त होती है।

(1) कोयल द्वारा (2) मोर द्वारा

(3) वृक्षो द्वारा (4) नही जानते

3. शकुन्तला के साथ हस्तिनापुर कौन जाता है।

(1) प्रियंवदा (2) शारंगरव

(3) अनसूया (4) करभक

4. कन्या कैसी धन होती है?

(1) अपनी (2) पराया

(3) धनिकों की (4) योगियों की

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप जान पाये है कि -चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में शकुन्तला की सखियाँ पुष्प चुनने का अभिनय करती है तथा उसी समय कुटी के दरवाजे पर दुर्वासा का आगम होता है ।दुर्वासा शकुन्तला द्वारा अपना अपमान समझकर शाप देते है बहुत मनाने पर पहचान दिखाने पर शाप से मुक्ति का मार्ग बताते हैं । प्रातः की सूचना देने हेतु, शिष्य कण्व के समीप जाता है। उधर अनुसूया शकुन्तला की चिन्ता कर रही है तभी प्रियंवदा वहा जाकर सूचना देती है कि पिता कण्व को यज्ञशाला में प्रवेश करते ही शरीर बिना वाणी ने सब कुछ बता दिया तथा कण्व शकुन्तला की विदाई की तैयारी करते है । वनस्पतियों ने मंगलमय वस्त्र, अलंकार, महावर आदि भेट किये हैं। पुनः पिता

शकुन्तला के समीप आकर उसे उपदेशित करते है। तथा अन्त मे शकुन्तला की विदाई कर कण्व शान्ति का अनुभव करते हैं इसी के साथ चतुर्थ अंक समाप्त होता है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

(1) विष्कम्भक - भूत और भविष्य की सूचना देने वाला तथा अंक आरम्भ में आने वाला विष्कम्भक कहलाता है।

(2) मानसी सिद्धि - मन से चाहने पर प्राप्त होने वाले।

(3) ऋक्छन्द - ऋचा का मन्त्र

5.6 उत्तरमाला

अभ्यास प्रश्न -1-

(1) गुण विरोधिनो

(2) काश्यप

(3) दुर्वासा

(4) पहचान

अभ्यास प्रश्न -2-

1. चन्द्रमा

2. छन्दोमयी वाणी द्वारा

3. सभी

4. हाँ

अभ्यास प्रश्न -3-

1. ऋग्छन्द से

2. कोयल द्वारा

3. शारंगरव

4. पराया

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - डा० उमेश चन्द्र पाण्डेय प्रकाशक - प्राचय भारती संस्थान गौतम नगर गोरखपुर संस्थान - 1998

2.अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

5.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. साहित्य दर्पण

2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.अभिज्ञान शकुन्तलम् के चतुर्थ अंक का सारांश अपने शब्दों में लिखिए ?

2- चतुर्थ अंक क्यों प्रसिद्ध है लिखिए।

इकाई 6 .अभिज्ञानशाकुन्तलम्- पंचम् अंक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)

इकाई की रूपरेखा :

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् पंचम अंक श्लोक संख्या 1 से 15 तक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)
6.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् पंचम अंक श्लोक संख्या 16 से 31 तक (मूल पाठ, अर्थ, व्याख्या एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी)
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 सहायक व उपयोगी पुस्तकें
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की यह छठी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने वन्य जीवन में रहकर गृहस्थ धर्म की पराकाष्ठा से सम्बन्धित उदात्त बातों की जानकारी प्राप्त की है। प्रस्तुत इकाई में पंचम अंक का वर्णन किया जा रहा है।

इस इकाई में आप हंसपादिका के गीत द्वारा दुष्यन्त के ऊपर किये जाते हुए व्यंग्य की सूचना प्राप्त करते हुए परित्यक्त शकुन्तला के वियोग का अनुभव एवं दुष्यन्त-शकुन्तला के विस्तृत संवादों का अध्ययन करेगें।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप बता सकेंगे कि शकुन्तला ने किस प्रकार पंचम अंक की समाप्ति पर पृथ्वी से विवर में प्रवेश की याचना की और दुष्यन्त को शकुन्तला के स्मरण से किस प्रकार विश्वास उत्पन्न हुआ।

6.2 उद्देश्य

शाकुन्तलम् नाटक के पंचम अंक की इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समझा सकेंगे कि-

* कण्व द्वारा विदा की गयी शकुन्तला को राजा दुष्यन्त किस कारण से नही पहचान सका।

* एकान्त में की गई मैत्री या प्रेमसम्बन्ध विशेष रूप से परीक्षा लेकर करना चाहिए।

* किस प्रकार हंसपदिका के गीत के माध्यम से कवि दुष्यन्त को शकुन्तला को भूल जाने की ओर संकेत करता है।

* विस्मृति के कारण राजा दुष्यन्त किस प्रकार शकुन्तला को देखकर अन्तर्द्वन्द में पड़ जाता है।

* परित्यक्त वस्तु के स्मरण से किस प्रकार विश्वास उत्पन्न होता है।

* राजा को अपने धर्म के प्रति सदैव तत्पर रहना चाहिए।

* स्त्री का अपने पतिगृह में निवास करना ही उचित है चाहे वह प्रिया हो अथवा अप्रिया आदि।

6.3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् पंचमअंक श्लोक संख्या1 से15 तक

(ततः प्रविशत्यासनस्थो राजा विदूषकश्च)

(आसन पर बैठा हुआ राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं)

विदूषक: (कर्णं दत्वा) भो वयस्य! संगीतशालान्तरेऽवधानं देहि कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते। जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति।

(कान लगाकर) हे मित्र संगीतशाला के भीतर ध्यान दो। स्फुट और मधुर गीत की स्वरयोजना सुनाई दे रही है। मुझे लगता है माननीया हंसपदिका राग का अभ्यास कर रही है।

राजा: तूष्णी भव। यावदाकर्णयामि।

चुप रहो । जरा सुनूँ (आकाश में गाया जाता है) (आकाशे गीयते)

अभिनवमधुलोलुपो भवांस्तथा परिचुम्ब्य चूतमंजरीम्।

कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ?॥1॥

अन्वय- मधुकर, अभिनवमधुलोलुपः भवान् चूतमंजरीं तथा परिचुम्ब्य कमलवसतिमात्रनिर्वृतः कथम् एनां विस्मृत: असि।

अर्थ- हे मधुकर, नये मधु के लिए लालायित रहने वाले तुम आम की मंजरी का उस प्रकार (अभिलाषापूर्वक) पूर्ण रसास्वादन कर (अब) कमल में निवास भर से ही सन्तुष्ट होकर क्यों भूल गये **हो ॥1॥**

टिप्पणी - पंचम अंक राजा के प्रासाद का दृश्य प्रस्तुत करता है, राजा और विदूषक एक स्थान पर बैठे हुए है।

प्रविशति = यहाँ दिखायी पड़ता है' यह अर्थ है। यह नाटक के रंगमंचीय विधान का पारिभाषिक शब्द है। आसनस्थ = आसन पर बैठा हुआ। आसन पर बैठे हुए प्रवेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता, अतः अर्थ होगा 'आसन पर बैठा हुआ दिखायी पड़ता है। कमल पूर्ण खिला हुआ है, उसमें नया मधुरस उसे नहीं प्राप्त होता, तथापि वह उसी में निवास भर से सन्तुष्ट है। आम्रमंजरी को कैसे भूल चुका है। मधुकर से दुष्यन्त की तथा आम्रमंजरी से नायिका शकुन्तला की परिस्फूर्ति होने से समासोक्ति अलंकार है। विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है। राघव0 ने यहाँ हेतु अलंकार भी माना है। अनुप्रास भी है। अपरवक्त्र नाम का छन्द है।

राजा: अहो रागपरिवाहिणी गीतिः।

राजा: अहा, कैसी भावों से भरी हुई गीति है।

विदुषक: किं तावद्गीत्या अवगतोऽक्षरार्थः ?

विदूषक: क्या गीत के अक्षरों का अर्थ समझ लिया ?

राजाः (स्मितं कृत्वा) सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवीवसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भमवगतोऽस्मि। सखे माढव्य ! मद्वचनादुच्यतां हंसपदिका निपुणमुपालब्धोऽस्मीति।

राजा: (मुस्कराकर) इस व्यक्ति से मैंने एक ही बार प्रेम किया है। देवी वसुमती को लक्ष्य कर मेरे विषय में उसकी उलाहना को समझ रहा हूँ। मित्र माढव्य, मेरी ओर से हंसपदिका से कहो कि बड़ी चतुराई से मुझे उपालम्भ दिया है।

विदूषकः यद्भवान्ज्ञापयति । **(उत्थाय)** भो वस्य ! गृहीतस्य तया परकीयैर्हस्तैः शिखण्डके **ताड्यमानस्याप्सरसा वीतरागस्येव नास्तिदानीं मे मोक्षः**

विदूषक: जैसी आपकी आज्ञा। (उठाकर) हे मित्र, उसके द्वारा दूसरों के हाथों चोटी पकड़कर खीचे गये और पिटवाये जाते हुए मुझ प्रेमशून्य व्यक्ति को वैसे ही छुटकारा नहीं मिलेगा जैसे (किसी) अप्सरा से विरक्त को मोक्ष नहीं मिलता।

राजाः गच्छ नागरिकवृत्या संज्ञापयैनाम्।

राजा: जाओ, नागरिक जैसे चतुर व्यवहार से उसे समझाओ।

विदुषकः का गतिः?

विदुषकः और क्या उपाय है?

राजाः (आत्मगतम) किं नु खलु गीतार्थमाकर्ण्येष्टजनविरहादृतेऽपि बलवदुत्कध्ण्ठितोऽस्मि। अथवा-

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्

पर्युत्सकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्व

भावस्थिराणि जनानान्तरसौहृदानि।।2।।

अन्वय- रम्याणि वीक्ष्य, मधुरान् शब्दान् निशम्य च, सुखितः अपि जन्तुः यत् पर्युत्सुकीभवति, तत् नूनं भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि अबोधपूर्व चेतसा स्मरति।

इति पर्याकुलस्तिष्ठति) राजाः (आत्मगत) क्या कारण है कि गीत के अर्थ को सुनकर प्रियजन का विरह न होने पर भी अत्यधिक उत्कण्ठित हो गया हूँ। अथवा (ऐसा तो नहीं कि)-

मनोहर वस्तुओं को देखकर और मधुर शब्दों को सुनकर जो सुखसम्पन्न भी व्यक्ति वियोगदुखः का

अनुभव करने लगता है ,वह निश्चय हीं संस्कारों के फलस्वरूप अमिट बने हुए पूर्वजन्म के प्रेमसम्बन्धों को अनजाने ही मन ही मन स्मरण करता **है ।।2।।**

टिप्पणी - रागपरिवाहिनी=भावों से भरी । राग+परि + वह्+णिनि । यहाँ राग का अर्थ हार्दिक भावों से है, जो हृदय का रंजन करते हैं (रंजनम् रागस्तत्परिवाहिनी अत्यन्तरंजिका-राघव) स्मितं कृत्वा = राजा या तो विदूषक की सरलता पर मुस्कराता है अथवा हंसपदिका द्वारा दी गयी उलाहना पर। सकृत्कृतप्रणयः=जिससे एक बार प्रेम किया गया है। सकृत अव्यय है, जिसका अर्थ है एक बार। सकृत् कृतः प्रणयः यस्मिन सः (बहुव्रीहि) प्राणयः=प्र+नि+अच् । अयं जनः से यहाँ हंसपदिका का तात्पर्य है । देवी पद का प्रयोग प्रधानमहिषी के लिये होता है । अन्य रानियाँ के लिये भट्टिनी का प्रयोग होता है: 'देवी कृताभिषेकायामितरासु च भट्टिनी।'-सा0द0।

पूर्वार्ध के विशेष कथन का उत्तरार्द्ध में सामान्य कथन द्वारा समर्थन होने से अप्रसतुतप्रशंसा है। पूर्वार्द्ध में उत्तरार्द्ध के कारण का उल्लेख होने से काव्यलिंग है। कारणाभाव में भी कार्योतपत्ति होने से विभावना है। अनुप्रास भी है । छन्द है वसन्ततिलका ।

आचार इत्यवहितेन मया गृहीता

या वेत्रयष्टिरवरोधगृहेषु राज्ञः।

काले गते बहुतिथे मम सैव जाता

प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था।।3।।

अन्वय- राज्ञः अवरोधगृहेषु आचार इति अवहितेन मया या वेत्रयष्टिः गृहीता, सा एव बहुतिथे काले गते प्रस्थानविक्लवगतेः मम अवलम्बनार्था जाता ।

अर्थ - **राजा** के अन्तःपुरों में (कन्चुकी के लिए ऐसा) नियम होने के कारण ध्यान देते हुए जिस छड़ी को धारण किया था, वही बहुत काल बीत जाने पर (अब) चलते समय लड़खड़ाती गति वाले मेरे सहारे के लिए (आवश्यक) बन गयी **है ।।3। ।**

टिप्पणी –प्रस्थाने विक्लवा गतिः यस्य तस्य (बहुव्रीहि) । विक्लव = लड़खड़ाना, वि√क्लु । प्रस्थान = गमनारम्भ । प्रस्थाल्युट् (अन) । गतिः=क्तिन् । अवलम्बनार्था = अवलम्बनम् अर्थः यस्याः सा (बहुव्रीहि) शरीरावलम्बनप्रयोजनता जाता । अधिक समय व्यतीत होना 'प्रस्थानविक्लवगति' का कारण है अतः काव्यलिंग अलंकार है। उक्तनिमित्ता विभावना अलंकार भी है, अशक्त होने के कारण का निषेध 'अवहितेन' द्वारा किया गया है और निमित्त को आचार बताया गया है । एक ही वेत्रयष्टि अनेक स्थानों पर वर्णित है, अतः विशेषालंकार है। उत्तरार्द्ध में वृद्धावस्था में गमन में वेत्रयष्टि के सहायक होने से समाहित अलंकार है। त्य ताय, हिते हीता, गृहे गते गते, में छेक वृत्ति एवं

श्रुत्यनुप्रास है। वसन्ततिलका छन्द है।

(ततः प्रविशति कंचुकी) (तब कन्चुकी प्रवेश करता है)

कंचुकीः अहो नु खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि।

कन्चुकीः आह, (अब) मैं ऐसी अवस्था को पहुँच गयी हूँ।

टिप्पणी - कंचुकी राजा के यहाँ कार्य करने वाले वृद्ध ब्राह्मण होते थे, जो सत्यवादी, कामदोष से शून्य और ज्ञानविज्ञान में कुशल हो ते थे, कंचुकी अन्तःपुर में भी जाता-आता था और रानियों के सन्देश को राजा तक पहुँचाता था। कंचुकी एक विशेष वेष धारण करता था, जो लम्बे चोंगे के रूप में होता था और वह हाथ में बेंत की छड़ी लिये रहता था। यहाँ कंचुकी अपनी वृद्धावस्था पर खेद व्यक्त करता है।

कंचुकी- पादावलम्बि परिधानीयं वस्त्रम् तदस्यास्तीति कंचुकी । कंचुक + इनि ।भोः। धर्मकार्यमनतिपात्यं देवस्य । तथापीदानीमेत धर्मासनादुत्थिताय पुनरूपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदितुम् अथवा विश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः। कृतः

भानुः सकृद्युक्ततुरंग एव

रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।

शेषः सदैवाहितभूमिभारः

षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः।।4।।

अरे, यद्यपि यह ठीक है कि महाराज को धर्मकार्य में बिलम्ब नहीं करना चाहिए, तथापि अभी-अभी न्यायासन से उठे हुए उनसे (विश्राम में) पुनः बाधा डालने वाले कण्ववशिष्यों के आगमन की सूचना देने का साहस नहीं कर पा रहा हैं। अथवा यह प्रजाशासन का कर्त्तव्य ही विश्रामरहित हैं क्योंकि-

अर्थ- सूर्य ने एक बार अपने अश्वों को जोता तो उन्हें जोते ही हुए हैं, वायु रात-दिन बहता ही रहता है, शेषनाग सदैव पृथ्वी का भार उठाये हुए हैं, (प्रजा से) छठा भाग वृत्ति के रूप में लेने वाले राजा का भी यही धर्म है ।।4।।

टिप्पणी - भानुः सकृद्युक्ततुरंगः एव=सूर्य एक बार ही अपने रथ के घोड़ों को जोते ही हुए हैं। तात्पर्य यह कि एक बार उन्हें बाँधा ही हैं खोलने का समय नहीं। आदि सृष्टि में उसने एक ही बार रथ के घोड़े जोते, तब से परिश्रम कर रहे हैं।

प्रजा प्रजा स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते श्रान्तमना विविक्तम्।
यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ।। 5 ।।

अन्वय- (एषः देवः) स्वाः प्रजाः इव प्रजाः तन्त्रयित्वा, अशान्तमनाः दिवा यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः द्विपेन्द्रः शीतं स्थानम् इव विविक्तं निषेवते।

अपनी सन्तान सदृश प्रजाओं को साधु मार्ग पर लगाकर उद्विग्न चित्त होकर जैसे दिन में सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से तपा हुआ गजराज (अपने हाथियों के) झुण्ड को इधर-उधर छोड़कर ठन्डे स्थान में विश्राम करता है ,वैसे ही राजा एकान्त का सेवन कर रहे हैं (आराम कर रहे हैं) । यमक एवं उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

टिप्पणी - द्वाभ्यां पिबतीति द्विप, द्वि+पा+क । द्विप् का अर्थ है हाथी, जो मुख ओर सूँड दोनों से जल पीता है । द्विपानाम् इन्द्रः। शीतं इव=जैसे शीतल स्थान का सेवन करता है। जैसे गजराज शीतल वृक्षादि की छाया वाले स्थान का सेवन करता है, वैसे ही राजा एकान्त का सेवन कर रहा है। यहाँ दो उपमा अलंकार है । एक 'स्वाः प्रजा इव' , दूसरा द्विपेन्द्र इव । प्रजाः में यमक भी है । छेक – वृत्ति - श्रुत्यनुप्रास है । उपजाति छन्द है।

उपगम्य – जयतु , जयतु देव: , एते खलु हिमगिरेरूपत्यकारण्यवासिन: काश्यपसंदेशमादाय सस्त्रीकास्तपस्विन: सम्प्राप्ता: श्रुत्वा देव: प्रमाणम्

पास जाकर – आपकी जय हो , ये हिमालय की घाटीके जंगल में रहने वाले , महर्षि काश्यप के सन्देश को लेकर स्त्रियों के साथ तपस्वी लोग आये हैं।

राजाः (सादरम्) किं काश्यपसन्देशहारिणः

राजा: (आदरसहित) क्या काश्यप का सन्देश ले आने वाले ?

कंचुकी: अथ किम् ?

कंचुकीः और क्या ?

राजाः तेन हि मद्वचनाज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हति-इति। अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि।

तो मेरी ओर से उपाध्याय समरात से कहें कि इन आश्रमवासियों को वेदाविहित विधि से सत्कार कर स्वयं ही ले आवें। मैं भी यहाँ तपस्वियों से मिलने योग्य स्थान में बैठकर प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

कंचुकीः यदाज्ञापयति देवः। (इति निष्क्रान्तः)

कंचुकीः जैसी महाराज की आज्ञा। (ऐसा कहकर चला जाता हैं)

राजाः (उत्थाय) वेत्रवति! अग्निशरणमार्गमादेशय।

राजाः (उठकर) वेत्रवति, अग्निशाला का मार्ग दिखाओं।

प्रतिहारीः इत इतो देवः।

प्रतिहारीः इधर, इधर से महाराज।

राजाः (परिक्रामति, अधिकारखेदं निरूप्य)सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी संपद्यते जन्तु। राज्ञां सु चरितार्थता दुःखान्तरैव।

राजाः (चारों ओर घूमता है। कर्त्तव्यभार की खिननता का अभिनय करते हुए) सभी प्राणी मनचाहे पदार्थ को पाकर सुखी हो जाते है, किन्तु राजाओं की (अभिलाषा की) सफलता दुःख से ही अधिक भरी होती है।

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा

क्लिश्नाति लब्धपरिपालनवृत्तिरेव।

नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय

राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम ।।6 ।।

अन्वय- प्रतिष्ठा औत्सुक्यमात्रम् अवसाययति, लब्धपरिपालवृत्तिः क्लिश्नाति एवं। स्वहस्तधृतदण्डम् (स्वहस्तधृतदण्डम् आतपत्रम इव न अतिश्रमापनाय न, न च श्रमाय न। (नेपथ्ये)

अर्थ - सर्वोत्कृष्ट पद की प्राप्ति उत्सुकता भर को ही समाप्त करती है। प्राप्त हुए (राज्यादि) पद की सभी प्रकार से रक्षा का कार्य उसे क्लेश ही देता है। (जिसका दण्ड व्यवस्था अपने हाथ में ली गयी है) ऐसा भी नहीं होता कि कठिन श्रम को न दूर और न ऐसा ही होता है कि श्रम न उत्पन्न **करे ।।6।।**

टिप्पणी - (बहुव्रीहि)। आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्। आतप+त्रा+क। स्वहस्तधृतदण्डम् का राजयम् के पक्ष में अर्थ होगा-जिसकी दण्डव्यवस्था का कार्य अपने हाथ में लिया गया है। राजा का यह भाव नहीं है कि यदि मन्त्रीगण दण्डव्यवस्था का कार्य करते तो वह सुखकर होता। तब भी दण्डव्यवस्था का दायित्व राजा पर ही होता है। 'आतपत्रमिव' में उपमा है। 'लब्धरिपानवृत्ति' क्लेश का हेतु है , अतः काव्यलिंग अलंकार है। प्रतिष्ठा, श्लिष्ट है अतः श्लेषालंकार है। वसन्ततिलका छन्द है।

(नेपथ्य में) वैतालिकी : विजयतां देवः

प्रथमः **स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतो**ः

प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ।। 7 ।।

अन्वय- (त्वम्) स्वसुखनिरभिलाषः (सन) लोकहेतोः प्रतिदिनं खिद्यसे, अथवा ते वृत्तिः एंव विधा एव। हि पादपः मूर्ध्ना तीव्रम् उष्णम् अनुभवति, (किन्तु) छायया संश्रितानाम् परिताप शमयति।

दो स्तुतिवाचकः महाराज की, जय हो।

पहलाः, अपने सुख की अभिलाषा न करते प्रतिदिन प्रजा के लिए कष्ठ उठाते हो,अथवा तुम्हारा कार्य ही इस प्रकार का है। क्योंकि पादप अपने सिर पर तीव्र धूप को झेलता है। किन्तु अपनी छाया से आश्रम में आये हुए लोगों के सन्ताप को शान्त करता है ।।7।

नियमयसि कुमार्गप्रतिस्थतानात्तदण्डः

प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय।

अतनुषु विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम

त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम्।।8।।

अन्वय-(त्वम) आत्तदण्ड (सन्) कुमार्गप्रस्थितान नियमयसि, विवादं प्रशमयसि, रक्षणाम कल्पसे। अतनुष विभवेषु ज्ञातयः सन्तु नाम, प्रजानां बन्धुकृत्यं तु त्वयि परिसमाप्तम्

अर्थ- दण्ड उठाकर तुम कुमार्ग की ओर बढ़नेवालों को सुधारते हो, विवाद को पूर्णतः शान्त करते हो, रक्षा करने में समर्थ हो। प्रचुर धनसम्पत्ति होने पर बन्धु-बान्धव भले ही हो जायें, किन्तु प्रजाओं के बन्धुओं का कर्तव्य तो तुमसे ही पूरा होता **है ।।8।।**

टिप्पणी - वैतालिका =दो चारण। वैतालिक चारण होते है जो समय के अनुरूप् राजा की स्तुति का पाठ करते हे। स्वसुखनिरभिलाषः लोकहेतोः प्रतिदिनं खिद्यसे = अपने सुख की अभिलाषा से रहित होकर प्रजा के कल्याण के लिये प्रतिदिन कष्ट उठाते हो। एक-दो दिन नहीं, अपितु प्रतिदिन। हि पादपः मुर्ध्ना तीव्रम् उष्णम् अनुभवति=क्योंकि वृक्ष अपने सिर पर तीव्र धूप का अनुभव करता हे। 'पादपः' शब्द साभिप्राय और श्लिष्ट है।

1. पादप का अर्थ राजा के पक्ष में है-पादान् पादभूतान् प्रजाजनान् पाति रक्षति इति पादपः। जो चरणभूत या आधारभूत प्रजा की रक्षा करें। उत्तरार्द्ध में दो वाक्यों में विम्बप्रतिबिम्बभाव होने से दृष्टान्त है। पादप के वर्णन से राजा या सत्पुरूष की परिस्फूर्ति होने से समासोक्ति है। छाया तापनिवारणहेतु रूप में वर्णित है, अतः काव्यलिंग है। पूर्वार्द्ध में कही गयी बात का उत्तरार्द्ध में निषेध होने से आक्षेपालंकार है। मालिनी छन्द है। लक्षण है-'ननमययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।'

राजाः ऐते क्लान्तमनसः पुनर्नवीकृता स्मः।(इति परिक्रामति)

राजाः ये क्लान्त चित्त वाले हम फिर से नये बना दिये गये।

प्रतिहारीः ऐषोऽभिनवसंमार्जनसश्रीकः संनिहितहोमधेनुरग्निशरणालिन्दः आरोहतु देवः।

प्रतिहारीःयह नये सम्मार्जन से शोभायुक्त और होमकर्म हेतु उपयोगी गौ से विराजमान अग्निशाला का ओसारा है। इस पर चढ़ें महाराज।

राजाः (आरूहा्र परिजनांसावलम्बी तिष्ठति) वेत्रवति! किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः?

राजाः (चढकर, परिजन के कन्धे का अवलम्बन लेकर खड़ा होता हे) वेत्रवति, किस उद्देश्य से भगवान् काश्यप ने मेरे समीप ऋषियों को भेजा होगा ?

किं तावद्व्रतिनामुपोढ़तपसां विध्नैस्तपो दूषितं

धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।

आहोस्वित्प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरूधा-

मित्यारूढ़बहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः।।9।।

अन्वय- कि तावद् उपोढतपसां व्रतिनां तपः विध्नै: दूषितम् ? उत धर्मारण्यचरेषु प्राणिषु केनचित् असत् चेष्टितम? आहोस्वित् मम अपचरितैः वीरूधाम प्रसवः विष्टम्भितः? इति आरूढवहुप्रतर्कम मे मनः अपरिच्छेदाकुलम् (अस्तिं)।

तो क्या महान् तपस्या करने वाले व्रतियों का तप (राक्षसादि के) विध्नों से दूषित कर दिया गया है? या किसी ने तपोवन में विचरण करने वाले प्राणियों पर अत्याचार की चेष्टा की है ? अथवा मेरे (किन्ही) अधर्माचरणों से लताओं के फूल-फल रूक गये है। इस प्रकार अनेक आशंकाओं में पड़ हुआ मेरा मन अनिश्चय से आकुल हो उठा है।।9।।

टिप्पणी - भगवान कण्व ने तपस्वियों को मेरे पास किस उद्देश्य से भेजा है, इस विषय में राजा अनेक आशंकाए करता है। 'आरूढ़बहुप्रतर्कम' आकुलता का कारण है अतः पदार्थहेतुक काव्यलिंग है। तप स्वि सबमें छेकवृत्तिश्रुत्यनुप्रासः है, छन्द है शार्दूलविक्रीडित।

प्रतिहारीः सुचरितनन्दिन ऋषयो देर्व सभाजयितुमागता इति तर्कयामि।

(ततः प्रविशन्ति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः, पुरश्चैषां कंचुकी पुरोहितश्च)

प्रतिहारीः (आपके) सुन्दर कार्यो से प्रसन्न होने वाले ऋषि लोग महाराज का अभिनन्दन करने आ रहे है ऐसा मै अनुमान करती हूँ।

(तब गौतमी के साथ मुनि लोग शकुन्तला को आगे कर प्रवेश करते हे और उनके आगे यह कंचुकि एवं पुरोहित आते है)

कंचुकीःइत इतो भवन्तः।

कंचुकीःइधर से, इधर से आप लोग आयें।

शार्ङ्गरवःशारद्वतां !

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरहो

न कश्चिद्वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।

तथापीदं शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा

जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव।।10।।

अन्वय-अहो कामम् अभिन्नस्थिति नरपतिः महाभागः वर्णानाम् अपकृष्टः अपि कश्चित् अपथं न भजते, तथापि शश्वत्परिचितविविक्तेन मनसा जनाकीर्णम् इदं हुतवहपरीत गृहम् इव मन्ये।

अर्थ- अहो, भले ही अपनी मर्यादा का अविचलित होकर पालन करने वाले राजा महान् पुण्यात्मा है और सभी वर्णो में कोई निकृष्ट व्यक्ति भी कुमार्ग पर नहीं चल रहा है, फिर भी एकान्त निवास से ही निरन्तर परिचित मन से मैं जनसमूह की भीड़ से भरे इस (राजप्रासाद) को अग्नि से घिरे हुए घर के समान समझ रहा हूँ।**।10।।**

टिप्पणी - शांर्गरव राजा की प्रशंसा करते हुए जनसमुदाय से भरे राजभवन के विषय में अपने अनुभव को व्यक्त करता है। निरन्तर एकान्त तपोवन में निवास करने के कारण भीड़-भरा राजभवन उसे आग की लपटों से घिरे घर के समान प्रतीत होता है। हुतवहेन परीतम् हुतवहपरीतम्। अग्नि के स्थान पर ’हुतवह’ कहा, क्योंकि वक्ता तपस्वी है। साधक और बाधक दोनों ही प्रकार के प्रमाणों के अभाव से सन्देहसंकर है (राघव) ’हुतवहपरीतं गृहमिव’ में उपमा है। शिखरिणी छन्द है।

शारद्वतः जाने भवान्पुरप्रवेशादित्थंभूतः संवृत्तः। अहमपि

अभ्यक्तमिव स्नातः शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।

बद्धमिव स्वैरगतिर्जनमिह सुखसंगिनमवैमि ।। 11 ।।

अन्वय- (अहम् अपि) इह सुखसंगिनं जनम् स्नातः अभ्यक्तम् इव शुचिः अषुचितम् इव, प्रबुद्ध सुपतम् इव, स्वैरगतिः बद्धम् इव अवैमि।

शारद्वत: जानता हूँ आप नगर में प्रवेश करने से ऐसे हो गये। मैं भी यहाँ विषयसुख में लिप्त मनुष्य को वैसा ही समझ रहा हूँ जैसे स्नान किया हुआ व्यक्ति तेल चुपड़े हुए को मन से पवित्र व्यक्ति कलुषित मनवाले को,जागा हुआ व्यक्ति सोये हुए को , स्वच्छन्द गतिवाला बंधे हुए को समझता है।।11।।

टिप्पणी - 'सुखसंगी जनः' उपमेय के लिये कई उपमान उपस्थापित किये गये हैं, अतः मालोपमा है। छेकवृत्यनुप्रास भी है । आर्य जाति है।

शकुन्तला: (निमित्तं सूचयित्वा) अहो, किं में वामेतरं नयनं विस्फुरति ?

शकुन्तला:(अपशकुन सूचित कर) अरे, मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़क रही हे ?

गौतमी: जाते! प्रतिहतम् मंगलम् सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु (इति परिक्रामति)

गौतमी: बेटी अमंगल दूर हो । तेरे पतिगृह के देवता तुझे सुख प्रदान करें। (ऐसा कहकर घूमती है)

पुरोहित: (राजानं निर्दश्य) भो भोस्तपस्विनः! टसावत्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनों वः प्रतिपालयति। पश्यतैनम्।

पुरोहित: (राजा की ओर संकेत कर) हे तपस्वियों यह वर्णो एवं आश्रमों के रक्षक माननीय महाराज पहले ही आसन छोड़कर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । इनसे मिलिये ।

शाड़र्गरव: भो, महाब्राह्मण:! काममेतदभिनन्दनीयं तथापि वयमत्र मध्यस्थाः।

शाड़र्गरव: हे महाब्राह्मण ! निश्चय ही यह प्रशंसनीय है, तथापि इस विषय में हम उदासीन है! क्योंकि-

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमै-

र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।

अनुद्धताः सत्पुरूषा समृद्धिभिः

स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।12।।

अन्वय-तरवः फलागमैः नम्राः भवन्ति। घनाः नबाम्बुभिः दूरविलम्बिनः (भवन्ति) सत्पुरूषाः समृद्धिभिः अनुद्धताः (भवन्ति)एषः परोपकारिणाम् स्वभावः एवं ।

(आम्र आदि) वृक्ष फलों से लद जाने पर झुक जाते है। (वर्षाकाल के आरम्भ के) मेघ नयी जलराशि से भरे होने से बहुत नीचे लटक आते हैं। सज्जन समुद्धियों से गर्वहीन होते हैं। यह परोपकारियों का स्वभाव ही है।**।12।।**

टिप्पणी - विनम्रता तो परोपकारियों का स्वभाव ही है इसे ही शांर्ङ्गरव ने वृक्ष, मेघ और सज्जन का उदाहरण देकर व्यक्त किया है। नम्राः=नम्+र प्रत्यय। नवाम्बुभिः घनाः दूरविलम्बिनः(भवन्ति) =नये जल से परिपूर्ण होने के कारण वर्षा के आरम्भ के मेघ बहुत नीचे लटक जाते हैं दूरं विलम्बन्ते इति दूरविलम्बिनः, दूर+वि+लम्ब+णिनि,, साधुकारिणि, कर्तरि णिनि प्रत्यय। परेषाम् उपकारः परोपकारः सः अस्ति एषामिति परोपकारिणः इनि प्रत्यय। अथवा परेषाम् उपकारिणः परोपकारिणः पर+उप+कृ+णिनि। यह पद्य भर्तृहरि के नीतिशतक में भी पाया जाता है।

प्रतीहारी:देव! प्रसन्नमुखवर्णा दृश्यन्ते। जानामि विश्रब्ध कार्या ऋषयः।

प्रतीहारी:महाराज, इनके मुख पर प्रसन्नता की कान्ति है। मैं समझती हूँ कि ऋषिलोग शान्तिमय कार्य से आये हैं।

राजा (शकुन्तलां दृष्ट्वा)अथात्रभवती ।

का स्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या ।

मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम् ।।13।।

अन्वय-पाण्डुपत्राणाम् मध्ये किसलयम् एव, तपोधनानां मध्ये अवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या (अत्रभवती) का स्वित्?

राजा (शकुन्तला को देखकर) और यह भद्रमहिला-

अर्थ - कौन है, जो घूँघट निकाले हुए है (और इस कारण), जिसका शरीर एवं सौन्दर्य बहुत अधिक प्रकट नहीं हो रहा है, और जो तपस्वियों के बीच वैसी दिखायी पड़ रही है जैसे पीले पत्तों के बीच निकला हुया नया पल्लव हो ।।13।।

टिप्पणी - राजा का ध्यान शकुन्तला की ओर जाता है जो तपस्वियों के बीच घूँघट निकाले हुए ठीक वैसे ही दिखायी पड़ती है जैसे पीले पत्तों के बीच नया पल्लव हो । उसके विषय में राजा की जिज्ञासा होती है कि यह कौन है। साड़ी के आंचल से सिर को ऊपर से तथा मुख का कुछ भाग ढकना ही अवगुण्ठन है । अवगुण्ठन + मतुप + स्त्रीलिंग ड़ीप् प्रत्यय। नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या = जिसका शरीर और लावण्य बहुत अधिक स्पष्ट प्रकट नहीं है। की कान्ति को कहा लाया है। तपोधनानां मध्ये = तपसिवयों के बीच में। तपः एव धनं येषां ते तपोधनाः, तेषाम्। पाण्डुपत्राणाम्

मध्ये किसलयम् इव = पीले पत्तों के बीच में कोमल पल्लव के समान । शकुन्तला की नयी युवावस्था और कोमलता का संकेत भी है। इस पद्य में 'नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या' होने का कारण 'अवगुण्ठनवती' होना बताया गया है अतः काव्यलिंग है। 'किसलयमिव' में उपमा है। आर्या जाति है ।बालपल्लव से शकुन्तला के शकुन्तला के वस्त्र के रंग की ओर द्योतित किया गया है ।

प्रतीहारी- देव, कुतूहलगर्भोपहितो न में तर्कः प्रसरित । ननु दर्शनीया पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते।

प्रतीहारीः महाराज, कुतूहल के बीच उलझा हुआ मेरा तर्क बढ़ नहीं रहा है परन्तु इसकी आकृति तो निश्चय ही सुन्दर दिखायी पड़ रही है ।

राजाः भवतु अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् ।

राजा जो भी हो । परायी स्त्री को ध्यान देकर देखना उचित नहीं है ।

शकुन्तलाः (हस्मूरसि कृत्वा, आत्मगतम्) हृदय! किमेवं वेपसे? आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद्भव ।

शकुन्तलाः(हाथ को छाती पर रखकर, आत्मगत) हृदय, तू क्यों इस प्रकार काँप रहा है? आर्यपुत्र के प्रेम को पहचान कर तो धैर्य धारण कर।

पुरोहितः(पुरो गत्वा) एते विधिवदर्चितास्तपस्विनः। कश्चिदेषामुपाध्यायसन्देशः। तदेव श्रोतुमर्हति ।

पुरोहितः(आगे जाकर) ये तपस्वी है, जिनकी विधिपूर्वक पूजा की गयी है। इनके आचार्य का कोई सन्देश है। उसे महाराज सुनें ।

राजाःअवहितोऽस्मि ।

राजाःमैं सावधान हूँ ।

ऋषयः(हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन्!

ऋषिगणः(हाथ उठाकर) राजन् विजयी होवें ।

राजा सर्वानभिवादये ।

राजाःमैं सभी का अभिवादन करता हूँ ।

ऋषयःइष्टेन युज्यस्व ।

ऋषिगणःअभीष्ट को प्राप्त करो ।

राजाःअपि निर्विध्नतपसो मनुयः?

राजाः क्या मुनियों की तपस्या निर्विघ्न है ?

ऋषय : कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ? ।।14।।

अन्वय - त्वयि सतां रक्षितरि (सति) धर्मक्रियाविध्नः कुतः? धर्माशौ तपति तमः कथम् आविर्भविष्यति ?

ऋषिगणः तुम्हारे जैसे सज्जनों के रक्षक होने पर धर्मकार्यो में विघ्न कहाँ से हो सकता है? प्रदीप्त किरणों वाले सूर्य के तपते रहने पर अन्धकार कैसे प्रकट हो सकता है ? ।।14।।

टिप्पणी - कण्व के शिष्य राजा की प्रशंसा करते हैं और उसके धर्मक्रिया की रक्षाके कार्य पर सन्तोष व्यक्त करते हैं। धर्मक्रियाविध्नः कुतः = धर्म के कार्यो में विध्न कैसे हो सकता है ? अर्थात् विघ्न नहीं हो सकता। धर्मस्य क्रियाः धर्मक्रियाः तासु विध्नः (तत्पुरूष)। त्वयि सतां रक्षितरि = तुम्हारे सज्जनों का रक्षक होने पर अर्थात् जब महान प्रतापी ओर धर्मनिष्ठ तुम सज्जनों की रक्षा करता है, असज्जनों की नहीं।

राजाः**अथवान्खलु** में राजशब्दः। अथ भगवांल्लोकानुग्रहाय कुशली काश्यप **?**

राजाः मेरे लिए राजा शब्द सार्थक हुआ। अच्छा, भगवान् काश्यप संसार का कल्याण करने के लिए कुशल से तो हैं ?

ऋषयः स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः। स भवन्तमनामयप्रश्नपूर्वकमिदमाह।

ऋषिगः सिद्धियों से सम्पन्न योगियों का कुशल स्वयं उनके वश में होता है । उन्होंने आपकी नीरोगता पूछते हुए यह कहा है।

राजाःकिमाज्ञापयति भागवान ?
राजाःभगवान क्या आज्ञा देते हे ?
शार्ङ्गरवः यन्मिथःसमयादिमां मदीयां दुहितरं भवानुपार्यस्त तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम्। कुतः

शार्ङ्गव आपने जो परस्पर शपथलेकर(गान्धर्व विधि से) मेरी पुत्री का विवाह किया उसके लिए मैं आप दोनों को स्वीकृति देता हूँ।

क्योंकि : **त्वमर्हतां प्राग्रसरः स्मृतोऽसि न शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।**
समानयंस्तुल्यगुणं वधूवरं चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः।।15।।
तदिदानीमापन्नसत्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति।

अन्वय - यत् त्वम् अर्हताम् प्राग्रसरः स्मृतः असि, शकुन्तला च मूर्तिमती सत्क्रिया (अस्ति)। तुल्यगुणं वधूवरं समानयन्, प्रजापतिः चिरस्य वाच्यं न गतः। तुम जो प्रशंसनीय पुरूषों में प्रकृष्ट रूप् से अग्रणी हो और शकुन्तला शरीरधारिणी सत्काररूपा श्रेष्ठ क्रिया है (इस प्रकार) समान गुणों वाले वधू और वर को एक साथ मिलाते हुए प्रजापति चिरकाल से चली आ रही निन्दा को नहीं प्राप्त **हुए ।।15।।**

टिप्पणी - तो अब इस गर्भवती को अपने साथ धर्म का पालन करने के लिए स्वीकार कीजिए । प्रजापति शब्द का प्रयोग यहाँ साभिप्राय है। विवाह-सम्बन्ध और सन्तानोत्पत्ति के साथ प्रजापति देवता ही सम्बद्ध माना गया है। 'चिरस्य' शब्द अव्यय है, विभक्तिप्रतिरूपक अव्यय है। अलंकार-बर और वधू की अनुरूपता की प्रशंसा होने से समालंकार है 'मूर्तिमती सत्क्रिया' में उत्प्रेक्षा है। प्रथम वाक्य तुल्यगुणत्व का हेतु व्यक्त करता है, अतः वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग है। अनुप्रास अलंकार है । वंशस्थ छन्द है । 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'।

अभ्यास प्रश्न 1-

निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर लिखें-

1.पंचम अंक के प्रारम्भ में गीत किसके द्वारा गाया जा रहा था-

(क) शकुन्तला (ख) गौतमी

(ग) हंसपदिका (घ) अनुसूया

2. 'रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्-यह किसकी उक्ति हैं-

(क) विदूषक (ख) प्रतिहारी

(ग) कन्चुकी (घ) राजा

3-प्रजा से छठा भाग वृत्ति के रूप में किसके द्वारा लिया जाता है-

(क) मन्त्री (ख) राजा

(ग) विदूषक (घ) मुनि

4. जनाकीर्ण मन्ये हुतवहप्रीतं गृहमिव-यह कथन किसका है-

(क) शारंगरव (ख) शारद्वत

(ग) गौतमी (घ) शकुन्तला

5- परोपकारी व्यक्ति का स्वभाव कैसा होता है?

(क) अहंकारी (ख) विनम्र

(ग) शंकालु (घ) शान्त

अभ्यास प्रश्न 2-

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर हाँ या नहीं में दीजिए-

1. संगीतशाला में गीत गौतमी के द्वारा गाया जा रहा था। ( )

2. राजा को अपने धर्म के प्रति सदैव तत्पर रहना चाहिए। ( )

3. शकुन्तला के साथ वन से कण्व त्रदषि आये थे। ( )

4. राजा को मधुकर की संज्ञा दी गयी है। ( )

5. शकुन्तला की मुद्रिका शचीतीर्थ में गिर गयी थी। ( )

6.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् पंचमअंक श्लोकसं0 16 से 31 तक

गौतमी: आर्य! किमपि वक्तुकामारिम। न मे वचनावसरोऽस्ति। कथमिति

नापेक्षितो गुरूजनोऽनया त्वया पृष्टो न बन्धुजनः।

परस्परस्मिन्नेव चरिते भणामि किमेकमेकस्य।।16।।

अन्वय-अनया गुरूजनः न अपेक्षितः न खलु (त्वया) बन्धुजनः पृष्टः परस्परस्मिन एव चरिते एकमेकस्य किं भणामि।

गौतमी:आर्य, कुछ कहना चाहती हूँ। मेरे कहने के लिए तो अवसर नहीं है, क्योंकि-

इसने अपने गुरूजन की अनुमति नहीं ली और न (आपने इसके) बन्धुजनों से ही पूछा। परस्पर मिलकर किये गये इस कार्य के विषय में तुममें किसी एक से मैं क्या कहू ? ।।16।।

शकुन्तला : किं नु खलु आर्यपुत्रोभणति
शकु**न्तला**: (आत्मगत) - अब देखें आर्यपुत्र क्या कहते हैं ?
राजा: किमिदमुपन्यस्तम् ?
राजा: यह सब क्या उपस्थित कर दिया ?
शकुन्तला: (आत्मगतम्) पावकः खलु वचनोपन्यासः।
शकु**न्तला**: (आत्मगत) इनकी वाणी से आग निकल रही है ?
शार्ङ्गरव: कथमिदं नाम ? भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तानतनिष्णाताः।

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां
जनोऽन्यथा भर्तृमती विशंकते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते
प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः।।17 ।।

अन्वय - जनः भर्तृमतीम् ज्ञातिकुलैकसंश्रयां सतीम् अपि अन्यथा विशंकते। अतः प्रिया अप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः परिणेतुः समीपे इष्यते।

शकुन्तला:(आत्मागत)वचन का उच्चारण तो (मेरे लिए)अग्नि है।

शाड़र्गरव: यह क्या कह रहे हैं ? आप तो लौकिक व्यवहारों में अत्यन्त निष्णात है ।

अर्थ - लोग एकमात्र अपने पिता के ही घर में निवास करने वाली पतिब्रता के सच्चरित्रा होने पर भी अन्यथा आशंका करते है, इस कारण युवती स्त्री का उसके पितृकुल के सम्बन्धी पति के समीप ही निवास करना पसन्द करते है, चाहें वह उसके लिए प्रिया हो या **अप्रिया ।।17।।**

टिप्पणी - शार्ड्गरव राजा से यह कहना चाहता है कि विवाहित स्त्री का अपने पिता के कुल में रहना उचित नहीं है, अतः इसका अपने पति अर्थात् आपके पास ही रहना लोकव्यवहार से समीचीन है। शकुन्तला का तुम्हारे समीप रहना उचित है इस विशेष प्रस्तुत कथन के स्थान पर सामान्य प्रमदामात्र का कथन है, अतः अप्रस्तुतप्रशंसा है। पूर्वार्द्ध का कथन उत्तरार्द्ध के प्रति कारण है, अतः काव्यलिंग भी है। अनुप्रास है। वंशस्थ छन्द है-'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।'

राजा -किं चात्रभवती मया परिणीतपूर्वा?

राजा-क्या इनसे मैंने पहले विवाह किया है?

शकुन्तला -(सविषादम्, आत्मगतम्)हृदय! सांप्रतं त आशंका।

शकुन्तला -(विषाद के साथ, आत्मगत)हृदय, तेरी आशंका सही थी।

शार्ड्गरव-किं कृतकार्यद्वेषो धर्म प्रति विमुखता कृतावज्ञा?

शारंगरव -क्या अपने किये हुए कार्य से अरूचि है या धर्माचरण से पालयन कर रहें हो, अथवा किये हुए को अस्वीकार कर रहे हो?

राजा-कुतोऽयमस्त्कल्पनाप्रश्नः?

राजा-यह असत्य कल्पना कर प्रश्न क्यों?

शारंगरव-मूर्च्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तेषु।।18।।

अन्वय-किं कृतकार्यद्वेष? धर्म प्रति विमुखता? कृतावज्ञा? ऐश्वर्यमत्तेषु प्रायेण अमी विकाराः मूर्च्छन्ति।

शारंगरव -इस प्रकार के विकार प्रायः सम्पत्तियों के कारण गर्वोनमत पुरूषों में उभर आते है ।।18।।

टिप्पणी - परिणीतपूर्वा=पहले विवाह की गयी। पूर्व परिणीता इति परिणीतापूर्वा। 'भूतपूर्वे चरट्' से परिणीत का पूर्वनिपात हुआ। साम्प्रतम् =उचित।

राजा विशेषेणाधिक्षिप्तोऽस्मि।

राजा मुझ पर बहुत बड़ा आक्षेप लगाया जा रहा है।

गौतमी जाते! मुहूर्त मा लज्जस्व। अपनेष्यामि तावत्तेऽगुण्ठनम्। ततस्त्वां भर्ताभिज्ञास्यति।

गौतमी बेटी, क्षण भर भी लज्जा न करो। मैं अब तेरे घूँघट हटाती हूँ। तब तुझे तेरे पति पहचान लेंगे। (ऐसा कह यथोक्त करती है)

राजा (शकुन्तलां निर्वर्ण्य, आत्मगतम्)

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति

प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेति व्यवस्यन्।

भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं

न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ।।19।।

अन्वय- (अहम) एवम् उपनतम् इदम् अक्लिष्टकान्तिरूपं प्रथमपरिगृहीतं स्यात् न वा इति व्यवस्यन् विभातेः अन्तस्तुषारं कुन्दम् इम न च खलु परिभोक्तुम न एवं हातुम शक्नोमि। (इति विचारयन्स्थितः)

अर्थ - इस प्रकार अनायास उपस्थित इस निष्कलुष कान्ति से भरपूर रूप वाली युवती को मैंनं पहले पत्नी के रूप में स्वीकार किया होगा या नहीं यह निश्चय करने में उलझा हुआ मैं इसका वैसे ही न तो उपभोग कर सकता हूँ और न छोड़ पाता हूं जैसे भौंरा प्रत्युष काल में भीतर ओस से भरे हुए कुन्द पुष्प् का न तो मधुपान कर पाता है और न उसे छोडकर जाता ही है।**।19।।** (चिन्तन करता हुआ बैठा रहता है।)

टिप्पणी - विशेषण अधिक्षिप्तः अस्मि=मेरे ऊपर बहुत आक्षेप लगाया गया है। अधिक्षिपक्त राजा भी दुर्वासा के शाप के प्रभावित रहते विस्मरण के कारण अपरिचित बनायी गयी शकुनतला का उसके रूप पर मुग्ध होते हुए भी स्वीकार कर भोग करने में असमर्थ है। जैसे सूर्योदय के साथ ओस के नष्ट होने पर भौंरा कुन्द का मधुपान कर सकता है, न् च खलु परिभोक्तु शक्नोमि=न तो परिभोग कर सकता हूँ । 'खलु' निश्चय के अर्थ में है। परिभोक्तुम्=परि+भुज+तुमुन प्रत्यय। न एवं हातुं शक्नोमि=और न छोड़ पा रहा हूँ। अनुप्रास भी है। सन्देहालंकार भी है। मालिनी छन्द है। गौतमी के

उपर्युक्त कथन से छठे अंक अन्त तक विमर्श या अवमर्श सन्धि है जिसमें शापरूपी वयवधानउपस्थित है। प्रकरी नामकी अर्थप्रकृति है और नियताप्ति नामकी कार्यावस्था है।

प्रतिहारी: अहो ध्र्मावेक्षिता भर्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं दृश्ट्व कोऽन्या विचारयति?

प्रतिहारी -अहो! महाराज की धर्मनिष्ठता धन्य है। इस प्रकार के अनायास उपस्थित हुए रूप को देखकर दूसरा कौन पुरूष सोचता-विचारता ?

शारंगरव- भोराजन्! किमिति जोषमास्यते ?

शारंगरव - राजन्, चुप क्यों हो गये

राजाः भोस्तपोधनाः!चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्रभवत्याः स्मरामि। तत्कथमिमामभिव्यक्त सत्वलक्षणां प्रत्यात्मानं क्षेत्रिणमाशंकमानः प्रतिपत्स्ये ?

राजा - हे तपस्वियों, सोचने पर भी मैं इनको (पत्नी के रूप में) स्वीकार करना स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ। तो कैसे मैं गर्भ के स्पष्ट लक्षणों वाली इसका क्षेत्री पति बनूँगा ऐसी आशंका करते हुए इसे स्वीकार करूं।

शकुन्तला- (अपवार्य) आर्यस्य परिणय एवं सन्देहः। कुत इदानी में दूराधिरोहिण्याशा?

शकुन्तला- (एक ओर मुख कर) आर्य को विवाह में ही सन्देह है। अब मेरी ऊँची आशाओं के लिए स्थान कहाँ।

शारंगरव मा तावत्।

कृताभिमर्शामनु मन्यमानः

सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः।

मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थ

पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन ।।20।।

अन्वय- कृताभिमर्शाम सुताम् अनुमान्यमानः मुनिः त्वया (त्वम् तावत्) विमान्यः नाम येन मुष्टं स्वम् अर्थम् प्रतिग्राहयता दस्युः इव (त्वम) पात्रीकृतः असि।

अपनी बलपूर्वक धर्षिता पुत्री के प्रति तुम्हारे अपराध को (क्षमापूर्वक) अनुमति देने वाले उस मुनि का तुम थोड़ भी अपमान मत करों, जिन्होंने तुम्हें वैसे ही (कन्यादान हेतु) योग्य पात्र बना दिया है जैसे कोई (उदारचेता) अपने चुराये गये धन का चोर को ही सम्मानपूर्वक दान कर दे **।।20।।**

टिप्पणी - शारंगरव दुष्यन्त को चेतावनी - सा देता हुआ कहता है । मा तावत् = ऐसा मत करो। कृताभिमर्शा सुताम् अनुमन्यमानः बलपूर्वक या स्वेच्छा से उपभोग ली गयी कन्या को अनुमति देते हुए । फुसलाकर भोग की गयी पुत्री के साथ तुम्हारे व्यवहार को स्वीकार करते हुए। कृतः अभिमर्शः बलादधर्षणं यस्याः सा तम्। अभि+मृश्+घञ्। अनुमन्यमानः=अनु+मन+शानच्। मुनिः त्वया(मा तावत) विमान्यः नाम=मुनि का तुम्हें बिल्कुल अपमान नहीं करना चाहिये। प्रतिग्रह का अर्थ दान है। दान किसी योग्य पात्र को दिया जाता है। उन्होंने चुराये गये धन को ही चुराने वालेको योग्य पात्र बनाकर दान कर दिया है यह भाव है। प्रति+ग्रह+णिच्+शतृ, तुतीया एकवचन। यहाँ 'दस्युरिव' में उपमालंकार है। मुनि ने एक अपराध क्षमा कर दिया है, अब वे अवमानना क्षमा नहीं करेंगे, अवश्य दण्ड देंगे यह सूक्ष्म अर्थ व्यक्त होने के कारण सुक्षमलंकार भी है। 'मन्यमान्य' 'स्युसिये' में छेकवृत्यनुप्रास है। उपजाति छन्द है जो इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के चरणों के मिश्रण से होता है।

शारद्वत : शार्गरव , विरम त्वमिदानीम् । शकुन्तले वक्तव्यमुकतस्माभि: । सोयमत्र भवानेवमाह । दीयतामस्मै प्रत्ययप्रतिवचनम् ।

शारद्वत : तुम चुप रहो , शकुन्तला, हमे जो कहना था वह कह दिया इन श्रीमान् जी ने ऐसा कहा। तुम इनको विश्वास देने वाला प्रत्युत्तर दो ।

शकुन्तला :अपवार्य इदमवस्थान्तरे गते तादृशेनुरागे किं वा स्मारितेन आत्मेदानीं में शोचनीयम् इति व्यवसितमेतत् प्रकाशम् आर्यपुत्र इत्यर्धोक्ते संशयित इदानीं परिषदे नैष समुदाचार पौरव न युक्तं नाम ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोक्तान ह्रदयमि जनं समयपूर्वं प्रतार्ये साम्प्रतमीदृशैरक्षैरे प्रत्याख्यातुम् ।

शकुन्तला: एक ओर मुह करके मेरे उस प्रेम को इस दशा में पहुच जाने पर याद दिलाने से क्या लाभ मुझको अपना निन्दा करना चाहिये । प्रकट ,आर्यपुत्र अभी किवाह करने में सन्देह है ,अत: यह सम्बोधन उचित नहीं है ,हे पौरव आपको यह ठीक नहीं है कि उस प्रकारपहले आश्रम स्थान में स्वभाव से निष्कपट ह्रदय वाले इस व्यक्ति को शपथपूर्वक छलकर अब इस तरह के वचनों इस तरह के वचनों से ठुकराएं ।

राजा (कर्णौ विधाय) शान्तं पापम् ।
राजा (कानों को ढककर) पाप शान्त हो ।
व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम ?

कूलंकषेव सिन्धु प्रसन्नमम्भस्तटतरू च।।21।।

अन्वय- (त्वम्) कूलंकषा सिन्धु प्रसन्नम् अम्भः तटतरू च इव, व्यपदेशम् आविलयितुम, इमं जनं पातयितुम च किम ईहसे ?

अर्थ - किनारों को तोडने वाली नदी जैसे निर्मल जल को कलुषित करती है और तट पर खडे वृक्ष

को गिरा देती है वैसे ही (अपने) कुल को कलकिंत करने और तटस्थ वयक्ति को पतित बनाने की चेष्टा क्यों कर रही हो **? ।।21।।**

शकुन्तला अच्छा, तो यदि आप सचमुच मेरे दूसरे की पत्नी होने की शंका करते हुए ऐसा कहने लगे तो मैं इस पहचान की वस्तु द्वारा आपकी शंका दूर करूँगी।

शकुन्तला- भवतु, यदि परमार्थतः परपरिग्रहशंकिना त्वयैवं वक्तुं प्रवृत्तं तवभिज्ञानेनानेन तवाशंकामपनेष्यामि!

राजा उदारः कल्पः।

राजा उत्तम उपाय है।

टिप्पणी - राजा शकुन्तला के आरोप से खिन्न होकर पूछता है कि मेरे कुल को कलंकित करना और मुझे पापी बनाना क्यों चाहती हो? सिन्धु के साथ कूलंकषा विशेषण आवश्यक है। इससे शकुन्तला के कुल की मर्यादा का उल्लंघन कर राजा के समीप आने की भी व्यंजना होती है। यहा पूर्णोपमा अलंकार स्पष्ट है पूर्वार्द्ध में क्रियाओं और गुण के समुच्चय के कारण समुच्चयालंकार है। आर्या जाति छन्द है ।

शकुन्तला- (मुद्रास्थानं परामृश्य) -हा धिक, अड़गुलीयकशूनया मेऽङ्गुलिः।

(इति सविषादं गौतमीमेक्षते।)

शकुन्तला-अगूँ ठी धारण करने के स्थान को छूकर) हाय, अनर्थ हो गया, मेरी अंगुली में अंगुठी नहीं है। (ऐसा कहकर विषाद के साथ गौतमी की ओर देखती है।)

गौतमी : नूनं ते शक्रावताराभ्यतरे शचीतीर्थसलिलं वन्दमानायाः प्रभ्रष्टमंगुलीयकम्।

गौतमी : लगता है, शक्रावतार में शचीतीर्थ के जल की वन्दना करते समय तेरी अंगूठी गिर गयी है।

राजाः (सस्मितम) इदं तत्प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणमिति यदुच्यते।

राजा: (मुस्कराते हुए) यह वैसा ही है जैसा कहा जाता है कि स्त्री जाति अवसर के अनुकूल तत्काल बुद्धि से काम लेने में निपुण होती है।

शकुन्तला अत्र तावद्विधिना दर्शितं प्रभुत्वम्। अपरं ते कथयिष्यामि।

शकुन्तला : इस विषय में तो विधि ने अपना प्रभुत्व दिखा दिया। मैं दूसरा तृत्तान्त सुनाती हूॅ।

राजा: श्रोतव्यमिदानीं संवृत्तम्।

राजा: अब सुनने वाली बात आ गयी।

शकुन्तला- नन्वेकस्मिन्दिवसे नवमालिकामण्डपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते संनिहितमासीत्।

शकुन्तला- एक दिन नवमालिकाकुन्ज में कमलिनी के पत्ते के दोनो में रखा हुआ जल आपने हाथ में लिया था।

राजा-शृणुमस्तावत्।

राजा - सुन तो रहे हैं।

शकुन्तला- तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापांगो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयायं तावत्प्रथमं पिबत्वित्यनुकम्पिनोपच्दन्दित उदकेन । नपुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्याशमुपतः पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि सर्वः सगन्धेषुविश्वसिति। द्वावप्यत्रारण्यकौ इति।

शकुन्तला- उस समय मेरे द्वारा पुत्र बनाया गया दीर्घापाड़ग नाम का मृंगशावक आया। तब आपने यह पहले यह जल पिया ऐसी अनुकम्पा से उसे जल दिखाकर प्यार से बुलाया था। वह अपरिचित होने के कारण आपके हाथों के पास नहीं आया। उसके बाद जब उसी दोने में मैंने जल लेकर बुलाया तब उसने चाव से जल पी लिया था। तब आपने इस प्रकार परिहास किया था कि सभी अपने ही बन्धुओं पर विश्वास करते हैं। यहॉ तुम दोनों ही आरण्यक हो।

राजा- एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतमयवाड़्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिण: ।

राजा- अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाली स्त्रियों के ऐसे ही झूठे और मधुर वचनों से कामी पुरूष फसाये जाते है।

गौतमी – महाभाग ! नार्हस्येवं मन्त्रयितुम्। तपोवनसंवर्धितोऽयं अनभिज्ञोयं जनः कैतवस्य।

गौतमी - महानुभाव ! आप ऐसा न सोचें। तपोवन में पाली-पोसी गयी यह छल-प्रपंच से अनभिज्ञ है।

राजा - तापसंवृद्धे !

राजा-तापसी वृद्धा

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु

संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।

प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात-

मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति ।।22।।

अन्वय- स्त्रीणाम् अशिक्षिणतपटुत्वम् अमानुषीषु संदृश्यते, किमुत या प्रति-प्रबोधवत्यः? परभृताः खलु अन्तरिक्षगमनात् प्राक अपत्जातम् अन्यैः द्विजैः पोषयन्ति।

अर्थ - स्त्रियों की उपदेश के बिना भी वचनो की चतुराई मनुष्य जाति से भिन्न योनियों की स्त्रियों में भी सम्यक् दिखायी पड़ती है, तो फिर जो बुद्धि विवेक से संपन्न (मनुष्य जाति की) स्त्रियाँ है उनकी बात ही क्या? परभृता (कोकिलाएं)अपने बच्चों का जब तक वे अन्तरिक्ष में उड़ने में समर्थ नहीं होते तब तक दूसरे द्विजों (कौओं) से पालन पोषण कराती है ।।22।।

टिप्पणी - जब गौतमी राजा से यह कहती है कि शैशव से ही तपोवन में पाली-पोसी गयी यह शकुन्तला छल-प्रपंच से अनभिज्ञ है, तब राजा उत्तर में कहता है कि स्त्रियों को छल-प्रपंच कहीं से सीखना नहीं होता,वह तो विना सीखे ही उन्हें स्वभाव से प्राप्त हो जाता है। पशु-पक्षियों की मादा में भी यह चतुराई रहती है फिर मनुष्य जातिकी स्त्रियों की तो बात ही क्या?

शकुन्तला (सरोषम्) - अनार्य ! आत्मनो हृदयानुमानेन पश्यति। क इदानीमन्यो धर्मकंचुकाप्रवेशिनस्तृणच्छन्नकूपोपमस्य तवानुकृति प्रतिपत्स्यते?

शकुन्तला: (रोष के साथ) नीच कही के। अपने हृदय जैसा ही दूसरो को समझ रहे हो। इस समय और कौन दूसरा धर्म का चोंगा धारण करने वाले और तिनकों से ढंके हुए कुएँ जैसे तुम्हारे ढोग को समझ सकता है?

राजा : (आत्मगतम्) सन्दिग्धबुद्धिं मां कुर्वन्नकैतव इवास्याः कोपो लक्ष्यते। तथा ह्यनया-

राजा : (आत्मगत) मेरी बुद्धि को सनदेह में डालता हुए इसका यह क्रोध स्वाभाविक-सा दिखाई पड़ रहा है क्योंकि इसने।

अर्थ - शकुन्तला विशेष के स्थान पर स्त्री सामान्य का वर्णन होने के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। पूर्वार्द्ध के सामान्य कथन का उत्तरार्द्ध के विशेष कथन द्वारा समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास है। वसन्ततिलका छन्द है उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

मय्येव विस्मरणदारूणचित्तवृत्तौ

वृत्त रहः प्रणयमप्रतिद्यमाने।

भेदाद् भ्रुवोः कुटिलयोरतिलोहिताक्ष्या

भग्नं शरासनमिवातिरूषा स्मरस्य ।।23।।

अन्वय - अतिरूषा अतिलोहिताक्ष्या (अनया) विस्मरणदारूणचित्तवृतौ रह वृतं प्रणयम् अप्रतिपद्यमाने मयि एव कुटिलयोः भ्रुवोः भेदात् स्मरस्य शरासनं भग्नम् इव।

(**प्रकाशम**)भद्रे! प्रथितं दुष्यनतस्य चरितम्। तथापीदं न लक्षये।

(प्रकट) भद्रे, दुष्यन्त का चरित्र सर्वविदित है। यदि न भी हो, तो भी मैं ऐसा दोष नहीं पा रहा हूँ।

अर्थ - स्मरण न होने से कठोर चित्तवृत्ति वाले पर ही एकान्त में किये गये प्रणय व्यापार को निश्चयपूर्वक स्वीकार न करने पर अत्यनत रोष से भरी हुई और अत्यधिक लाल नेत्रों वाली ने तिरछी भौहों को ऊपर चढाकर मानों कामदेव के धनुष् का दण्ड ही तोड़कर रख दिया ।।**23**।।

टिप्पणी - शकुन्तला के स्वाभाविक क्रोध से राजा भी सन्देह में पड़ जाता है। अन्तर्मन में शाप के कारण सुप्त स्मृति भी बीच-बीच में उद्बुद्ध होती है । अतिरूषा = अत्यन्तक्रोधकेकारण,अतिलोहिताक्ष्या = अत्यन्त लाल नेत्रों वाली द्वारा। अतिलोहिते अक्षिणी यस्याः सा तया। अत्यन्त क्रोध के कारण आँखें बहुत अधिक लाल हो गयी है। यह क्रोध की वास्विकता का द्योतक है। स्मरस्य शरासनं भग्नम् इव=मानों कामदेव का धनुष तोड़ दिया गया। हो। अलंकार-'भग्नम्' नेत्रों की अतिशय लालिमा तथा भ्रूभंग एवं स्मर के शरासन के टूटने का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

शकुन्तला-सुष्ठुतावदत्रसवच्छन्दचारिणी-कृतास्मि,याहमस्यपुरूवंशप्रत्ययेन मुखमधोर्हदयस्थित विषस्य हस्ताभ्याशमुपगता। (इति पटान्तेन मुखमावृत्यं रोदिति)

शकुन्तला- तो मैं सम्यक रूप से स्वेच्छाचारिणी बना दी गयी, जो पुरूवंश का विश्वास कर मुख में

मधु और हृदय में विष से भरे हुए तुम्हारे जैसे पुरूष के हाथों में पहुॅच गयी। (आँचल में मुख ढंककर रोती है ।)

शार्ङ्गरव - इत्थमात्मकृतं प्रतिहतं चापलं दहति।

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्संगतं रहः।

अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ।।24।।

अन्वय-अतः रहः संगतम् विशेषात् परीक्ष्य कर्तव्यम्। अज्ञात हृदयेषु सौहृदम् एवं वैरीभवति।

शारंगरव-इसी प्रकार अपना किया हुआ अविवेकपूर्ण कार्य विध्न उत्पन्न् होने पर सन्ताप देता है ।

अर्थ - इस कारण एकान्त में मैत्री या प्रेमसंबन्ध विशेष रूप से परीक्षा लेकर करना चाहिए । जिसके हृदय के विषय में ज्ञान नहीं है उनसे प्रेम करना ही शत्रु बन जाता है **।।24।।**

टिप्पणी - शकुन्तला का उदाहरण दिया गया है, अवैरम वैरं सम्पद्यमानं भवति इति वैरीभवति। वैरच्व्यिभूलट्लकार। 'सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।' अलंकार-इस पद्य में शकुन्तला और दुष्यनत का प्रणयव्यापार प्रस्तुत है, उसके स्थान पर सामान्य एकान्तघटित प्रेम सम्बन्ध का वर्णन किया गया है, अतः अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। अज्ञातहृदय वालों के साथ मैत्री शत्रु के समान आचरण करती है इस सामान्य कथन से वैधर्म्य द्वारा दुष्यनत के प्रति प्रेम से शकुन्तला की विषम स्थिति का समर्थन किया गया है, सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास है। उत्तरार्द्ध में पूर्वार्द्ध का हेतु वर्णित होने से वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग भी है । पथ्यावक्त्र छन्द है ।

राजा - अयि भोः! किमत्रभवतीप्रत्ययादेवास्मान् संयुतदोषाक्षरैः क्षिणुथ ?

राजा-महाशयां इन देवी जी के ऊपर विश्वास कर ही हमें कलंक में सने हुए वचनों से क्यों क्लेश दे रहे हैं?

शारंगरव (सासूयम) श्रुतं भवद्भिरधरोत्तरम् ।

आ जन्मन: शाठयमषिक्षितो य-

स्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।

परातिसन्धानमधीयते यै -

र्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः ।।25

अन्वय- यः आ जन्मनः शाठयम् अशिक्षितः तस्य जनस्य वचनम् अप्रमाणम् । यैः परातिसन्धानम् विद्या इति अधीयते ते किल आप्तवाचः सन्तु ।।

शार्ङ्गरव - (दोष दिखाने के भाव से) आप लोगों में यह उल्टी बात सुनी ?

जिसने जन्म से ही धूर्तता नहीं जानी उस व्यक्ति का वचन अप्रमाण हो गया और जो दूसरों की वंचना का एक शास्त्र के रूपमें अध्ययन करते है वे परम सत्यवादी हो गये।**।25।।**

टिप्पणी - इस पद्य में व्यंग्यार्थ यह ध्वनित होता है कि जिस व्यक्ति ने (अर्थात् शकुन्तला ने) जन्म से शठता सीखी भी नहीं है, इसके वचन असत्य नहीं हो सकते और जिस व्यक्ति ने (अर्थात् राजा ने) परवंचना को विद्या के रूप में सीखा ही नही अपितु विधिवत् गुरूओं से पढ़ा है उसका वचन

सत्यवचन नहीं हो सकता है। शकुनतला के वचन ही प्रमाण हैं।

राजा-भोः सत्यवादिन्! अभ्युपगतं तावदस्माभिरेवम्। किं पुनरिमामति-सन्धाय लभ्यते?

राजा-हे सत्यवादी हम ऐसा ही मान ले रहे हैं, किन्तु इनहें धोखा देकर क्या मिलेगा?

शार्ङ्गरव-विनिपातः।

शारंगरव -घोर अधःपतन।

राजा-विनिपातः पौरवैः प्रार्थ्यत इति न श्रद्धेयम्।

राजा-अधःपतन की कामना पुरूवंशी राजा करते हों यह विश्वास करने योग्य नहीं है।

शारद्वत-शार्ङ्गरव! किमुत्तरेण? अनुष्ठितो गुरोः सन्देशः। प्रतिनिवर्तामहे वयम्। (राजानं प्रति)-

तदेषा भवतः कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा।

उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी।।26

अन्वय-तत् एष भवतः कान्ता, एनाम् त्यज गृहाण वा। हि दारेषु सर्वतोमुखी प्रभुता उपपन्ना।

गौतमि! गच्छाप्रतः। (इति प्रस्थिताः)

शारद्वत शाङ्गरव! बत बढाने से क्या लाभ? हमने गुरू का सन्देश पूरा कर दिया। अब हम लौटें।

अर्थ - तो यह आपकी कान्ता है। इस का परित्याग कीजिए या इसे स्वीकार कीजिए। पत्नी के ऊपर पति का सभी प्रकार का अधिकार माना जाता है **।।26।।**

गौतमी, आगे चलो। (ऐसा कहकर चलने लगते हैं)

शकुन्तला - कथमनेन कितवेन विप्रलब्धास्मि। यूयमपि मां परित्यजथ? (इत्यनुप्रतिष्ठते)

शकुन्तला - यह क्या ? इस धूर्त ने तो मेरे साथ विश्वासघात किया ही है, आप लोग भी मुझे छोड़ रहे

हैं? (ऐसा कहकर उनके पीछे चलने लगती है)

टिप्पणी - शकुन्तला और दुष्यन्त के विशेष प्रस्तुत वृत्तान्त के स्थान पर सामान्य अप्रस्तुत का वर्णन होने के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा है। 'परातिसन्धानम् विद्येति' में परातिसन्धान पर विद्या का अभेद आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है अनुप्रास भी है। उपजाति छन्द है।तत् एषा भवतः कान्ता=तो यह आपकी प्रिया है । कान्ता का अर्थ है प्रिया। एनां त्यज गृहाण वा=इसे छोड़ो या गृहण करो। दारेषु=पत्नी पर, दारा शब्द पत्नी का पर्यायवाची है, नित्य बहुवचन है और पुल्लिंग है। सर्वतोमुखी प्रभुता उपपन्ना=सभी प्रकार से प्रभुत्व या अधिकार माना जाता है। सर्वतोमुखी=सभी दिशाओं में, सर्वासु दिक्षु मुखं प्रवृत्तिः यस्याः तादृशी। (सर्वतोमुखी त्यागे ताड़ने स्वीकारे दान इत्यादि)। उपपन्ना=उप+पद्+क्त+टाप्। दाराः=दारयन्ति भ्रातृन् इति√दृ+णिच्+घञ् कर्तरि । पूर्वार्द्ध में विशेष का उत्तरार्द्ध में वर्णित सामान्य द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। पथ्यावक्त्र छन्द है

गौतमीः (स्थित्वा)वत्स शार्ङ्गरव! अनुगच्छतीयं खलु नः करूणपरिदेविनी शकुन्तला।

प्रत्यादेशपरूषे भर्तरि किं वा में पुत्रिका करोतु?

गौतमी (रूककर) बेटा शारंगरव। करूण विलाप करती हुई यह शकुन्तला हमारे पीछे आ रही है। पति के परित्याग की निष्ठुरता दिखाने पर मेरी बिटिया क्या करे?

शार्ङ्गरव- (सरोषं निवृत्य) किं पुरोभागे! स्वातन्त्र्यवलम्बसे? (शकुन्तला भीता-वेफ्ते)

शारंगरवः(रोष के साथ पीछे मुड़कर) अरी दुष्टा, मनमानी कर रही है? (शकुन्तला डर कर कॉपने लगती है)

शार्ङ्गरव-शकुन्तले!

यदि यथा वदति क्षिपिपस्तथा

त्वमसि किं पितुरूत्कुलया त्वया।

अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः

पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ।। 27 ।।

अन्वय-क्षितिपः यथा वदति, यदि त्वं तथा असि, उत्कुलया त्वया पितुः किम्? अथ तु आत्मनः व्रतं शुचि वेत्सि, पतिकुले तब दास्यम् अपि क्षमम्।

तिष्ठ, साधयामो वयम्। रूको। हम चलते हैं।

शारंगरव- शकुन्तले!यदि राजा जैसा कह रहे हैं वैसी ही तू है, तो कुल की मर्यादा का उल्लंघन करने

वाली तुझसे अब पिता को क्या प्रयोजन? और यदि तुम अपने आचरण को पवित्र समझती हो तो पति के घर में तुम्हारा दासी बनकर रहना ही उचित है **।।27।।**

टिप्पणी - विप्रलब्धा = वि, प्र+ लभ+क्त+ टाप् । छली गयी । अनुप्रतिष्ठते=पीछे चल पड़ती है। परि+दिव्+णिनि+ङीप् । करूण विलाप करती करूणं यथा स्यात्तथा परिदेविनी है। ध्वनित है कि राजा तुम्हें स्वीकार न करते हुए भी तुम्हारा पालन करेगा। राजा का यह धर्म होता था कि वह धर्षिता, अनाथा स्त्री के भी पालन-पोषण की व्यवस्था करता था, जैसा कि आजकल शासन की ओर से संरक्षणगृहों में संवासिनियों का पालन-पाषण किया जाता है । उत्तरार्द्ध में 'पति' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसके द्वारा शकुन्तला के कथन की सत्यता भी विकल्प के रूप् में स्वीकार की गयी है। अलंकार-यहॉ प्रथम चरण में द्वितीय चरण में चतुर्थ चरण के कथन का हेतु है, अतः दूसरा काव्यलिंग अलंकार है । अनुप्रास भी है । द्रुतविलम्बित छन्द है ।

राजा - भोस्तपस्विन्! कथमत्रभवतीं विप्रलम्भसे ?

कुमुदान्येव शशांकः सविता बोधयति पंकजान्येव ।

वशिनांहि परपरिग्रहसंश्लेषपराड्मुखी वृत्तिः।।28।।

अन्वय-शशांक कुमुदानि एव बोधयति सविता, पंकजानि एवं (बोधयति)। हि वशिनां वृत्तिः परपरिग्रहसंश्लेषपराड्मुखी (भवति) ।

राजा- हे तपस्वी ! इन्हें क्यों धोखे में डाल रहे हैं ?

अर्थ - चन्द्रमा कुमुदों को ही विकसित करता है और सूर्य कमलों को ही प्रस्फुटित करता है । जितेन्द्रियों की मनोवृति दूसरों की वस्तु या पत्नी के सम्पर्क से दूर भागने वाली होती ।।28।।

टिप्पणी - किमत्रभवती विप्रलभसे = क्यों इनको धोखे में रख रहे हैं? तात्पर्य यह है कि इन्हें आप यहॉ मेरे राजप्रासाद में रहने का आदेश देकर इन्हें इस धोखे में क्यों रख रहे हैं मैं इनके यहॉ निवास करने पर स्वीकार कर लूॅगा । शशांकः कुमुदानि एवं बोधयति=चन्द्रमा कमलों को ही जगाता है, प्रस्फुटित करता है, विकसित करता है । दूसरे पुष्पों को विकसित नहीं करता ।

शार्ड्गरव -यदा तु पूर्ववृत्तमन्यसंगाद्विस्मृतो भवांस्तदा कथमधर्मभीरूः?

शाड़र्गरव जब आप पहले के वृतान्त को अन्य में आसक्ति के कारण भूल बैठें तब अधर्म से भय क्यों कर रहे हैं ?

राजा- (पुरोहितं प्रति) भवन्तमेवात्र गुरूलाघवं पृच्छामि ।

मूढ़ स्थामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।

दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ।।29।।

अन्वय-अहम् मूढः स्याम् एषा वा मिथ्या वदेत् इति संशये दारत्यागी भवामि आहो परस्त्रीस्पर्शपांसुलः(भवामि)

राजा- (पुरोहित से) इस विषय में मैं आप से ही उचित अनुचित पूछता हूँ।

अर्थ - मैं ही स्मृति खो चुका हूॅ या यह मिथ्या बोल रही है इस प्रकार के संशय में पत्नी का परित्याग करने वाला बनूं यापरस्त्री के संपर्क से दूषित होऊँ **? ।।29।।**

पुरोहित- (विचार्य) यदि तावदेवं क्रियताम्।

पुरोहित - (विचार कर) यदि ऐसी बात है तो आप यह करें।

राजा-अनुशास्तु मां भवान्। **राजा**-आप मुझे निर्देश दें।

पुरोहित -अत्रभवती तावदा प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतृ । कुत इदमुच्यत इति चेत्। त्वं साधुभिरूद्दिष्टः, प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेन्मुनिदौहित्रस्तल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्ययें तु पितुरस्या समीपनयनमवस्थितमेव।

पुरोहित-ये देवी प्रसव होने तक मेरे घर रहें। मैं ऐसा क्यों कह रहा हूॅ यदि यह पूछें, तो आपको महात्माओं ने कहा ही है कि पहला ही पुत्र चक्रवर्ती बनने वाला उत्पन्न करेगे। यदि मुनि का यह नाती चक्रवर्ती राजा के लक्षणों से युक्त हो, तब इनका सत्कार कर इन्हें अन्तःपुर में पहूँचा दीजिएगा, इसके विपरीत होन पर इसे पिता के समीप तो पहुँचाना ही है।

राजा-यथा गुरूभ्यो रोचते।

राजा-जैसा गुरूवर को अच्छ लगे।

पुरोहित-वत्से! अनुगच्छ माम्

पुरोहित-पुत्री, मेरे पीछे आ।

शकुन्तला-भवति वसुधे! देहि मे विवरम् ।(इति रूदती प्रस्थिता, निष्क्रान्ता सह पुरोधसा तपस्विभिश्च)(राजा शापव्यवहितस्मृतिः शकुन्तलागतमेव चिन्तयति)

शकुन्तला-हे पृथ्वी देवी, मुझे अपने भीतर प्रवेश के लिए मार्ग दो। (यह कहकर होती हुई चल देती

हे और पुरोहित एवं तपस्वियों के साथ निकल जाती है ।)

(राजा शाप के कारण अवद्ध स्मृति की अवस्था में पड़कर शकुन्तला के विषय में ही सोचता है ।)

(नेपथ्ये) आश्चर्यम्।(नेपथ्य में) आर्श्चय है ।

राजा- (आकर्ण्य) किं नु खलु स्यात्?

राजा- (सुनकर) क्या हो सकता है ?

पुरोहित- (सविस्मयम) देव, अद्भुतं खलु संवृत्तम् ।

पुरोहित - (प्रवेशकर, विस्मय के साथ) महाराज, सचमुच अद्भुत हो गया ।

राजा-किमिव? **राजा**-वह क्या ?

पुरोहित- देव परावृत्तेषु कण्वशिष्येषु ।

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि बाला

बाहुत्क्षेपं क्रन्दितुं च प्रवृत्ता।

पुरोहित -महाराज, कण्व के शिष्यों के लौट जाने पर-

वह युवती अपने भाग्य को कोसती हुई बाहों को उठाकर फूट-फूट कर रोने लगी।

राजा- किंच ।

राजा- और तब ?

पुरोहित - **स्त्रीसंस्थानं चापसरस्तीर्थमारा**

दुत्क्षिप्यैनां ज्योतिरेकं जगाम ।।30।।

अन्वय-सा बाला स्वानि भग्यानि निन्दती बाहूत्क्षेपं क्रन्दितुं प्रवृत्ता। स्त्रीसंस्थानम् एकं ज्योतिः आरात् एनाम् उत्क्षिप्य अप्सरस्तीर्थम् जगाम । (सर्वे विस्मयं रूप्त्रपयनित)

पुरोहित-स्त्री की आकृति वाला एक तेजःपुन्ज उसे दूर से उठाकर अप्सरस्तीर्थ की ओर गया।।30।

(सभी आश्चर्य का अभिनय करते है)

राजा - भगवान्! प्रागपि सोऽस्माभिरर्थः प्रत्यादिष्ट एव। किं वृथा तर्केणान्विष्यते? विश्राम्यतु भवान्।

राजा-भगवान् हमने पहले ही उसे वस्तु को ठुकरा दिया है। अब व्यर्थ तर्क से किस उधेड़-बुन में पड़े हुए है। आप विश्राम करें।

पुरोहित - (विलोक्य)विजयस्व। (इति निष्क्रान्तः)

पुरोहित - (राजा को देखकर) विजयी होवें।(निकल जाता है)

राजा-वेत्रवति! पर्याकुलोऽस्मि। शयनभूमिमार्गमादेशय।

राजा-वेत्रवती, व्याकुल हो गया हूँ। शयनगृह का मार्ग दिखाओ।

प्रतीहारी -इत इतो देवः। (इति प्रस्थिता)

प्रतीहारी- इधर से इधर महाराज। (प्रस्थान करती है)

राजा- **कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम्।**

बलयत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मे हृदयम्॥31॥

अन्वय-कामम् प्रत्यादिष्टाम् मुनेः तनयाम् परिग्रहं न स्मरामि। बलवद् दूयमानं में हृदयं तु प्रत्यायति।

राजा- यद्यपि मैं ठुकरायी गयी मुनिकन्या को पत्नी बनाने का स्मरण नहीं कर पा रहा हूँ तथापि व्यथित होता हुआ मेरा हृदय मुझे विश्वास-सा दिला रहा है॥31॥ (इति निष्क्रान्ताः सर्वे) सभी निकल जाते है।)

टिप्पणी - सोऽर्थः प्रत्यादिष्टः एवं=उस वस्तु को या उस स्त्री को हमने अस्वीकार ही कर दिया। पर्याकुलः अस्मि = मैं व्याकुल हो गया हूं। अब शाप का प्रभाव पूरा हो चुका है, स्मृतियॉ और भी जोर मार रही है, इस कारण व्याकुलता और बढ़ जाती है। वह अपनी स्थिति का वर्णन पद्य में करता है। इस प्रकार पॉचवें अंक का वर्णन आपके अध्ययन के लिए प्रस्तुत किया गया।

6.5 सारांश

इस इकाई में आपने हंसपादिका के गीत द्वारा दुष्यन्त के ऊपर किये जाते हुए व्यंग्य की सूचना प्राप्त करते हुए परित्यक्त शकुन्तला के वियोग का अनुभव एवं दुष्यन्त-शकुन्तला के विस्तृत संवादों का अध्ययन किया और जाना कि किस प्रकार अंगूठी के खो जाने के कारण राजा शकुन्तला को नही पहचान सका और अन्त में एक तेजोमयी नारी की आकृति उसे उठाकर आकाश में ले गयी। यह सांकेतिक सारांश है ,पूरे अंक का वर्णन अध्ययन के पश्चात् ही जाना जा सकता है ।

6.6 शब्दावली

मुनिसुता	मुनिकन्या
प्रत्यादेशात्	परित्यक्त होने के कारण
मेदिनी	पृथ्वी
शाठयम्	धूर्तता
रह	एकान्त

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 -

1. ग
2. घ
3. ख
4. क

अभ्यास प्रश्न 2-

1. नहीं
2. हाँ
3. नहीं
4. हाँ
5. हाँ

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - डा० उमेश चन्द्र पाण्डेय

प्रकाशक – प्राच्य भारती संस्थान गौतम नगर गोरखपुर संस्थान - 1998

2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

6.9 सहायक व उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - डा० उमेश चन्द्र पाण्डेयप्रकाशक – प्राच्य भारती संस्थान गौतम नगर गोरखपुर संस्थान - 1998

2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - तारिणीश झा प्रकाशक - प्रकाशन केन्द्र, रेलवे कासिंग सीतापुर रोड लखनऊ संस्थान - 1998

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् के पंचम अंक का सारांश लिखिये

2. पंचम अंक की प्रमुख सूक्तियों की व्याख्या लिखिये

द्वितीय खण्ड

अलंकार , चन्द्रालोक पंचम मयूख

इकाई . 7 अलंकारों का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 चन्द्रालोक: ग्रंथ परिचय

7.4 अलंकार: अर्थ एवं स्वरूप

7.4.1 काव्य में अलंकारों की उपादेयता

7.4.2 अलंकारों के भेद: शब्दालंकार एवं अर्थालंकार

7.4.2.1 शब्दालंकार

7.4.2.2 अर्थालंकार

7.5 अलंकारों का विकास क्रम

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.10 उपयोगी ग्रन्थ

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

संस्कृत के काव्य या नाट्य ग्रन्थों अथवा कक्षा में उनके निर्धारित अंशों को पढ़ते समय आपने ध्यान दिया होगा कि काव्य सामान्य कथन न होकर कुछ विशेष भंगिमा की उक्ति के रूप में होता है। काव्य को मनोरम, रमणीय, मोहक एवं प्रेषणीय बनाने के लिए उसमें अलंकारों का प्रयोग होता है। यह ठीक उसी तरह से है जैसे कोई सुन्दर स्त्री अपने रूप को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए सजे संवरे और आभूषण धारण करे ।

इस इकाई में हम अलंकारों का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे। अलंकारों के अर्थ, स्वरूप तथा भेदों के विवेचन से हमें यह जानकारी मिलेगी कि कैसे अलंकारों का समुचित प्रयोग काव्य के सौन्दर्य को बढ़ा देता है।

अलंकारों के विषय में संस्कृत वाड्.मय में आचार्य भरत से लेकर अप्पय दीक्षित तक तथा आधुनिक काल के काव्यशास्त्रियों ने सम्यक् विचार किया है। इस इकाई में हम मुख्यतः श्री जयदेव के ग्रंथ चन्द्रालोक का आश्रय ग्रहण करेंगे। अलंकारों का सामान्य परिचय प्राप्त कर लेने पर आगामी इकाइयों में वर्णित विभिन्न अलंकारों को समझने में आसानी हो जाएगी तथा साहित्य में अलंकारों का सन्निवेश एवं विकास किस प्रकार हुआ-इसको आप भली-भाँति समझ सकेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पाठ्य ग्रंथ चन्द्रालोक के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अलंकारों के अर्थ एवं स्वरूप को समझा सकेंगे।
- अलंकारों का काव्य में क्या महत्व है यह भली-भाँति बता पाएँगे ।
- साहित्य में अलंकारों के मुख्य भेदों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- अलंकारों के विकास क्रम को बता सकेंगे ।

7.3 चन्द्रालोक : सामान्य परिचय

अलंकारों के विषय में जो ज्ञान हम प्राप्त करेंगे उसके लिए पाठ्यक्रम में चन्द्रालोक नामक ग्रन्थ निर्धारित किया गया है। यह ग्रन्थ 10 मयूखों में विभाजित है किन्तु हमें केवल पंचम मयूख का ही अध्ययन करना है। इसमें विभिन्न अलंकारों का विवेचन किया गया है। चन्द्रालोक की रचना श्री जयदेव ने की है। इनका उपनाम 'पीयूषवर्ष' था। इन्होंने प्रसन्नराघव नामक नाटक की भी रचना की

है। विद्वानों ने इनका स्थितिकाल सामान्यतः 1200 ई. से 1250 ई. के मध्य स्वीकार किया है। चन्द्रालोक में काव्यशास्त्र के सभी पक्षों-काव्य परिभाषा, प्रयोजन, दोष, गुण, अलंकार, रस, ध्वनि, शब्दशक्ति आदि का विवेचन मिलता है। श्री जयदेव ने चन्द्रालोक में अलंकारों को काव्य के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। पंचम मयूख के अध्ययन से हमें अलंकारों के लम्बे-लम्बे लक्षण एवं उनके पृथक् उदाहरण याद करने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि वहां एक ही श्लोक में लक्षण एवं उदाहरण दोनों समाहित हैं। चन्द्रालोक में सब मिलाकर 96 अलंकारों का विवेचन है। 9 शब्दालंकार और 87 अर्थलंकार हैं।

अभ्यास प्रश्न - 1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें -

(1) चन्द्रालोक में कितने मयूख हैं ?

(2) श्री जयदेव ने कितने अलंकारों का विवेचन किया है ?

(3) अलंकारों का वर्णन चन्द्रालोक के किस मयूख में हैं ?

7.4 अलंकार: अर्थ एवं स्वरूप

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के द्वितीय अंक का यह श्लोक देखिए:

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै

रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं

न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।

इस श्लोक में राजा दुष्यन्त शकुन्तला के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि इस ऋषिकन्या का पवित्र सौन्दर्य बिना सूंघे गए निर्मल पुष्प की तरह, नाखूनों से नहीं काटे गए कोमल किसलय की तरह, विना बेधे गए रत्न की तरह, विना जूठा किए गए नवीन मधु की तरह तथा सत्कर्मों के अखण्ड फल की तरह है। ऐसे सौन्दर्य का भोग करने वाला कौन बनेगा- यह तो विधाता ही बता सकते हैं। इस वर्णन से शकुन्तला के अनिन्द्य सौन्दर्य की ऐसी तस्वीर हमारे सामने उभरती है कि मन मुग्ध हुए विना नहीं रहता। इस वर्णन में विशेष क्या है ? आप देखेंगे कि शकुन्तला के सौन्दर्य की तुलना विभिन्न कोमल, निर्मल, बहुमूल्य, मधुर एवं पुण्यप्रद वस्तुओं से की गई है। इस तुलना ने शकुन्तला के सहज सौन्दर्य को स्वाभाविकता से हमारे सामने उपस्थित कर दिया है। साहित्य का यही तत्त्व अलंकार है - जिसका प्रयोग शोभा और सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए किया जाता है। आप

जब आगे की इकाइयों का अध्ययन करेंगे तो जानेंगे कि इस श्लोक में उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग है ।

ऊपर के उदाहरण से आपने जाना कि अलंकार वह तत्त्व है जो किसी वस्तु या व्यक्ति की शोभा को हठात् बढ़ा दे। 'अलंकार' में दो शब्द हैं - 'अलम्' और कृ धातु से निष्पन्न 'कार'। 'अलम्' का अर्थ है - भूषण और 'कार' का अर्थ है करने वाला। इसलिए कहा जाता है- अलंकरोति इति अलंकारः'। अर्थात् अलंकृत करने वाला - काव्य को विभूषित करने वाला अथवा सौन्दर्य बढ़ाने वाला तत्त्व अलंकार है। आप सभी जानते हैं कि विभिन्न बहुमूल्य धातुओं एवं रत्नों से निर्मित आभूषण शरीर को सुशोभित करने के कारण अलंकार कहलाते हैं। ठीक इसी प्रकार काव्य को शब्द और अर्थ द्वारा अलंकृत करने वाली विधा अलंकार कहलाती है। इसलिए प्रसिद्ध काव्यशास्त्री आचार्य दण्डी काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं-

'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।' - काव्यादर्श 2/1

आचार्य भामह, दण्डी और उद्भट - ये तीन विद्वान् अलंकारवादी आचार्य माने जाते हैं। वे अलंकार को काव्य का सर्वस्व एवं अनिवार्य तत्त्व मानते थे। किन्तु आगे चलकर आचार्य मम्मट, आनन्दवर्धन, विश्वनाथ और जगन्नाथ प्रभृति विद्वानों ने अलंकारों को शब्दार्थ रूपी काव्य शरीर का अस्थिर धर्म माना। आप जब इनके गं्रथों का आगे चलकर अध्ययन करेंगे तो आपको पता चलेगा कि इन विद्वानों के अनुसार अलंकार काव्य की अतिशय शोभा बढ़ाकर रस का उपकार करते हैं किन्तु ये ही अलंकार यदि काव्य में स्वाभाविक रूप से न आकर आरोपित या बोझिल रूप में आते हैं तो शोभा बढ़ाने के बदले काव्यसौन्दर्य की हानि कर देते हैं।

इसलिए आचार्य मम्मट काव्य प्रकाश में कहते हैं-

'क्वचित्तु स्फुटालंकार विरहेऽपि न काव्यत्वहानिः'। (काव्यप्रकाश 1-4)

अर्थात् यदि काव्य में अलंकार स्पष्ट रूप से प्रकट न भी हो रहा हो तो काव्यत्व की हानि नहीं होती। आचार्य वामन काव्य-शोभा के विधायक धर्म के रूप में गुणों को स्थान देते हैं तथा अलंकार को गुणों को उत्कर्ष प्रदान करने वाला तत्त्व मानते हैं।

काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः।

तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः। (काव्यालंकार सूत्र)

हमें यह समझना होगा कि काव्य के लिए अलंकारों की सत्ता वाह्य है। जैसे तिलक, चन्दन, कुण्डल, हार इत्यादि शरीर के बाहर होते हुए शरीर की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार अलंकार वाह्य तत्त्व होते हुए भी काव्य रूपी शरीर की शोभा बढ़ाते हैं । अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि अलंकार उत्कृष्ट

काव्य में सर्वदा विद्यमान रहता है - कहीं स्फुट रूप में तो कहीं अस्फुट रूप में। साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ अलंकार को काव्य का शोभातिषय करने वाला अस्थिर धर्म कहा है।

शब्दार्थयोरस्थिराः ये धर्माः शोभातिशायिनः।

रसादीनुपकुर्वंतोऽलंकारास्तेऽङ्.गदादिवत्।। (सा.द. 10.1)

इस उक्ति पर यदि हम ध्यान दें तो अलंकार के स्वरूप के विषय में यह स्पष्ट होता है कि-

- अलंकार शब्दार्थरूपी काव्यशरीर के अस्थिर धर्म हैं।
- काव्य की शोभा को अतिशय बढ़ाते हैं।
- काव्य में निहित (आत्मभूत) रस के उपकारक होते हैं।

अभ्यास प्रश्न - 2

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

(क) अलंकार काव्य के .... धर्म हैं। (स्थिर/अस्थिर)

(ख) अलंकारों की सत्ता .... है। (वाह्य/आंतरिक)

(ग) .... अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व मानते हैं। (भामह/मम्मट)

(2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

(क) अलंकार में 'अलम्' का तात्पर्य क्या है?

(ख) अलंकार काव्य की शोभा पर क्या प्रभाव डालते हैं।

7.4.1 काव्य में अलंकारों की उपादेयता

अभी तक आपने यह जाना कि अलंकार काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने का सबसे प्रबल साधन है। अलंकार के स्वरूप पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि अलंकार काव्य में निहित सूक्ष्म तत्त्व (जिसे काव्य का विधायक आत्मतत्त्व माना जाता है) की शोभा बढ़ाते हैं न कि केवल काव्य के शब्दार्थ शरीर की। आप सभी जानते हैं कि आभूषण जीवित शरीर का ही सौन्दर्य बढ़ाते हैं-शव का नहीं। यदि सरस काव्य में अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है तो उसका चमत्कार और प्रभाव अधिक बढ़ जाता है। अलंकार भले ही काव्य के साध्य न होकर साधन मात्र हों पर इनका उपस्थित होना काव्य को सहृदय-संवेद्य तो बनाता ही है। सजीव, आकर्षक एवं चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक तत्त्व है अलंकार। इसलिए तो ये काव्य के भूषण हैं। अलंकारों के महत्व का प्रतिपादन करते हुए श्री जयदेव तो यहां तक कहते हैं कि जैसे अग्नि उष्णता से रहित नहीं हो सकता उसी प्रकार काव्य अलंकार से रहित हो ही नहीं सकता-

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ।। (चन्द्रालोक 1.8)

काव्य का रसास्वादन करते हुए आपको यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि कवि जब अपनी वाणी में, अपनी रचना में अलंकारों का सुसंगत प्रयोग करता है तो उसकी अभिव्यक्ति और अधिक प्रभावोत्पादक हो उठती है। 'चाँदनी रात थी' इस सामान्य कथन के बदले जब यह वर्णन आता है कि 'कौमुदी कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने' अर्थात् आकाश चाँदनी के बहाने मानो अमृत की धार बरसा रहा था तो क्या कुछ अलग अनुभव नहीं होता? अलंकृत शब्दावली में प्रकट भाव मन को हठात् आकृष्ट करते हैं। अलंकार मानवीय प्रवृत्तियों के विकास में सहायक होते हैं। क्योंकि वे शेष सृष्टि एवं प्रकृति के साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। वे वस्तुओं/व्यक्तियों के रूप, गुण और क्रियाओं का और अधिक तीव्रता से अनुभव कराने में हमारी सहायता करते हैं।

हाँ, इस क्रम में हमें इतना अवश्य ध्यान रखना है कि अलंकार सुन्दर को तो और अधिक सुन्दर बना सकते हैं पर असुन्दर को सुन्दर बनाने की सामर्थ्य उनमें नहीं होती। रसहीन काव्य में अलंकार प्राण नहीं डाल सकते। ठीक उसी प्रकार जैसे लावण्य संपन्न युवती के लिए तो आभूषण सौन्दर्यवर्धक होते हैं किन्तु मृत युवती के शरीर पर वही आभूषण अच्छे नहीं लगते। वस्तुतः अलंकार कवि की कीर्ति को स्थायी करने में तभी सहायक हो सकते हैं जब उनका प्रयोग स्वाभाविक, अनायास एवं सुसंगत हो। अलंकार कवि का अनुगमन करने वाले होने चाहिए न कि कवि अलंकारों का अनुगामी होना चाहिए। सभी अवस्थाओं में अलंकार भावों को तीव्रता प्रदान करने वाले होने चाहिए। भाव ही विलुप्त होने लगें तो अलंकारों का क्या प्रयोजन।

अभ्यास प्रश्न - 3

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

   (क) अलंकार काव्य के साध्य न होकर साधन मात्र हैं। (सही/गलत)

   (ख) अलंकार निर्जीव एवं रसहीन काव्य को भी सुंदर बना सकते हैं। (सही/गलत)

   (ग) काव्य को अलंकाररहित कहना वैसे ही है जैसे अग्नि को शीतल कहना। यह किसकी उक्ति है?

7.4.2 अलंकारों के भेद: शब्दालंकार एवं अर्थालंकार

ऊपर के वर्णन में आपने देखा कि अलंकार शब्द और अर्थ से समन्वित काव्य की शोभा को अभिवर्धित करने वाले हैं। यद्यपि शब्द और अर्थ को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता

तथापि दोनों पृथक् तत्त्व हैं। इसी आधार पर अलंकारों के दो भेद हो जाते हैं- शब्दालंकार एवं अर्थालंकार। वैसे एक तीसरी श्रेणी भी स्वीकार्य है जिसे उभयालंकार कहते हैं। इसमें शब्द एवं अर्थ दोनों का ही चमत्कार द्रष्टव्य होता है।

7.4.2.1 शब्दालंकार

शब्दालंकार शब्दों पर आश्रित होते हैं। शब्दालंकार में ध्वनि की महती भूमिका है। अलंकारों के इस विभाग को समझने के लिए हमें 'अन्वय' और 'व्यतिरेक' इन दो शब्दों को समझना पड़ेगा क्योंकि ये भेद अन्वय और व्यतिरेक पर ही आधारित हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि शब्द और अर्थ को पृथक् करना असंभव है। तो यह भेद कैसे समझें? जिसके रहने पर जो रहे वह अन्वय है (जैसे अगर धुँआ है तो आग है - यत्र धूमः, तत्र अग्निः) तथा जिसके न रहने पर जो न रहे वह व्यतिरेक है (जैसे आग के न रहने पर धुँए का न रहना- यत्र अग्निः नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति)। अब इसे अलंकारों के रूप में समझें। शब्द विशेष के रहने पर अलंकार विशेष का रहना अन्वय है जबकि किसी शब्द विशेष के अभाव में अलंकार विशेष का अभाव व्यतिरेक है। इस आधार पर जो अलंकार किसी विशेष शब्द की ही स्थिति में रहे और उसके स्थान पर कोई पर्यायवाची शब्द रख देने से उसका अस्तित्व न रहे वह शब्दालंकार है। इसे यूँ समझें कि शब्दालंकार में शब्दों का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यहाँ शब्दों को परिवर्तित करते ही अलंकारत्व समाप्त हो जाता है। ये अलंकार शब्द पर आश्रित होने से शाब्दिक चमत्कार की विशेष रूप से अभिवृद्धि करते हैं तथा काव्यार्थ को सुन्दर शैली में व्यक्त करने में सहायक हैं। साथ ही इनमें ध्वन्यात्मकता होने से ये सुनने में भी प्रिय एवं मधुर होते हैं। शब्दालंकार कुछ तो वर्णगत होते हैं, कुछ शब्दगत और कुछ वाक्यगत। अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोति आदि शब्दालंकार है। एक उदाहरण पर ध्यान दीजिए। चन्द्रालोक में अर्थानुप्रास का उदाहरण देते हुए यह पंक्ति कही गई है-'**चन्दनं खलु गोविन्द चरणद्वन्द्व वन्दनम्''।।** अर्थात् गोविन्द (भगवान श्रीकृष्ण) के चरण युगलों की वन्दना चन्दन के समान शान्ति प्रदान करने वाली है। यहाँ वन्दन और चन्दन क्रमशः उपमेय और उपमान हैं तथा दोनों में 'न' तथा 'द' वर्णों की आवृत्ति हुई है। इसलिए यहाँ अनुप्रास अलंकार है। अब यदि इस श्लोक में 'वन्दनम्' के बदले 'अर्चनम्' शब्द रख दिया जाए तो अनुप्रास अलंकार ही समाप्त हो जाएगा। इसलिए शब्द विशेष के अपरिवर्तनीय होने से यहाँ शब्दालंकार है ।

7.4.2.2 अर्थालंकार

शब्दालंकार के प्रकरण में आपने यह समझा कि उसमें शब्द बदलने से अलंकार नष्ट हो जाता है किन्तु अर्थालंकार में अलंकार शब्द पर आश्रित न होकर अर्थ पर निर्भर होता है। अर्थात् यदि शब्द विशेष के स्थान पर उसका पर्याय शब्द रख दिया जाए फिर भी अलंकार यथावत् रहे; उसमें कोई परिवर्तन न हो तो वहाँ अर्थालंकार होता है। यहाँ अलंकार शब्द निरपेक्ष होता है किन्तु अर्थ पर अवलंबित होता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अर्थालंकार की श्रेणी में आते हैं। श्री

जयदेव ने चन्द्रालोक में सन्देह अलंकार का उदाहरण देते हुए कहा है-'पंकजं वा सुधांशुर्वेत्यस्माकं न निर्णयः।' सुन्दर स्त्री के मुख को देखकर कोई सन्देह करता है कि 'यह कमल है' अथवा 'चन्द्रमा' इसका निर्णय करना कठिन हो रहा है। यहाँ अलंकार जन्य चमत्कार यह है कि सुन्दरी का मुख कमल एवं चन्द्रमा दोनों के सौन्दर्य एवं आह्लादकत्व को धारण कर रहा है। यहाँ पंकज के बदले 'जलज' और 'सुधांशु' के बदले 'सीतांशु' शब्द रख देने पर भी अलंकार का वैचित्र्य एवं चारुत्व यथावत् रहता है।एक ही अलंकृत कथन कवि के उक्तिवैचित्र्य या कहने के ढंग में परिवर्तन के आधार पर विभिन्न अलंकारों का रूप ले लेता है। मुख और चन्द्रमा की तुलना करनी है। इसके आधार पर अलंकारों के कितने भेद हो सकते हैं इसका उदाहरण देखें-

(चन्द्रमा के समान मुख है) चन्द्रमिव मुखम् उपमा अलंकार

(मुख के समान चन्द्रमा है) मुखमिव चन्द्रः प्रतीप अलंकार

(मुख ही चन्द्रमा है) मुखमेव चन्द्रः रूपक अलंकार

(मुख रूपी चन्द्रमा से ताप शान्त होता है) मुखचन्द्रेण तापः शाम्यते परिणाम अलंकार

(मुख है या चन्द्रमा) मुखं वा चन्द्रः वा सन्देह अलंकार

अभ्यास प्रश्न - 4

निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

(क) शब्दालंकार में .... अपरिवर्तनीय होते हैं।

(ख) अर्थालंकार में अलंकार .... पर आश्रित होता है।

(ग) उपमा .... है।

(घ) जिसके नहीं रहने पर जो न रहे वह .... है।

7.5 अलंकारों का विकास क्रम

अलंकारों की विकास यात्रा सुदीर्घ एवं रोचक है। सर्वाधिक प्राचीन गं्रथ ऋग्वेद का जब आप अवलोकन करेंगे तो पाएँगे कि ऋषियों ने उषःसूक्त आदि अनेक सूक्तों में अलंकृत शब्दावली का प्रयोग किया है। विशेषकर वहाँ उपमा का सुन्दर प्रयोग प्राप्त होता है। महर्षि बाल्मीकिकृत रामायण में सुन्दर उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ प्रयुक्त हुई हैं। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक इन चार अलंकारों को परिभाषित किया है। अग्निपुराण में महर्षि वेदव्यास ने 16 अलंकारों की

गणना की है। इसके बाद अलंकारों का विकास धीरे-धीरे होता रहा और उनकी संख्या बढ़ती रही। छठी शताब्दी में आचार्य भामह ने 39 अलंकारों का विवेचन किया है।

महाराज भोज तथा आचार्य मम्मट के समय तक अलंकारों की संख्या 103 तक जा पहुँची। 18 वीं शती में अप्पय दीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ तक आते-आते अलंकार दो सौ की संख्या छूने लगे थे। आगामी बॉक्स में विभिन्न ग्रंथों में दी गई अलंकारों की संख्या दी गई है जिनसे उनके विकास क्रम का पता चलता है। ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है-

'अनन्ता हि अलंकारा', (ध्वन्या 3.43)। कथन के प्रकार अनन्त हैं तो अलंकार भी अनन्त हो सकते हैं। बहुत सारे अलंकारों का अंतर्भाव अन्य प्रसिद्ध अलंकारों में हो जाता है। श्री जयदेव ने चन्द्रालोक में उपभेदों सहित 09 शब्दालंकार और 87 अर्थालंकार माने हैं। आगामी इकाइयों में इनमें से कुछ प्रसिद्ध अलंकारों का परिचय आपको मिलेगा। इनकी व्याख्या पढ़कर आपको न केवल उन अलंकारों का ज्ञान होगा वरन् आप शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का भेद भी सम्यक्रूपेण समझा पायँगे।

विभिन्न आचार्यो के अनुसार अलंकारों की संख्या -

	आचार्य	ग्रंथ	अलंकारों की संख्या
1.	भरतमुनि	नाट्यशास्त्र	4
2.	महर्षि वेदव्यास	अग्निपुराण	16
3.	आचार्य भामह	काव्यालंकार	39
4.	आचार्य दण्डी	काव्यादर्श	35
5.	आचार्य वामन	काव्यालंकारसूत्र	33
6.	आचार्य मम्मट	काव्यप्रकाश	67
7.	श्री जयदेव	चन्द्रालोक	96
8.	विश्वनाथ	साहित्य दर्पण	135
9.	पण्डितराज जगन्नाथ	रसगंगाधर	70

अभ्यास प्रश्न - 5

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें -

(क) भरतमुनि ने कितने अलंकारों की चर्चा की है ?

(ख) चन्द्रालोक में कितने शब्दालंकार स्वीकार किए गए हैं ?

(ग) 'चन्द्रमिव मुखम्' में कौनसा अलंकार है ?

7.6 सारांश

इस इकाई में आपने अलंकारों के अर्थ एवं स्वरूप के विषय में पढ़ा । साथ ही यह भी जाना कि काव्य में अलंकारों की उपयोगिता क्या है। आपने यह पढ़ा कि काव्य की शोभा बढ़ाकर उसे मनोरम एवं रमणीय बनाने का कार्य अलंकार उसी प्रकार करते हैं जैसे कोई रमणी स्वयं की सुंदरता निखारने के लिए आभूषण धारण करे । संक्षेप में इस इकाई को हम इन बिन्दुओं के माध्यम से स्मरण रखने का प्रयास करेंगे-

- अलंकार काव्य के शोभावर्द्धक तत्त्वों को कहते हैं।
- काव्य के लिए अलंकारों की सत्ता वाह्य है।
- अलंकार उत्कृष्ट काव्य में विद्यमान रहते हैं। कहीं तो वे प्रकट रूप में होते हैं और कहीं अस्फुट रूप में।
- भामह, दण्डी तथा उद्भट अलंकारों को काव्य का अनिवार्य तत्त्व मानते हैं।
- आचार्य मम्मट, आनन्दवर्धन, विश्वनाथ, आदि काव्यशास्त्रियों के अनुसार अलंकार काव्य के अस्थिर धर्म हैं।
- जब अलंकारों का प्रयोग काव्य में सहज एवं स्वाभाविक ढंग से हो तो वे सौन्दर्यवर्धक होते हैं किन्तु जब वे काव्य की भावधारा को खण्डित करने लगें तो फिर अर्थहीन हो जाते हैं।
- अलंकारों के दो भेद हैं- शब्दालंकार एवं अर्थालंकार। शब्द पर आश्रित अलंकार शब्दालंकार हैं जबकि अर्थ पर आश्रित अर्थालंकार। जो अलंकार शब्द बदलते ही समाप्त हो जाए वह शब्दालंकार की श्रेणी में आएगा किन्तु शब्द परिवर्तित करने पर भी अर्थबोध में कोई व्यवधान नहीं हो तो वहाँ अर्थालंकार होगा। अनुप्रास, यमक शब्दालंकार हैं तो उपमा, रूपक अर्थालंकार। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्रमें केवल चार अलंकार माने हैं किन्तु आगे चलकर अलंकारों की संख्या दो सौ तक पहुंच गई है। इनमें से बहुत सारे अलंकारों का अंतर्भाव प्रसिद्ध अलंकारों में हो जाता है।

7.7 शब्दावली

उपमेय- जिसकी किसी अन्य उत्कृष्ट गुण वाली वस्तु से तुलना की जाए वह उपमेय है। 'चन्द्रमिव मुखम्' (चन्द्रमा की तरह मुख) में मुख उपमेय वस्तु है जिसकी तुलना चन्द्र से की गई है। उपमेय को प्रस्तुत, प्रकृत या वर्ण्य वस्तु भी कहते हैं।

उपमान- वर्णनीय वस्तु या उपमेय की जिस उत्कृष्ट गुणसंपन्न वस्तु से समता स्थापित की जाए उसे उपमान कहते हैं। ऊपर के उदाहरण 'चन्द्रमिव मुखम्' में 'चन्द्र' उपमान है क्योंकि उसकी तुलना मुख से की गई है। चन्द्र गुणों (सौन्दर्य, आह्लादकत्व, प्रकाश) में मुख से उत्कृष्ट है। उपमान को अप्रस्तुत, अप्रकृत या अवर्ण्य भी कहते हैं।

काव्यशास्त्र- काव्यशास्त्र काव्य के अंग-उपांग की विभिन्न सिद्धांतों के रूप में विवेचना करता है। काव्य के अनुशीलन एवं रसास्वाद के लिए काव्यशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। काव्यशास्त्र को ही साहित्यशास्त्र भी कहते हैं। जयदेव कृत चन्द्रालोक काव्यशास्त्र का ग्रंथ है।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

(क) 10 मयूख

(ख) उपभेदों सहित 09 शब्दालंकारों एवं 87 अर्थालंकारों का।

(ग) पंचम मयूख में।

अभ्यास प्रश्न-2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) अस्थिर

(ख) वाह्य

(ग) भामह

2. (क) भूषण

(ख) काव्य की शोभा को बढ़ा देते हैं।

अभ्यास प्रश्न-3

(क) सही

(ख) गलत

(ग) श्री जयदेव की

अभ्यास प्रश्न-4

(क) शब्द

(ख) अर्थ

(ग) अर्थालंकार

(घ) व्यतिरेक

अभ्यास प्रश्न-5

(क) चार

(ख) 87

(ग) उपमा

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्रालोक: 'विमला' 'सुधा' व्याख्या सहित डा0 श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1997

2. चन्द्रालोक: सुबोधचन्द्र पन्त, मोतीलाल बनारसीदास, 1996

7.10 उपयोगी ग्रंथ

1. भारतीय साहित्यशास्त्र: आचार्य बलदेव उपाध्याय, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, चौक वाराणसी, 1963

2. भारतीय काव्यशास्त्र: डा0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985

3. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1: डा0 धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1985

4. साहित्य दर्पण: डा0 सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1982

5. काव्यप्रकाश: 'शशिकला' व्याख्या सहित, डा0 सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1987

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अलंकार की परिभाषा देते हुए साहित्य में उसकी उपादेयता प्रतिपादित करें।
2. अलंकारों के कितने भेद हैं। उदाहरण सहित उन भेदों की व्याख्या करें।
3. अलंकारों के विकास पर संक्षिप्त निबंध लिखें।

इकाई 8. अनुप्रास, श्लेष, यमक

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 अनुप्रास, श्लेष यमक

8.3.1 छेकानुप्रास

8.3.2 वृत्यनुप्रास

8.3.3 लाटानुप्रास

8.3.4 स्फुटानुप्रास

8.3.5 अर्थानुप्रास

8.4 श्लेष अलंकारःलक्षण एवं उदाहरण

8.4.1 खण्ड श्लेष

84.2 भड्.ग श्लेष

8.5 यमक अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

8.6 सारांश

8.7 शब्दावली

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8.10 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

ठससे पूर्व की इकाई में आपने अलंकारों की परिभाषा एंव उनकी उपयोगिता के विषय में यह जाना की वे काव्य की शोभा एवं सौन्दर्य को बढाकर उसे आकर्षक, मनोरम एवं पठनीय बना देते हैं। अलंकार के माध्यम से कवि काव्य रूपी शरीर को सुरूचिपूर्ण ढंग से सजाता है और उसे पाठक के समक्ष उसके मनोरंजन हेतु प्रस्तुत कर देता है।

अलंकारों के सामान्य परिचय के पश्चात् इकाई में आप अनुप्रास, श्लेष एवं यमक अलंकारों का ज्ञान प्राप्त करेंगं। ये तीनों ही शब्दालंकार के अंतर्गत आते है । पहले की इकाई में शब्दालंकार की परिभाषा पढते समय आपने ध्यान दिया होगा कि शब्दालंकार में शब्द की प्रधानता होती है। इन अलंकारों में विशेष शब्द को हटाते ही प्रकृत अलंकार भी समाप्त हो जाता है। अतः इन अलंकारों में शब्दगत ध्वनि का अतीव महत्व है ।

उपर्युक्त तीनों ही अलंकार काव्यशास्त्र के अत्यन्त प्रसिद्ध शब्दालंकारों में से हैं। इनके परिचय एवं अध्ययन से इनके द्वारा उत्पन्न होने वाले काव्यगत सौन्दर्य का रसास्वादन प्राप्त करने में सुगमता हो जाएगी।

इस अथवा आगे की इकाईयों में आप जिन अलंकारों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे उन सबकी परिभाषाएं अथवा उदाहरण आचार्य जयदेव कृत चनद्रालोक के पंचम ममूख से ही मुख्यतः ग्रहण किए गए हैं। विषय के सम्यक् अवबोध के लिए इतस्ततः अन्य विद्वानों के विचार भी उद्धत किए गए है ।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- अनुप्रास अलंकार की परिभाषा तथा उसके भेदों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- श्लेष अलंकार की परिभाषा, उसके भेद तथा काव्य में पड़ने वाले उसके चमत्कारी प्रभाव का अवलोकन कर सकेंगे।
- यमक अलंकार के स्वरूप, भेद तथा उसके काव्यगत प्रभाव का आकलन कर सकेगे ।
- इन तीनों अलंकारों के अध्ययन से आप शब्दालंकारों की महत्ता एवं काव्य में उनके प्रभाव का आकलन करने में स्वयं समर्थ हो सकेगे ।

8.3 अनुप्रास अलंकार - लक्षण एवं उदाहरण

अनुप्रास का अर्थ है एक समान वर्णो का बार-बार (अनु) उत्कृष्ट प्रभाव (प्र) उत्पन्न करते हुए आना (आस) । यहाँ काव्य सौन्दर्य की वृद्धि के लिए समान स्वरूप वाले वर्णो का रसाकूल सुगुम्कन होता है । काव्य प्रकाश में वर्णो के साम्य को अनुप्रास कहा गया है-'वर्णसाम्यमनुप्रासः'।

यह साम्य व्यनजनों का होता है। साहित्य दर्पण (10/3) में इसीलिए आचार्य विश्वनाथ ने स्वरों में वैषम्य होने पर भी व्यन्जन मात्र की समानता को अनुप्रास माना है- काव्य में पढते समय आप स्वयं अनुभव कर पाएंगे कि जब कविता में वर्णो की बार-बार आवृत्ति होती हैतो एक आह्लादक ध्वन्यात्मता पैदा हो जाती है ।

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् । साहित्य दर्पण ।

साहित्य दर्पण में ही दिए गए उदाहरण से इस अलंकार का आस्वाद आपको सुगमता से हो सकता है -

आदाय वकुलगन्धानन्धी कुर्वन् पदे पदे भ्रमरान् ।

अयमेति मन्दमन्दं कावेरीवारिचावनः पवनः।

यहाँ आप देखेंगे कि 'गन्धानन्धी में संयुक्त व्यन्जनों की कावेरीवारि' में असंयुक्त व्यन्जानों की तथा 'पावनः पवनः' में अन्य अनेक वर्णो की आवृत्ति हुई है। यह अनुप्रास का मनोरम उदाहरण है।

अब हम अनुप्रास के विभिन्न भेदों का अध्ययन करेंगे ।

8.3.1 छेकानुप्रास

स्वरव्यन्जनसंदोहव्यूहा मन्दोहदोहदा ।

गौर्जगज्जाग्रदुत्सेका छेकानुप्रासमासुरा ।।

अर्थात् स्वर और व्यन्जनों के समूह की जिसमें आवृत्ति की गई हो तथा जो वाणी के उत्कर्ष को अभिव्यक्त करने वाली हो ऐसी काव्यभिव्यक्ति छेकानुप्रास नामक शब्दालंकार से सुशोभित होती है। इस अलंकार में स्वरों अथवा अनेक व्यन्जनों अथवा दोनों की ही केवल एक बार पुनरावृत्ति होती है। 'छेक' शब्द का अर्थ है 'विदग्ध' अर्थात् काव्य के मर्म को समझने वाले रसिक विद्वान। विदग्धों को अत्यन्त प्रिय लगने के कारण इस अलंकार का नाम छेकानुप्रास है। जयदेव की अपर्युक्त परिभाषा पर ध्यान दीजिए । इस पद्य में 'स्वर व्यन्जनसन्' अंश में अकार स्वर की आवृत्ति है। 'दोहव्यूहा' में 'ह' व्यन्जन की आवृत्ति है। जबकि 'दोहदोहो' में 'द' तथा 'ह' व्यन्जनों की आवृत्ति है। अतः

छेकानुप्रास की परिभाषा बताने वाले इस पद्य में छेकानुप्रास अलंकार ही है।आपके लिए ध्यान देने योग्य है कि यह अलंकार तथा आगे आने वाला वृत्यनुप्रास दोनों ही वणगत अनुप्रास के अंतर्गत आते हैं।

8.3.2 वृत्यनुप्रास

आवृत्तवर्ण सम्पूर्ण वृत्यनुप्रासवद् वचः।

अमन्दानन्द सन्दोह स्वच्छन्दास्यदमन्दिरम् ।।

जहॉ एक वर्ण अथवा अनेक वर्णो की अनेक बार आवृत्ति होती है वहॉ वृत्यनुप्रास होता है चन्द्रालोककार के अनुसार वृत्यनुप्रास से संयुक्त कविता अत्यधिक आनन्द समूह की स्वतंत्र प्रतिष्ठा का मन्दिर होती है । वृत्यनुप्रास में दो शब्द है-वृत्ति तथा अनुप्रास। रसों के अनुरूप वर्ण रचना को वृत्ति कहा जाता है जिनके विषय में आप उच्च कक्षाओं में जानकारी प्राप्त करेंगे। मधुरा, प्रौढा, परूषा, ललिता और मद्रा इन पॉच वृत्तियों की चर्चा आचार्य जयदेव ने षठ मयूख में की है। इन वृत्तियों से समन्वित रसानुगुण वर्ण रचना जिस अनुप्रास में की गई हो उसे वृत्यनुप्रास कहते हैं ।

उदाहरण के रूप में उपर्युक्त पद्य को ग्रहण किया जा सकता है। यहॉ अमन्दानन्द सन्दोह स्वच्छन्दा स्पष्ट मन्दिरम्’ में ’न्’ तथा ’द’ व्यन्जन की अनेक बार आवृत्ति हुई है। यहॉ मधुरा वृत्ति है क्योंकि यहॉ द्र् का संयोग है। मधुरा वृत्ति यहाँ होती है जहाँ वर्गो के प्रथम चार वर्ण अपने वर्ग के पंचम अक्षर से युक्त होते है । आपको सन्देह हो सकता हैं कि वस्तुतः छेकानुप्रास एवं वृत्यनुप्रास तो समान ही प्रतीत हो रहे हैं। किन्तु जब आप सूक्ष्मता से अवलोकन करें।तो आपको दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाएगा । छेकानुप्रास में जहाँ अनेक वर्णो की एक ही बार आवृत्ति होती हैं वही वृत्यनुप्रास में एक या अनेक वर्णो की अनेक बार आवृत्ति होती है। यही अन्तर आपको व्यान में रखना है ।

8.3.3 लाटानुप्रास

लाटानुप्रास भू भिन्नाभिप्राया पुनरूक्ता।

यत्र स्यान्न पुनः शत्रों र्गर्जितं तज्जितं जितम् ।।

अर्थत् जहाँ एक पद की दो बार आवृत्ति हो किन्तु दोनों के अर्थ भिन्न हों वहाँ लाटानुप्रास अलंकार होता है । लाट प्राचीन गुजरात को कहते थे। वहाँ के लोगों को यह अलंकार अत्यन्त प्रिय लगता होगा इसलिए इसका यह नाम पड़ गया । इस अलंकार में भिन्न आशय वाली पुनरूक्ति होती है अर्थात् एक ही शब्द जब दो बार आए किन्तु अपने मूल अर्थ का परित्याग किए बिना दूसरे अर्थ की भी प्रतीतति कराए तब लाटानुप्रास होता है । उपर्युक्त पद्य को पढते समय आपके ध्यान में आएगा कि उसमें ’जितम् जितम्’ पद की आवृत्ति की गई है पर दोनों का अभिप्राय भिन्न है। प्रथम 'जितम्’

का अर्थ 'विजय प्राप्त करना' या जीतना है पर दूसरे 'जितम्' का तात्पर्य 'सफल विजय है अर्थात् दूसरा पद विशेष अर्थ को समेटे हुए है।

चूंकि लाटानुप्रास में सम्पूर्ण पद की पुनरावृत्ति होती है अतः इसे शब्दगत अनुप्रास कहेंगे।

यहाँ पुनरूक्त पदों में शब्द और अर्थ की अभिन्नता होते हुए भी तात्पर्य मात्र से दोनों में भेद हो जाता है जो 'जितम्' जितम्' से स्पष्ट है।

8.3.4 स्फुटानुप्रास

श्लोकस्यार्धं तदर्धं वा वर्णावृत्तिर्यदि ध्रुवा

तदा मता मतिमतां स्फुटानुप्रासता सताम्।।

यदि श्लोक के पूर्वार्द्ध अथवा श्लोक के उत्तरार्द्ध में वर्णो की आवृत्ति नियत हो तो विद्वानों के मतानुसार वहाँ स्फुटानुप्रास होता है। वर्णो की आवृत्ति दो तरह से होती है-एक तो आदि से अंत तक वर्णो की आवृत्ति अथवा दूसरी चरणों के अंत में समान वर्ण की आवृत्ति अथवा दूसरी चरणों के अंत में समान वर्ण की आवृत्ति।

प्रस्तुत श्लोक में आप देखेंगे कि उत्तरार्द्ध में आदि से अन्त तक 'तकार' और 'मकार की आवृत्ति है। दूसरी और पूर्वार्द्ध के प्रथम चरण के अंत में 'वा' है तो द्वितीय चरण के अंत में भी वा है।तृतीय चरण के अंत में 'ताम्' है तो चतुर्थ चरण के अंत में भी 'ताम्' है। अतः यहाँ स्फुटानुप्रास है।

8.3.5 अर्थानुप्रास

उपमेयोपमानादावर्थानुप्रास इष्यते।

चन्दनं खलु गोविन्द चरणद्वन्द्ववन्दनम्।।

अर्थानुप्रास वहाँ होता है जहाँ उपमेय और अपमान में वर्णसाम्य या वर्णो की आवृत्ति हो।उदाहरण के लिए प्रस्तुत श्लोक के उत्तरार्द्ध पर ध्यान दें जिसका अर्थ है- गोविन्द श्रीकृष्ण के चरणयुगल की वन्दना चन्दन के समान शान्ति प्रदान करने वाली है' यहाँ 'वन्दनम्' उपमेय है तथा 'चन्दनम्' उपमान है। इन उपमेय एवं उपमान सूचक पदों में 'न' तथा 'द' की पुनरावृत्ति है। अतः अर्थानुप्रास होगा। उपमेय वह होता है जिसके स्वरूप या गुणों को अभिव्यक्त करने के लिए किसी अन्य पदार्थ से उसकी उपमा दी जाती है जबकि उपमान वह होता है जिससे उपमेय की उपमा दी जाती है। इसलिए उपमेय वर्ण्य विषय, प्रस्तुत अथवा विशेष्य कहलाता है जबकि उपमान अवर्ण्य, विषयी अप्रस्तुत अथवा विशेषण कहलाता है इनके संदर्भ में आप 'उपमाऽलंकार के प्रकरण में विशेष रूप से जानकारी प्राप्त करेंगे। उपमान में वर्णो की आवृत्ति रूप साम्य हो तो अर्थानुप्रास होता है

।अर्थानुप्रास होने से यह अर्थालंकार है- ऐसा भ्रम नहीं होना चाहिए। पूर्व में ही आप यह पढ़ चुके है कि शब्दालंकार में शब्द प्रधान होता है तथा वहाँ शब्दों में परिवर्तन संभव नहीं है। उपर्युक्त उदाहरण में 'चन्दनम् वन्दनम्' के स्थान पर पर्याय शब्दों के रखते ही अलंकारत्व नष्ट हो जाएगा। अर्थालंकार होने पर शब्दों में परिवर्तन होने पर भी अर्थालंकार होने पर शब्दों में परिवर्तन होने पर भी अर्थामिव्यक्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता। अतः अर्थानुप्रास भी शब्दालंकार ही है।

अभ्यास प्रश्न-1

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

(क) छेकानुप्रास में 'छेक' का तात्पर्य...............है।(विदग्ध/जड़)

(ख) वृत्यनुप्रास......................अनुप्रास के अंतर्गत आता है। (वर्णगत/शब्दगत)

(ग) लाटानुप्रास में............की प्रावृत्ति होती है। (सम्पूर्ण पद/वर्ण)

(2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

(क) स्फटानुप्रास की परिभाषा लिखें।

(ख) अर्थानुप्रास कहॉ होता है।

(ग) उपमान किसे कहते है?

8.4 श्लेष अलंकार

'श्लेष' शब्द श्लिष् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर बनता है। श्लिष् का अर्थ है चिपकना। अतः जब दो भिन्न भिन्न अर्थ एक ही शब्द या वाक्यांश से चिपके रहते हैं तो वहॉ श्लेष अलंकार होता है। श्लेश को शब्दालंकार के अतंर्गत रखा जाए या अर्थालंकार के अंतर्गत- इस सम्बन्ध में काव्यशास्त्रियों में मतभेद है। जयदेव इसे अर्थालंकार के अंतर्गत रखते हैं किन्तु भामह, रूद्रट, मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्य इसे शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनो के अंतर्गत मानते है। अर्थात् उनकी, दृष्टि में यह उमयालंकार है। अध्ययन करने पर आप जाएं कि श्लेश शब्दगत भी होता है और अर्थगत भी। शब्द श्लेष में यदि आप श्लिष्ट पद के स्थान पर कोई अन्य पर्याय शब्द रख देंगे तो अलंकार ही नष्ट हो जाएगा किन्तु अर्थश्लेष में पद को परिवर्तित कर देने पर भी अलंकारत्व बना रहता है। पूर्व की इकाई में आपने 'अन्वय व्यतिरेक' के सन्दर्भ में पढ़ा है। जब आप इस निष्कर्ष पर इस अलंकार को भी परखेंगे तो स्वयं ही जान पाएंगे कि यह दोनों कोटियों में परिगणित होगा।श्लेष का पृथक् उदाहरण न देते हुए आचार्य जयदेव ने इसके भेदों की परिभाषा के क्रम में उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किए है।

आगे उनके लक्षण एवं उदाहरण पढकर आप एवं अलंकार का चारूत्व देखेंगे।

8.4.1 खण्डश्लेष

खण्डश्लेषः पदानां चेदेकैकं पृथगर्थता।

उच्छलद्भूरिकीलालः शुशुभे वाहिनीपतिः।।

जब एक पद से दो अर्थ अभिव्यक्त हो रहे हो और वे भिन्न-भिन्न रूप से दो अर्थ अभिव्यक्त होरहे हों तब खण्डश्लेष होता है। उपर्युक्त श्लोक में ’उच्छलद् भमि कीलालः इस समस्त पद के कीलालरूप एक खण्ड से रूधिर (रक्त) और जल दन दो अर्थो की तथा ’वाहिनीपतिः के वाहिनीरूप एक खण्ड से सेना तथा नदी इन दो अर्थो की अभिव्यक्ति हो रही है। और तब सम्पूर्ण वाक्य के दो विशिष्ट अर्थ प्रकट हो जाते है- ‘उछलते हुए जलप्रवाह से समुन्द्र तथा रूधिर के प्रवाह से सेनापति सुशोभित हो रहे है।’’ यहॉ उक्त् श्लिष्ट पदों के कारण ही दो वाक्यार्थ अभिवयक्त् हो रहे हैं। प्रत्येक वाक्यार्थ के लिए उक्त श्लिष्ट पद भिन्न अर्थो में गृहीत हुए हैं। अतः यहॉ खण्डश्लेष होगा। इसके खण्डश्लेष इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें समासान्त पद के एक खण्ड का ग्रहण किया जाता है।

8.4.2 भड्गश्लेष

भड्गश्लेषः पदस्तोमस्यैव पृथगर्थता।

अजरामरता कस्य नायोध्येव पुरी प्रिया।।

जिस रचना में सम्पुर्णपद समूह ही प्रत्येक वाक्यार्थ के प्रति भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हो वहॉ भड्गश्लेष अलंकार होता है। उपर्युक्त उदाहरण को ध्यान से पढ़िए। ’अजरामरता’ को दो तरह से भड्ग करने पद दो अर्थ निकलते है। प्रथम अर्थ है-अजरता एवं अमरता अयोध्या पुरी की तरह किसे प्रिय नहीं है (अजरामरता)। दूसरी तरह से भड्ग करने पर अर्थ होगा- अज और राम से युक्त(अजरामरता) अयोध्या किसे प्रिय नहीं है। यहॉ यह ध्यान देने योग्य है कि खण्डश्लेष का पद भड्ग (टूटकर) होकर दो अर्थो की अभिव्यक्ति करता है। अर्थात् खण्डश्लेष में सखण्ड पद में श्लेष होता है जबकि भड्गश्लेश में पद को भड्ग करने पर ही श्लेष प्रकट होता है। भड्गश्लेष को जतुकाष्ठन्याय से समझा जा सकता है। जैसे कष्ठ पर लाख लगे रहने पर दोनों के रूप में कोई भेद नहीं दीखता किन्तु दोनों को अलग भी किया जा सकता है।

‘अजरामरता ’ पद एक है किन्तु आवश्यकता पडने पर उसे अलग किया जा सकता है।

8.4.3 अर्थश्लेष

अर्थश्लेषोऽर्धमात्रस्य यद्यनेकार्थसंन्चयः।

कुटिलाः श्यामला दीर्धाः कटाक्ष कुन्तलाश्च ते ।।

अर्थत् जहॅा वाच्यार्थ का अनेक पदार्थो के साथ व्यक्त किया जा सके अर्थात् केवल एक अर्थ का अनेक अर्थों से सम्बन्ध हो वहॅा अर्थश्लेष नामक अलंकार होता है। उदाहरणार्थ (हे प्रिये !)तुम्हारे कटाक्ष और केश दोनों ही कुटिल काले और लम्बे है।

यहॅा कुटिलता रूप अर्थ कटाक्ष और केश रूपी दो पदार्थो से सम्बन्ध रखता है। इसलिए अर्थश्लेष है। यहॅा आपके लिए ध्यान देने योग्य बात यह है कि यदि कुटिल आदि पदों के लिए उनके पर्याय पदों का भी प्रयोग कर दिया जाए (जैसे वक्र, कृष्ण आदि) तो अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा । अर्थात् यह अलंकार शब्दमूलक न होकर अर्थमूलक है जबकि खण्डश्लेष एवं भड्.गश्लेष पूर्णतः शब्दों पर आश्रित हैं । उपर्युक्त अलंकार में केवल अर्थ ही अनेकार्थवाची बन कर दो भिन्न-भिन्न पदों सम्बन्द्ध हो गया है ।

अभ्यास प्रश्न - 2

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें

(क) श्लेष शब्द का क्या अर्थ है ?

(ख) अर्थश्लेष अर्थालंकार है या शब्दालंकार

(ग) खण्डश्लेष के उदाहरण में 'वाहिनी' शब्द के कौन-कौन से अर्थ हैं?

2. सत्य अथवा असत्य का चयन करें-

(क) श्लेष उभयालंकार है। (सत्य/असत्य)

(ख) भड्.गश्लेष में पदों को भड्.ग करने से अर्थ नहीं निकलता।(सत्य/असत्य)

(ग) 'अजरामरता' खण्ड श्लेष का उदाहरण है।(सत्य/असत्य)

8.5 यमक अलंकार

यमक अलंकार प्रसिद्ध शब्दालंकारों में परिगणित है। जहॅा अनेक वर्णो के समूह की आवृत्ति की जाती है वहॅा यमक अलंकार होता है ।

आवृत्तवर्णस्तवकं स्तवकन्दाड्.कुरं कवेः।

यमकं प्रथमा धुर्यमाधुर्यवचसो विदुः ।।

यमक में भिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति होती है। इसके पूर्व में आपने पढ़ा कि अनुप्रास में भी वर्णो की आवृत्ति होती है तो यमक से उसकी भिन्नता क्या है ? वस्तुतः अनुप्रास में वर्णो की आवृत्ति का स्थान नियत नहीं होता किन्तु यमक में वर्णावृत्ति नियत स्थान पर ही होती है।

उपर्युक्त लक्षण की प्रथम पंक्ति में 'स्तवक-स्तवक' तथा द्वितीय पंक्ति में 'माधुर्य-माधुर्य की आवृत्ति की गई है। वर्णसमूह की पुनरावृत्ति होने से यहॉ यमक अलंकार है। यमक अलंकार में कहीं सार्थक तो कहीं निरर्थक परस्पर भिन्नार्थक स्वर व्यंजन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति होती है। इसमें दोनों ही वर्णसमूह रूपी शब्दों या पदों की कहीं सार्थकता कहीं निरर्थकता तो कहीं एक माग की सार्थकता तो दूसरे भाग की निरर्थकता रहती है। यह आवश्यक है कि जिस क्रम में प्रथम शब्द के वर्ण समूह रखे गए हैं उसी क्रम से आवृत्त होने वाले शब्दों के भी वर्णसमूह होने चाहिए। यदि क्रम भिन्नता हुई तो वर्णसमूह का साम्य होते हुए भी यमक नहीं होगा।

उपर्युक्त श्लोक के स्तबक और स्तवक पदों में वर्णसाम्य है ('ब' और 'व' में भेद नहीं माना जाता)। प्रथम स्तबक तो सार्थक है किन्तु बाद वाला दो शब्दों का अंश होने से निरर्थक है। उसी तरह पहला माधुर्य शब्द निरर्थक है क्योंकि वह भी दो शब्दों का अंश है किन्तु दूसरा माधुर्य सार्थक हैं।यमक अलंकार वहॉ भी होता है जहॉ वर्णो में भेद के रहते हुए भी श्रवणकाल में उनकी ध्वनि समान प्रतीत होती है। र और ल, उ और ल, ब और व, श और ष, न और ण, विसर्गसहित और विसर्गरहित विन्दुसहित और बिन्दु रहित-ऐसे वर्ण स्वरूपतः भिन्न होते हुए भी यमक की दृष्टि से अभिन्न ही माने जाते हैं। यमक अलंकार तीन पादों में प्रयुक्त नहीं होता महाकवि माध के द्वारा शिशुपालवध महाकाव्य में विरचित यह प्रसिद्ध पद्य यमक का सुन्दर एवं मनोरम उदाहरण है-

नवपलाश पलाशवनं पुरः

स्फुट परागपरागत पड्कजम्।

मृदुलतान्त लतान्तमलोकयत्

स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।

यहॉ प्रथम पाद में दोनों पलाश पदों की सार्थकता है। द्वितीय पाद में प्रथम पराग सार्थक है जबकि दूसरा पराग पद परागत का भाग होने से निरर्थक है। तृतीय पाद में लतान्त में दूसरा सार्थक है जबकि पहला मृदुल-तान्त्र का भाग होने से निरर्थक है। चतुर्थ पाद में दोनों सुरभिं पद सार्थक हैं। काव्यसौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए कवियों ने यमक का प्रयोग प्रचुरतया किया है।

अभ्यास प्रश्न - 3

1- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें

(क) ' प्रथमा धुर्य माधुर्य वचसो विदुः- इस पंक्ति में कौन सा अलंकार है?

(ख) यमक अलंकार में किसकी आवृत्ति की जाती है?

(ग) अनुप्रास और यमक का अंतर एक पंक्ति में दें।

2. सत्य एवं असत्य पर चिन्ह लगाएं -

(क) यमक में भिन्नार्थन शब्दों की आवृत्ति होती है।(सत्य/असत्य)

(ख) यमक अलंकार में वर्णसमूहों का क्रम नियत नहीं होता। (सत्य/असत्य)

(ग) यमक अलंकार में आवृत्त वर्णसमूह सर्वदा सार्थक होते हैं (सत्य/असत्य)

8.6 सारांश

इस इकाई में आपने अनुप्रास, श्लेष एवं यमक अलंकारों के विषय में माना। उनके लंक्षण, उदाहरण एवं भेद-प्रभेदो के अध्ययन से काव्य में इनकी भूमिका स्पष्ट हो जाती है। इस इकाई के निम्न विन्दुओं के स्मरण रखने से उपर्युक्त अलंकारों का ज्ञान सुगमता से हो सकता है- अनुप्रास में व्यन्जन वर्णो की आवृत्ति होती है।अनुप्रास वणगत भी होता है और शब्दगत भी। छेकानुप्रास में स्वर व्यन्जन वर्णो की केवल एकबार पुनरावृत्ति होती है।'छेक' शब्द का तात्पर्य है-विदग्ध वृत्यनुप्रास में एक वर्ण या वर्णसमूहों की अनेक बार आवृत्ति होती है। मधुरा, पौढ़ा, परूषा, ललिता और भद्रा इन वृत्तियों से समन्वित रसानुरूप वर्णरचना वृत्यनुप्रास कहलाती है । लाटानुप्रास में भिन्न अर्थ वाली पुनरावृत्ति होती है । एक ही शब्द दो बार आता है किन्तु अपने मूल अर्थ का परित्याग किए विना सर्वथा नवीन (विशेष) अर्थ की प्रतीत कराता है । स्फुटानुप्रास में वर्णो की आवृत्ति दो तरह से होती है- सम्पूर्ण पद्य मे आदि से अंत तक वर्णो की आवृत्ति अथवा चरणों के अंत में समान वर्ण की पुनरावृत्ति ।अर्थानुप्रास में उपमेय एवं उपमान में वर्णो का साम्य अथवा पुनरावृत्ति होती है । जहॉ एक ही शब्द या वाक्यांश से दो या अधिक भिन्न अर्थ चिपके रहते है। वहॉ श्लेष अलंकार होता है।खण्डश्लेष, भड्गश्लेष तथा भड्गश्लेष शब्दालंकार के अंतर्गत आएगे जबदि अर्थश्लेष अर्थालड्कार के अंतर्गत खण्डश्लेष में एक पद से दो अर्थ प्रकट होते हैं तथा वे भिन्न-भिन्न रूप से दो वाक्यों में अन्वित होते है । भड्गश्लेष मे पद भड्ग होकर दो अर्थो को अभिव्यक्त करता है।अर्थश्लेष में एक अर्थ का अनेक अर्थो से सम्बन्ध होता है । यमक अलंकार में अनेक वर्णो के समूह भिन्न अर्थ का बोध कराते है। यमक में वर्णो की आवृत्ति नियत स्थान पर ही होती है। आवृत्त वर्ण समूह सार्थक या निरर्थक दोनों हो सकते है।

8.7 शब्दावली

छेक- छेक का अर्थ है 'विदग्ध' 'या 'चतुर'। विदग्धों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण ही 'छेकानुप्रास' या छेकापद्धति' आदि नाम पड़े है।

लाट- प्राचीन देशविशेष (गुजरात) को लाट प्रदेश कहते थे।

शब्दगत- जो अलंकार शब्दों पर आचिन्त होते हैं उन्हें 'शब्दगत' कहा जाता है। शब्दगत होने का अभिप्राय यह है कि शब्द के हटते ही अलड़्कार भी नष्ट हो जात है।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1. (क) विदग्ध

(ख) वर्णगत

(ग) सम्पूर्ण पद

2. (क) श्लोक के पूर्वार्ह अथवा उत्तरार्द्ध में वर्णो की आवृत्ति नियत हो जाने पर स्फुटानुप्रास होता है।

(ख) अर्थानुप्रास उपमेय एवं उपमान में होता है।

(ग) जिसके द्वारा किसी की विशेषता बताई जाए उसे उपमान कहते है।

अभ्यास प्रश्न-2

1. (क) श्लेष का अर्थ है 'चिपकना' अथवा मिलाना।

(ख) अर्थालड़्कार

(ग) सेना तथा नदी

2 (क) सत्य

(ख) असत्य

(ग) असत्य

अभ्यास प्रश्न-3

1. (क) यमक

(ख) वर्णासमूह की

(ग) अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति का स्थान नियत नहीं होता किन्तु यमक में वर्णावृत्ति नियत स्थान पर ही होती है।

2. (क) सत्य

(ख) असत्य

(ग) असत्य

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्रोकः विमला सुधा व्याख्या समन्वित, डॉ0 श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन 1997 वारणसी

2. चन्द्रालोकः श्री सुबोधचन्द्र पन्त मोती बनारसीदास, दिल्ली 1996

3. चनद्रालोक (पन्चम मयूख) डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा

8.10 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1. डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी 1985

2. भारती काव्यशास्त्रः डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1985

3. काव्यप्रकाशः शशिकला व्याख्या सहित, डॉ0 सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 1987

4. साहित्य दर्पण: डॉ0 सत्यव्रत सिंह , चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1982

5. काव्यदीपिकाः श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन 1990 वारासी

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. अनुप्रास अलंकार के विभिन्न भेदों की लक्षण एवं उदाहरण सहित व्याख्या करें।

2. श्लेष अलंकार के कितने भेद हैं? सभी भेदों की सोदाहरण व्याख्या करें।

3. यमक अलंकार की परिभाषा देते हुए उदाहरण सहित विश्लेषण करें।

इकाई. 9 अपह्नुति , व्यतिरेक , विभावना

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्धेश्य
9.3 अपह्नुति अलंकार
    9.3.1 पर्यस्तापह्नुति
    9.3.2 भ्रान्तापह्नुति
    9.3.3 छेकापह्नुति
9.4 व्यतिरेक अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
9.5 विभावना अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.10 अन्य उपयोगी ग्रंथ
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने शब्दा अलंकारों के विषय में पढा़ । अनुप्रास, यमक ओर श्लेष अलंकारों का अध्ययन करते समय आपने जाना कि वर्णों या वर्ण समूहों का आलंकारिक प्रयोग काव्य में कैसे चमत्कार उत्पन्न करता हें वर्ण विशेष या शब्दविशेष की पुनरावृत्ति तथा भिन्न-भिन्न अर्थावबोध उत्पन्न करने वाले शब्दों या पदों का प्रयोग ध्वन्यात्मकता उत्पन्न करता है जो काव्य सौन्दर्य में वृद्धि करता है ।

इस इकाई में हम अर्थालंकारों के अन्तर्गत आने वाले अपह्नुति, व्यतिरेक एवं विभावना का अध्ययन करेंगे। ये तीनों ही अर्थमूलक अलंकार है जिनका प्रयोग संस्कृत के कवियों ने काव्य की श्री वृद्धि के लिए प्रचुरता से किया है। चन्द्रालोक में अपह्नुति के कई भेदों की चर्चा की गई है जिनके विषय में इस इकाई में अध्ययन किया जाएगा ।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

1.अपह्नुति अलंकार के लक्षण एवं उदाहरण से परिचत हो सकेंगे।

2.अपह्नुति के विभिन्न भेदों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

3.व्यतिरेक अलंकार के लक्षण एवं उदाहरण द्वारा इस अलंकार के सौन्दर्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

4.विभावना अलंकार की परिभाषा एवं उदाहरणों से परिचत होस सकेंगे।

5.अर्थालकारों के उपयुक्त विवेचन से अलंकारों की अर्थमूलकता का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

9.3 अपह्नुति अलंकार

अपह्नुति का अर्थ है- छिपाना, अतः जिस काव्य में असत्य बात को स्थापित करने के लिए सत्य बातका निषेध किया जाए वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। यहाँ प्रस्तुत का निषेध कर अप्रस्तुत की प्रतिष्ठा की जाती हैं

अतथ्यमारोपथितुं तथ्यापास्ति अपह्नुति ।

नामं सुधांशुः किं तर्हि व्योमगङ्गा सरोरूहम् ।।

ऊपर के उदाहरण के हृदयंगम करने पर यह स्पष्ट होता है कि यहाँ का गोवन करके असत्य बात को स्थापित किया गया हे। श्लोक के उत्तरार्द्ध का अर्थ है- 'यह सुधांशु नहीं है। तो फिर कौन है ?' यहाँ आकाश गंगा में खिला हुआ कमल है।यहाँ सत्य वस्तु चन्द्रमा में असत्य वस्तु आकाश गंगा के कमल का आरोप करने के लिए चन्द्रमा का ही निषेध किया गया है। इसलिए यहाँ अपह्नुति अलंकार हुआ।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि अपह्नुति में सत्य वस्तु का निषेध कवि का कल्पना द्वारा होता है। अर्थात् यह कविप्रसूत है न कि वास्तविक अपह्नुति से मिलता जुलता अलंकारव्याजोक्ति' है। व्याजोक्ति में उपमेय का नाम लिए बिना उसे छिपाने के लिएउपमान का कथन किया जाता हैजबकि अपह्नुति में उपमेय का नामलेकर उसका निषेध किया जाता है।

9.3.1 पर्यस्तापह्नुति

पर्यस्तापह्नुति तिर्यग धर्मभागं निषेध्यते।

नामं सुधांशुः किं तार्हि सुधांशुः प्रेयसीमुखम्॥

जहाँ किसी वस्तु के धर्ममात्र का निषेध कर उस धर्म का आरोप किसी अन्य वस्तु पर कर दिया जाए वहाँ पर्यस्तापह्नुति नामक अलंकार होता है। यहाँ सम्पूर्ण वस्तु का निषेध न कर उस के धर्म (गुण) मात्र का निषेध होता है। श्लोक के उत्त राद्ध में इसका उदाहरण देते हुए कहते हैं-

''यह सुधांशु नहीं है। तो फिर सुधांशु (चन्द्रमा) है कौन? उत्तर में कहा कि प्रियतमा का मुख ही सुधांशु है।'' यहाँ वास्तविक चन्द्रमा में चन्द्रत्व (धर्म) का निषेधकर उसका प्रियतमा के मुख में आरोप किया गया है। जिस गुण के आधार पर किसी वस्तु के अस्तित्व का बोध जुड़ा हो वह उसका 'धर्म' है। धर्म जिसमें पया जाता है उसे धर्मी कहते है। मनुष्यत्व और मनुष्य क्रमशः धर्म एवं धर्मी है। उपर्युक्त उदाहरण में सुधांशु के सुधांशुत्व (चन्द्रत्व) का प्रत्यक्ष दृष्टिकोण होर रहे चन्द्रमा से निषेध कर उस सुधांशुत्व का अन्यव 'प्रियतमा मुख' में आरोप कर दिया गया है। पर्यस्त का अर्थ ही है- 'हटाकर विपरीत में आरोपित करना'। इसलिए पर्यस्तापह्नुति में धर्मी से उसके धर्म को हटाकर विपरीत उपमान में स्थापित कर दिया जाता है।

आचार्य मम्मट एवं पण्डितराज जगन्नाथ इसे अपह्नुति का भेद न मानकर रूपक ही मानते हैं।

9.3.2 भ्रान्तापह्नुति

भ्रान्तापह्नुति रत्यस्य शटया तथ्यनिर्णये।

शरीरं तव सोत्कम्पं ज्वरः किं न सरिव स्मरः।।

एक सत्य वस्तु पर किसी अन्य वस्तु के भ्रम की स्थिति उत्पन्न होने पर वास्तविक तथ्य का निर्णय ही भ्रान्तापह्नुति अलंकार कहलाता है।

जैसे नामिका का काँपता हुआ शरीर देखकर उसकी सखी उससे पूछती है कि क्या तुझे ज्वर है? नामिका उत्तर देती है कि नहीं नहीं! यह ज्वर नहीं अपितु काम है। (कामजन्य कम्पन है)

यहाँ कामज्वर रूप सत्यभूत पदार्थ में शीतज्वर रूप अपर पदार्थ का संशय करने पर कामज्वर रूपी वास्तविक वुस्तु का निर्णय किया गया है। ज्वर का संदेह दूर करने के लिए नामिका सखी से वस्तुस्थिति बता देती है। फलतः भ्रम का निवारण हो जाता है कि ज्वर जन्य कम्प नहीं है अपितु कामजन्य कम्प है।अपह्नुति में सत्य छिपाकर असत्य की स्थापनाकी जाती है किन्तु भ्रान्तापह्नुति में सत्य का उद्धाटन कर असत्य की शंका दूर की जाती है।

9.3.3 छेकापह्नुति

छेकापह्नुति रन्यस्य शक्त्या तथ्यनिह्नुवे।

प्रजल्पन् मत्पदे लग्नः कान्तः किं न हि नूपुरः।।

अपने रहस्य की बात किसी अन्य के समक्ष न हो जाए इस आशंका से जहाँ सत्य को छिपा लिया जाता है वहाँ छेकापह्नुति अलंकार होता है।

उपर्युक्त श्लोक की द्वितीय पंक्ति में कोई नामिका अपनी अन्तरंग सखी से कहती है कि रात में खुशामद की बातें करता हुआ वह मेरे चरणों पर गिर पड़ा। उसकी इस बात को किसी अन्य सखी ने सुन लिया। वह पूछने लगी कि क्या वह तुम्हारा पनि था जो चरणों पर गिरा। नायिका ने चतुरता से रहस्य छिपाते हुए उत्तर दिया कि नहीं नहीं वह तो नूपुर था। नूपुर पैरों में ही पहने जाते हैं और वे ‘प्रजल्पन’ (पति अर्थ में खुशामद करना, नूपुर अर्थ में ‘बजना’) भी करते हैं।

छेक का अर्थ है चतुर ! यहाँ चतुर नायिका ने बड़े कोशल से तथ्य का गोपन कर अतथ्य की स्थापना की है। अप्पय दीक्षित ने कुवलयानन्द में इसकी परिभाषा देते हुए कहा है-

‘कस्यचित् किंचित् प्रति रहस्योक्तौ अन्येन श्रुतायाम्

उक्तेस्तात्पर्यान्तरवर्णनेन तथ्यनुिवे छेकापह्नुतिः ।

अर्थात् किसी से कही गई किसी की गुप्त बात दूसरे के द्वारा सुन लिए जाने पर उसे दूसरे अर्थ में नियोजित करते हुए जहाँ सत्य का गोपन किया जाता है वहाँ छेकापह्नुति होती है जैसा

कि ऊपर के उदाहरण में आपने देखा कि नायिका ने प्रत्युत्पन्नमतित्व का परिचय देते हुए पति का सम्मान सुरक्षित रखने के लिए नूपुर की बात गढ़ ली।

9.34. कैतवापह्नुति

कैतवापह्नुति व्यक्ते व्याजाद्यैनिह्नुवे पदैः।

निर्यांति स्मरनाराचाः कान्त्रादृक्पातकैतवात्॥

जहाँ कैतव, छल, व्याज आदि पदों से यथार्थ वस्तु के निषेध की व्यंजना की जाती है वहाँ कैतवापह्नुति नामक अलंकार होता है। जैसे कामिनी के कटाक्ष के बहाने कामदेव अपने बाणों को बरसा रहा है। यहाँ 'कैतव' पद के द्वारा कान्ता के कटाक्षों का गोपन किया जाता है इसलिए कैतवापह्नुति है।

इस अलंकार में कैतव छल आदि पदों का प्रयोग आवश्यक है। यहाँ उपमेय कटाक्ष को कैतव पद से छिपाकर उपमान बाण को प्रकट किया गया है अर्थात् प्रस्तुत 'कान्तादृक्पात' का निषेध कर अप्रस्तुत 'स्मरनराचाः' की स्थापना की गई है।

अपह्नुति के सभी भेदों में किसी न किसी प्रकार प्रस्तुत का निषेध करते हुए अप्रस्तुत को स्थापित किया जाता है।

अप्रस्तुत की स्थापना रूपक में भी होती है किन्तु वहाँ प्रस्तुत का निषेध नहीं होता।

अपह्नुति में सादृश्य के साथ सादृश्येतर' सम्बनध भी स्वीकार्य हैं किन्तु प्रस्तुत का निषेध आवश्यक तत्व है।

अभ्यास प्रश्न - 1

1- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

क- सत्य वस्तु का निषेध कर असत्य का आरोप किस अलंटार में किया जाता है।

ख- अपह्नुति से साम्य रखने वाले अलंकार का नाम बताएं।

ग- भ्रम की स्थिति होने पर वास्तविक तथ्य का निर्णय किस अलंकार के अन्तर्गत किया जाता है।

2- रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

क- कैतव का अर्थ .... है (छल/निर्णय)

ख- प्रस्तुत का निषेध .... अलंकार में होता है। (अपह्नुति/ व्याजस्तुति)

ग- 'शरीरं तव सोत्कम्पं ज्वरः किं न सखि स्मरः।' इस उक्ति में .... अलंकार है। (भ्रान्तापह्नुति / पर्यस्तापह्नुति)

9.4 व्यतिरेक अलंकार

व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः।

शैला इवोन्नता सन्तः किन्तु प्रकृतिकोमलाः।

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में उत्कर्ष या न्यूवता प्रदिर्शित की जाए वहाँ व्यतिरेक नामक अलंकार होता है। यहाँ लोकप्रसिद्ध से कुछ विलक्षण बात कही जाती हैं उदाहरण के लिए उपर्युक्त श्लोक देंखें'-

सत्पुरूष पर्वत की तरह ऊँचे होते हैं किन्तु पर्वत की तरह कठोर न होकर कोमल स्वभाव से संपन्न होते है। यहाँ उपमान रूप पर्वत से उपमेय रूप सत्पुरूष की स्वाभाविक कोमलता अधिक बताई गई है । अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार हुआ । दोनों ऊँचे होने समान किन्तु सज्जन पर्वतों की अपेक्ष श्रेष्ठ हैं क्योंकि उनमें कठोरतारूप दुर्गुण के स्थान पर कोमलता रूप सद्गुण है । अतः उपमेय उपमान की अपेक्षा श्रेष्ठतर है।

किसी उपमेय की (जैसे मुख आदि) विशेषता बताने के लिए उपमान (जैसे चन्द्र आदि) से तुलना की जाती है। ऐसी स्थिति में उपमान हमेशा उपमेय की अपेक्षा उत्कृष्ठ होता है। व्यतिरेक में यही तथ्य उल्टा हो जाता है। ऊपर के उदाहरण मेंआपने देखा कि पर्वत (उपमान) की अपेक्षा सज्जन (उपमेय) श्रेष्ठ बताए गए हैं । व्यतिरेक में उपमानोपमेय की यही विलक्षणता है ।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार उपमा के जितने भेद हो सकते हैं वे सभी व्यतिरेक के सन्दर्भ में भी हो सकते हैं । कहीं कहीं उपमेय में उपमान की अपेक्षा न्यूवता भी बताई जाती है। 'काव्यालंकार' में इसका उदाहरण देते हुए कहा है -

क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयो भूयो विवर्धते सत्यम् ।

विरम प्रसीद सुन्दरि:! यौवन मनिवर्तियितं तु ।।

यहाँ उपमान चन्द्रमा की अपेक्षा उपमेय यौवन में न्यूवता बताई गई है। यद्यपि आचार्य मम्मह ने इसी श्लोक को उद्धत करते हुए इसका अर्थ कुछ पृथक् तरीके से किया है। उनके अनुसार यहाँ चन्द्रक्षय की अपेक्षा यौवनक्षय की अधिकता का ही वर्णन है। अतः यहाँ भी उपमेय ही विशिष्ट बताया गया है।

उपमेय में न्यनता को वे व्यतिरेक का लक्षण नहीं मानते। उपमेया धिक्य में ही व्यतिरेक अलंकार की सार्थकता होती है। व्यतिरेक में साधर्क्य होता है पर श्रेष्ठतास्थापित करने के लिए उपमेय मवैधर्म्य भी दिखाया जाता है। इसके विपरीत प्रतीप अलंकार में केवलसाधर्म्य होताहै । प्रतीप में उपमेय क समक्ष उपमान को व्यर्थ बताया जाता है जबकि व्यतिरेक में दोनोंमें अधिक भाव, न्यूनभाव या वैचित्र्य दिखाया जाता है।

अभयास प्रश्न - 2

1- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

क- उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष किस अलंकार में दिखाया जाता है।

ख- व्यतिरेक अलंकार का संस्कृत में एक उदाहरण दें।

ग- व्यतिरेक से मिलता जुलता अलंकार कौन सा है।

2- सत्य अथवा असत्य का निर्णय करें-

क- व्यतिरेक में उपमान का उत्कर्ष वर्णित होता है। (सत्य/ असत्य)

ख- व्यतिरेक अलंकार में साधर्म्य के साथ वैधर्म्य भी होता है। (सत्य/असत्य)

9.5 विभावना

विभावना विनाऽपि स्थात् करणं कार्यजन्म चेत्।
पश्य, लाक्षारसासिक्तं रक्तं त्वच्चरणद्ववयम्।।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि लोक में विना कारण के किसी कार्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं। किन्तु काव्य में असंभव कुछ भी नहीं। काव्य कवि कल्पना प्रसूत होने के कारण अद्भुत एवं चमत्कार पूर्ण होता है।जहाँ कारण के विना ही कार्य उत्पन्न हो जाए वहाँ विभावना नामक अलंकार होता है। ऊपर की पंक्तियों में नायक नायिका से कहता है कि देखो महावर के बिना ही तेरे दोनों चरण रक्तिम वर्ण के दीख रहे हैं। महावर लगाने से ही पैर लाल रंग की दीखते तें किन्तु यहाँ बिना उसके लगे ही पैरों का लाल होना बताया गया है। इसलिए महावर रूप कारण के बिना ही पैरों का लाल हो जाना रूप काने की उत्पत्ति होन से विभावना अलंकार है । विभावना का अर्थ है 'विभावयति' कारणान्तरं कल्पयतीति विभावना 'अर्थात् जहाँ प्रसिद्ध कारण के अतिरिक्त किसी अन्य विदग्धजन द्वारा कल्पित अप्रसिद्ध कारण की कल्पना की जाय। अथवा 'विरूद्धत्वेन **प्रसिद्धकारणाभावेऽपि**

कार्योत्पत्ति : यस्यां सा विभावना’ अर्थात् प्रसिद्ध कारण के अभाव में भी जहाँ कार्य की उत्पत्ति वर्णित हो वहाँ विभावना होती है।

आचार्य रूहट ने इस अलंकार को अतिशयोक्ति के अन्तर्गत रखा है। रूय्मक भी ऐसा ही मानते हैं। यह विरोमूलक अलंकार है जो पूर्णतः कवि की प्रतिभा एवं काव्यचातुर्य पर निर्भर है।विभावना से मिलते जुलते कई अलंकार हैं।असंगति, विशेयाक्ति, विरोध, विरोधाभास आदिइससे साम्य रखने वाले अलंकार है। असंगतिमें कारण तो प्रसिद्ध होता है किन्तु उसका कार्य अन्यत्र दीखता है। विशेषोक्ति में कारण के विरोध होते हुए भी केवल कारण कार्य भाव में विरोध होता है न कि किसी अन्य क्षेत्र में।

अभ्यास प्रश्न- 3

1- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

क- कारण के विना कार्य की उत्पत्ति किस अलंकार में सम्भव होती है।

ख- लाक्षारसासिक्तं रक्तं त्वच्चरणकयम्’ इन पंक्तियों में किसका अभाव है?

ग- कारण के होते हुए भी कार्य की अनुत्पत्ति किस अलंकार में होती है?

2- सत्य अथवा असत्य को चिह्नित करें‘-

क- विभावना में कार्य उत्पन्न नहीं होता। (सत्य/असत्य)

ख- आचार्य रूद्रट विभावना को अतिशयोक्ति के अन्तर्गत रखते हैं। (सत्य/असत्य)

9.6 सारांश

- प्रस्तुत का निषेध कर जहाँ अप्रस्तुत की प्रतिष्ठा की जाती है वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है।
- में सत्य वस्तु में असत्य वस्तु का आरोप किया जाता है। अर्थात् यहाँ उपमेय का निषेध कर दिया जाता है।
- सत्य वस्तु का यह गोपन कल्पनाजन्य एवं कविप्रसूत होता है।
- सम्पूर्ण वस्तु का निषेध न कर उसके धर्ममात्र का निषेध जहाँ किया जाए वहाँ पर्यस्तापह्नुति अलंकार होता है।
- यहाँ धर्मी से उसके धर्म को हटाकर विरीत उपमान में प्रतिष्ठित कर दिया जाता है।

- सत्यवस्तु पर असत्य के भ्रम की स्थित उत्पन्न होने पर वास्तविक तथ्य का निर्ण भ्रान्तापह्नुति कहलाता है। इसमें असत्य की शंका दूर करने के लिए सत्य का उद्घाटन किया जाता हैं
- अपने रहस्य की बात किसी अन्य को ज्ञान न हो जाए इस हेतु सत्य को चतुरता से छिपा लिया जाए वहाँ छेकापह्नुति होती है ।
- छेकापह्नुति में वास्तविक तथ्य को प्रत्युत्पन्नमति से अन्य अर्थ में प्रकट कर दिया जाता है।
- कैतव (छल), व्याज आदि वदों द्वारा यथार्थ वस्तु का निषेध कैतवापह्नुति अलंकार के अंतर्गत आता है ।
- जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में श्रेष्ठता प्रदर्शित हो वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।
- उपमेय में उपमान की अपेक्षा न्यूवता को भी व्यतिरेक के अन्तर्गत रखा जाता है किन्तु अधिकांश काव्यशास्त्री इससे सहमत नहीं है।
- जिस काव्य रचना में कारण के विना ही काने की उत्पत्ति प्रदर्शित की जाए वहाँ विभावना नामक अलंकार होता है।
- विभावना में लोक प्रसिद्ध कारण अनुपस्थित रहता है।

9.7 शब्दावली

- अपह्नुति - गोपित करना, छिपाना।

पर्यस्त- हटाना, अन्यत्र आरोपित।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास 1.

1. क . अपह्नुति अलंकार में ख. व्याजोक्ति ग. भ्रान्तापह्नुति

2. क. छल , ख. अपह्नुति ग. भ्रान्तापह्नुति

अभ्यास 2 .

1. क. व्यतिरेक अलंकार ,ख. शैलाइवोन्नता: सन्त: किन्तु प्रकृतिकोमला ग. प्रतीप

2. क. असत्य ख. सत्य

अभ्यास 3. 1. क. विभावना ख. विभावना 2. क . असत्य ख. सत्य

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्रोकः विमला सुधा व्याख्या समन्वित, डॉ0 श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन 1997 वारणसी

2. चन्द्रालोकः श्री सुबोधचन्द्र पन्त मोती बनारसीदास, दिल्ली 1996

3. चनद्रालोक (पन्चम मयूख) डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा

9.10 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1. डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी 1985

2. भारती काव्यशास्त्रः डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1985

3. काव्यप्रकाशः शशिकला व्याख्या सहित, डॉ0 सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 1987

4. साहित्य दर्पण: डॉ0 सत्यव्रत सिंह , चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1982

5. काव्यदीपिकाः श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन 1990 वारासी

तृतीय खण्ड

अलंकार एवं छन्द

इकाई 10: उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा विशेषोक्ति, (लक्षण,उदाहरण)

इकाई की रूपरेखा

10.1. प्रस्तावना
10.2. उद्देश्य
10.3. उपमा अलंकार
10.4. रूपक अलंकार
10.5. उत्प्रेक्षा अलंकार
10.6. विशेषोक्ति अलंकार
10.7. सारांश
10.8 पारिभाषिक शब्दावली
10.9. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10. सन्दर्भ ग्रंथ सूची
10.11. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.12. निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

अलंकारों के वर्णन में यह चौथी इकाई है , किन्तु नवीं इकाई में आपनें , श्लेष, यमक, अपहनुति, व्यतिरेक तथा विभावना आदि अलंकरों के लक्षणों उदाहरणों का विस्तृत अध्ययन प्राप्त किया है।

चन्द्रालोक पंचम मयूख में अलंकार वर्णन प्रतिपादित है। इसमें आठ प्रकार के शब्दालंकार और यदि उपभेदों को ग्रहण न किया जाय तो सतासी (87) अर्थालंकार निरूपित किए गए हैं। प्रायः सभी अलंकारों में उपमा के लिए उपमान एवं उपमेय अपरिहार्य होते हैं। अर्थालंकारों में इसका सर्वप्रथम स्थान है। उपमा के अन्यान्य भेदों द्वारा लक्षण ग्रंथों में निदर्शन प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप उपमा के वर्णन प्रयोग उसकी धर्मिता, विशेषता, तथा समीक्षात्मक ज्ञान को भी बताते हुए विभिन्न उपमाओं को समझा सकेंगे साथ ही रूपक, उत्प्रेक्षा विशेषोक्ति आदि अलंकारों की विशेषताओ का ज्ञान करा सकेंगे।

10.2. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के प्श्चात् आप उल्लेख कर सकेंगे कि-

1. उपमालंकार के अंग क्या-क्या है।

2. रूपकालंकार की विशेषताये कौन सी है।

3. उपमा एवं रूपक अलंकारों में मूलभूत अंतर क्या हैं।

4. उत्प्रेक्षालंकार रूपक तथा उपमा से किस प्रकार भिन्न है।

5. विशेषोक्ति अलंकार में उपमेय तथा उपमान का वर्णन किस प्रकार किया जाता है।

6. कार्य-कारण के भेद से अर्थालंकारों में उपमेय तथा उपमान को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है।

10.3. उपमा अलंकारः

संस्कृत लक्षणकारों ने अनेक अलंकारों की उपमा मूलक मानते हुए समान्यत: यह कहा है, कि अन्य अलंकारों में उपमा बीज रूप में कार्य करती है। उपमा अलंकार की प्रशस्ति में साहित्य जगत में कुछ उक्तियाँ अत्यंत रोचक रूप में प्रस्तुत की जाती है। चित्रमीमांसा में अप्पय दीक्षित ने कहा है कि उपमा एक नहीं है जो विचित्र भूमिकाएँ अपनाकर नाचती हुई काव्य के रंगमंच पर काव्यानुरागियों का मनोरंजन करती है -

उपमैका शैलूषी यम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।

रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।।

अपने अलंकारसर्वस्व में आचार्य रूय्यक उपमा की प्रशस्ति बताते हुए उसे सभी अलंकारों का शिरोमणि कहा है वह काव्य सम्पदा का सर्वस्व है यही नहीं बल्कि वह कविवंश की माता भी है। इस उक्ति को राजशेखर की उक्ति भी माना जाता है तथा यह उक्ति अलंकारशास्त्र में अत्यन्त प्रसिद्ध भी है -

अलङ्कारशिरोत्नं सर्वरत्नं काव्यसम्पदाम्।

उपमा कविवंशस्य मतैवेति मतिर्मम ।।

वसतुतः अलंकारो के प्रयोग में अर्थालंकारों के अन्तर्गत उपमेय-उपमान के प्रयोगों द्वारा ही मुख्यतः अलंकार निर्मित किए जाते है अन्य उपाङ्गो के वर्णन इनकी पूर्ति हेतु हुआ करते है। रूपक अलंकार के अन्तर्गत इन दोनों के आरोप सिद्ध किए जाते है। मुख्यतः उपमा के चार पूरक अंग माने जाते है। उपमान, उपमेय, साधारण धर्म, और उपमावाचक शब्द ये चारों जहाँ शब्द से प्रतिपादित हो वहाँ पूर्णोपमा कही जाती है और जहाँ इनमें से किसी एक की कमी रहे वहाँ लुप्तोपमा होती है। जैसे-

1. जिससे उपमा (समानता) बतायी जाय उसे उपमान कहते हैं। यथा चन्द्रमा के समान मुख है। यहाँ चन्द्र से मुख की समानता बताई जा रही है। अतः चनद्रमा उपमान है।

2. उपमा के योग्य पदार्थ को उपमेय कहते हैं। जैसे चन्द्र के समान मुख। यह मुख में चन्द्र की समानता बतायी जाती है। अतः मुख उपमेय है।

3. साधारण धर्म उसे कहते है, जो उपमान और उपमेय दोनो में एक रूप से रहता है। जैसे-चन्द्रमा के समान मुख मनोहर है। यहाँ मनोहरत्व धर्म उपमान चन्द्र उपमेय मुख इन दोनों में एक रूप से रहा है अतः यह साधारण धर्म है।

4. एक दूसरे के साथ समानता बताने वाले इस यथा, आदि शब्द उपमा वाचक कहे जाते है। यद्यपि चन्द्रालोक पञ्चम मय्ख में तथापि इसके वर्णन ही प्रसतुत इकाई का प्रमुख प्रतिपाद्य है, तथापि इसके सटीक एवं सविस्तार अध्ययन के लिए कतिपय प्रसिद्ध एवं मुख्य लक्षण कारों के अनुसार उपमा के वर्णन भी आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किए जायेगे। प्रथमतः चन्द्रालेक के अनुसार वर्णित उपमा इस प्रकार द्रष्टव्य है - लक्षणोदाहरण -

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मी रूल्ललसति द्वयोः।

हृदये खेलतोरूच्चैस्तन्वङ्गीस्तनयोरिव ।।

(चन्द्रालोक पञ्चम मयूख ।।11।।)

सरलता से उपर्युक्त लक्षण का अध्ययन करने क लिए इसका अन्वय करके भलीभाँति एक-एक तथ्यों को जानना आवश्यक है-

अन्वय- यत्र द्वयोः सादृश्यलक्ष्मीः हृरये खेलतोः उच्चैः तनवड़्गीस्तनयों इव उतलसति सा उपमा।

शब्दार्थ- यत्र- यास्मिन् अलंकारे (उपमेय और उपमान), सादृशस्यलक्ष्मीः सादृश्यशोभा (समानता की शोभा, सम्पदा) हृदये-वक्षः स्थले (वक्ष स्थल पर) खेलतोः क्रीडतोः छलकते हैं, उच्चेः- उच्चयोः उन्नततयोः (उभड़े हुए) तन्वड़्गीस्तनयोः- सुन्दरी कुचयोः (सुन्दरी नायिका के स्तन) इवः यथा (जैसे), उल्लसति- शोभते (सुशोभित होता है।) उपमा- उपमालंकारः (उपमा अलंकार)

व्याख्या-सुन्दरी नायिका के वक्षःस्थल पर खेलते हुए उंचे स्तनों की तरह जहाँ उपमान और उपमेय दोनो समानता (सादृश्यता) को शोभा से विकसित हों वहाँ उपमा अलड़्कार होता है।

तात्पर्यार्थ यह है कि सुन्दरी की छाती पर दोनों स्तन एक दूसरे के समान शोभित होते है। इसी तरह यहाँ उपमेय और उपमान एक दूसरे के समान शोभित होते हैं। उपमान उपयेय की अपेक्षा हमेशा श्रेष्ठ माना जाता है। तथा इसके प्रसिद्ध होनें की अनिवार्यता है। उपमालंकार के सटीक और नितान्त स्पष्ट विवेचन हेतु काव्य प्रकाशाकार के लक्षण यहाँ उल्लेख्य है-

' साधमर्यमुपमा भेदे समानधर्मता रूप सम्बंध कार्य-कारण आदि में नहीं अपितु उपमान और उपमेय में ही हो सकता है, और इसीलिए उ न्ही दोनों अर्थात् उपमान और उपमेय का ही जो समान धर्म से सम्बंध है उसे ही उपमान कहते है अर्थात् उपमा अलंकार वह है जिसे उपमान और उपमेय का, उनमे भेद होने पर भी परस्पर साधारण से सम्बद्ध होना **चाहिए।**

यथा - स्वप्नेऽपि समरेषु त्वां विजयश्रीर्न मुञ्चतिं

प्रभावप्रभवं कान्तं स्वाधनिपतिका यथा।। चन्द्रकोक पंचम मयूख

महाराज! विजयश्री आप सरीखे प्रभुत्वसम्पन्न महापुयष को संग्राम में स्वप्न में भी उसी प्रकार नहीं छोड़ना चाहती जिस प्रकार कोई स्वाधीनपतिका नायिका अपने परमानुरक्त प्रियतम को स्वपन में भी नहीं छोड़ना चाहति। इस उदाहरण में 'विजयश्री' उपमेय है और स्वाधनिपतिका उपमान है, 'न मुञ्चति' अर्थात् अपरित्याग साधर्म्य अथवा साधारण धर्म रूप है और 'यथा' वाचक शब्द है। उपमा के चारों अंग यहाँ उपस्थित है, अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

यद्यपि आचार्य मम्मट काव्यशास्त्रीय समस्त तत्वों के विवेचन हेतु समन्वयवादी आचार्य माने जाते है, फिर भी साहित्य दर्पण में जो विश्वनाथ ने उपमा का लक्षण किया है प्रसंगतः वह भी समीचीन है-

साम्यं वाच्यवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः

अर्थात् उपमा वह अलंकार है जिसमें उपमान और उपमेय का साम्य या सादृश्य रहता है और वह स्पष्टतः एक वाक्य में प्रतिपादित होता है। यहाँ पर वैद्यर्म्य की कोई चर्चा नहीं होती। वस्तुतः आपके अध्ययन का विषय चन्द्रलोक में वर्णित उपमा है किन्तु उपमा अलंकार के स्वरूप आदि को जानने व पहचानने के लिए यहाँ आचार्य मम्मट और विश्वनाथाचार्य द्वारा बताये गये उपमा के लक्षण का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

उपमा के अन्यान्य प्रकारों को बताते हुए चन्द्रालोककार ने सर्वप्रथम उपयेयोपमा को एक पृथक अलंकार के रूप में चित्रित किया है, किन्तु उपमा के तत्व इसमें भी पाये जाते हैं। जैसे-प्रथम वाक्य जब उपमान अथवा उपमेय द्वितीय वाक्य में क्रमशः उपमेय या उपमान बना दिया जाय तो उपमेयोपमा अलंकार होता है। उदाहरण के लिए-धर्मोऽर्थइव पूर्वश्रीः अर्थोधर्म इवत्वयि। अर्थात् यहाँ पर प्रथम वाक्य में उपमेय धर्म दूसरे वाक्य में उपमान बना दिया गया है, इसका अर्थ है, आपका धर्म अर्थ की तरह पूरा है और धर्म अर्थ की तरह पूर्ण है।

इसी प्रकार जयदेव ने प्रतीपोपमा के लिए उपमान को अप्रसिद्ध या कल्पित नहीं स्वीकार किया है, किन्तु वे मानते है कि जब उपमान रूपी किसी भी पदार्थ को उपमेय बना दिया जाय तो प्रतीपोपमा अलंकार होता है।

जैसे-इन्दुर्मुखमिवेत्यादौ स्यात्प्रतीपोपमा तदा।।

(चन्द्रालोक, पंचम मयूख।।14।।)

अर्थात् इस उदाहरण में मुख को उपमानत्व प्रदानकर दिया गया है तथा चन्द्रमा को उपमेत्व प्रदान किया गया है इसलिए यहाँ प्रतीपोपामा होती है।

जहाँ उपमान पद के साथ लीला आदि पद प्रयुक्त हो, वहाँ ललितोपमा अलंकार होता है।

जैसे-उपमाने तु लीलादिपदाढ्ये ललितोपमा।

त्वन्नेत्रयुगलं धत्ते लीलां नीलाम्बुजन्मनों।।

(चन्द्रालोक, पंचम मयुख।।15।।)

अर्थात्-कामिनी के दोनों नेत्र नीलकमल की शोभा धारण करते है। यहाँ उपमान पद नील कमल के साथ लीला पद का भी प्रयोग किया गया। है। इसका तात्पर्य है कि कामिनी के नेत्र लीला शोभा के समान सुन्दर है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि जिसकी शोभा (लीला) उपमेय धारण करता है वह उपमान होता है और उपमान लीला (लीला) उपमेय धारण करता हैं। वह उपमान होता है और उपमान लीला (शोभा) का उपमेय में आरोप होता है, जिससे लीला में उपमेय प्रतीत होता है।

स्तषकोपमा अलंकार में उपमान और उपमेय द्वन्द्व की समानता वर्णित होती है। यथा-भौंरा जैसे कमल का आश्रय लेता है, वैसे ही मैं भगवान् विष्णु के चरणों का आश्रय लेता हूँ। यहाँ अहं पद का उपमान भौरा है और चरण का उपमान कमल है।

जैसे- अनेकस्यार्थयुग्मस्य सादृश्यं स्तबकोपमा।

श्रितोडस्मि चरणों विष्णोर्भृड्गस्तामरसं यथा।।

(चन्द्रालो, पं चम, मयू ख ।।16।।)

ज्ब उपमान एवं उपमेय दोनों ही वर्ण्य हों तब सम्पूर्णोपमा लंकार होता हैं

जैसे- सयात्सम्पूर्णोपमा यत्र द्ववयोरपि विद्ययता।

पद्मानीव विनिद्राणि नेत्राण्यासन्नहर्मुखे।।

यथा-प्रातःकाल में कमलों के समान मनुष्यों के नेत्र भी निद्रारहित हो गये।

अभ्यास प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के एक शब्द में उत्तर दें।

क. उपमा अलंकार के कितने भेद है?

ख. उपमान और उपमेय द्वन्द की समानता किस अलंकार में होती है।

ग. उपमान उपमेय से श्रेष्ठ होता है।

10.4. रूपक अलंकार

चन्द्रालोक के 'पंचम मयूख में जयदेव ने रूपक अलंकार का लक्षण उदाहरण इस प्रकार किया है-

यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाप्युपरज्यते।

उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते।।

(चन्द्रालोक , पंचम, मयू ख ।।18।।)

जहाँ उपमान उपमेय में एकता प्रतीत हो, अर्थात् उपमान रूपी चित्र में उपमेय रूपी चित्र मिला हुआ रहे वहाँ रूपक अलंकार होता है। उपमान के द्वारा उपमेय को आत्मसात कर लिये जाने पर रूपक

अलंकार होता है। उदाहरणार्थ-उपमेय शब्द का उपमान भित्ति है और उपमेय मयीभित्ति है। इस तरह दोनों में भेद नहीं हैं। (भित्ति दीवार) ने उपमेय की सत्ता अपने मे समाहित कर लिया है। इसी तरह न ’चन्द्रमुख देखों’ में मुख उपमेय और चन्द्र उपमान हैं और इसका अर्भ होता है, मुखही चन्द्र हैं उसे देखों यहाँ चन्द्रमा (उपमान) द्वारा मुख (उपमेय) को समाहित कर लिया गया है।

रूप्यतीति रूपक, यह रूपक का व्यत्पत्ति अर्थ है, जिसका तात्पर्य उपमा और उपमेय में अभेद (भेद रहित) का आरोप कर उन्हें एक करने वाला रूपक होता है। कुवलयानन्द के व्याख्याकार आशाधर भट्ट ने रूपक शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि-**रूपवत् करोति रूप्यति वा रूपको लक्षणविशेषः सोऽस्मिन्नस्तीति रूपकमलंकारः ।।18।।**

अर्थात् जिस अलंकार द्वारा उपमेय और उपमा समानरूप् वाला बना दिया जाता है वह रूपक होता है । चन्द्रालोककार ने रूपक के तीन भेद किए है। रूपक के तीन भेद किए हैं। रूपक अलंकार के मूल लक्षण के पश्चात् आचार्य जयदेव ने इनके भेदों के वर्णन भी किए है । जिसमें प्रथम सोपाधिरूपक द्वितीय सादृश्यरूपक, तथा तृतीय आभास रूपकों के लक्षण उदाहरण सहित विवेचन भी किए हैं ।

सोपाधिरूपक- इसका लक्षण करते हुए आचार्य जयदेव ने कहा है-

समान धर्मयुक्साध्यारोपात्सोपाधियपकम् ।

उत्सिक्त-क्षितिभृतलक्ष्य-पक्षच्छेदपुरन्दरः ।। (चन्द्रालो, पंचम, मयुख ।।19।।)

अर्थाात्-जहाँ साधारण धर्म के सम्बध से प्रकृति आरोप सिद्ध हो वहाँ सोपाधि रूपक होता है। जैसे-यह राजा ऊँचे-ऊँचे पर्वत रूपी राजाओं के सहायकों के उच्छेदन में समर्थ है । अर्थात् जिस प्रकारइन्द्रपर्वतों के पक्ष काटने में समर्थ है वैसे ही यह राजा भी मदोन्मत्त शत्रुभूत राजाओं के सहायकों के उच्छेदन में समर्थ है ।

सादृश्यरूपक- सादृश्य रूपक का लक्षण है-

पृथवकथितसादृश्यं दृश्यं सादृश्यरूपकम्।

उल्लसत्पं चशाखस्ते राजते भुजभूरूहः।। (चन्द्रालो, पंचम, मयूख ।। 20 ।।)

अर्थात्- जिस अलंकार में उपमान तथा उपमेय दोनों का सादृश्य भिन्न-भिन्न पदों से कहा जाय वहाँ सादृश्ययपक होता है । जैसे - पाँच अँगुलिरूप् शाखाओं से युक्त आपका यह हाथ रूपी वृक्ष शोभा दे रहा है । वृक्ष और शाखा का सादृश्य अलग-अलग पदों से बतलाया गया है। अतः यहाँ सादृश्य रूपक है ।

आभास रूपक- आभास रूपक का लक्षण है-

स्यादङ्गयष्टिरित्येवंविधाभासरूपकम् ।

अङ्गयष्टिधनुर्वल्लीत्यादि रूपितरूपकम् ।। (चन्द्रालोक, पंचम, मयुख ।।21।।)

अर्थात् - यदि शरीर में छड़ी का आरोप किया जाय तो आभास रूपक होता है। यहाँ केवल शरीर की लम्बाई को देखकर उसमें लम्बायमान छड़ी का आरोप किया गया है। इसलिए यहाँ रूपक केवल आभास मात्र है ।

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में -

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः अर्थात् उपमेय और उपमान का जो अभेद-अभेदारोप अथवा काल्पनिक अभेद है उसे रूपक अलंकार कहा जाता है । ऐसा बताते हुए रूपक का लक्षण किया है तथा उन्होने इसके छः भेद बताये है।

10.5. उत्प्रेक्षा अलंकार

उत्प्रेक्षा अलंकार का लक्षणोदाहरण करते हुए जयदेव ने चन्द्रालोक में कहा है कि -

उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुति विना ।

त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैवैरायते शशी ।। (चन्द्रालोक ।।5/29।।)

अर्थात् बिना निषेध के ही जहाँ कारण, फल और वस्तु (स्वरूप) में अतिशय संदेह किया जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। जैसे-मुख की शोभा प्राप्त करने के लिए चन्द्रमा कमलों से शत्रृता कर रहा है-त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैवैरायते शशी।।

प्रस्तुत उदाहरण में मुख के शोभा की प्राप्ति के लिए चन्द्रमा द्वारा कमलों से वैर करना फल तथा स्वरूप में अतिशय संशय है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा है।

शब्दार्थ- यत्र -जहाँ पर, निह्नुतिं-निषेध बिना-रहित, हेत्वादि-कारण फल स्वरूप आदि, उन्नीयते-उत्कटैक-(कोटिक अत्यन्त संदेह) ,।

उपर्युक्त उत्प्रेक्षा वर्णन में कुछ विशेष बातें इसके निर्णय हेतु अथवा स्वभाव ज्ञान हेतु अध्येता के समक्ष उपस्थित होती है, जिनका उल्लेख प्रसंगतः अनिवार्य प्रतीत होता है। वृत्तिभाग के अवलोकन में उत्प्रेक्षा तीन प्रकार की बताई जाती है -

'सच हेतु फल स्वरूपभेदात् त्रिविधा । अत्र चन्द्रपद्मयो: विरोधः स्वाभाविकः न मुखकान्ति लिप्साहेतुकः तथापि तेद्धेतुकत्वेन संभावनात् हेतुत्प्रेक्षा, अनयोः विरोधेऽफलस्यापि

कान्तावदनकान्तिप्राप्तेः फलत्वेनोत्प्रेक्षणात् फलोत्प्रेक्षा, एवं वस्तुतो बैर कर्तर्यपि शशिनि पद्मसंकोचच्वनिमित्तेन वैरकर्तृतादात्म्योत्प्रेक्षणात् स्वरूपोत्प्रेक्षा।

अर्थात् - यहाँ चन्द्रमा और कमल का वैर स्वतः सिद्ध रहते हुए भी पद्मगत कान्तमुख की शोभा प्राप्ति हेतु चन्द्रमा के वैर (शत्रुता) का फल न रहते हुए भी उसे फल कहना फलोत्प्रेक्षा है। चन्द्रमा के उदित होने पर कमल अपने आप ही संकुचित हो जाते है, उसी से चन्द्रमा को वैर (शत्रुता) कर्ता रूप में प्रतिपादित है। इसलिए वस्तूत्प्रेखा भी है। यहाँ एक बात विशेष रूप से कहने योग्य है कि आचार्य दण्डी अपने ग्रंथ काव्यादर्श में उत्प्रेक्षा के व्यंजक शब्दों को बताया है जो इस प्रकार है-

मन्ये, शङ्क ध्रवं प्रायौ नूनमित्येवमादिभिः।

उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोऽतादृशः।। (काव्यादर्श ।।2/234।।)

अर्थात् - मन्ये शङ्क, ध्रुवं, प्रायः नूनम् और इव शब्द उत्प्रेक्षा के व्यंजक है। उक्त उदाहरण में नूनम् शब्द आने से अगूढा (वाच्या) उत्प्रेक्षा है, उसे हटा देने से गूढ़ा हो जायेगी। क्रिया से संयुक्त होने पर ही इव उत्प्रेक्षा वाचक होता है। अन्यथा यह उपमा वाची है उत्प्रेक्षा का अर्थ उन्नयन (ऊपर ले जाना) है, जिसका स्वाभाविक अर्थ सम्भावना है। आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में जो परिभाषा सम्भावना की दो वह अधिक स्पष्ट है। उनके अनुसार उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाने पर उत्प्रेक्षा होती है। और चन्द्रालोक कार के अनुसार हेतु, फल या स्वरूप की सम्भावना होने पर उत्प्रेक्षा होती है। ऊपर बताए गये उदाहरण में हेतु की सम्भावना की गई है।

फलोत्प्रेक्षा - ऊपर कहे गये उदाहरण से यह भाव लिया जा सकता है कि चन्द्रमा ने कमलों से कलह करके उनमें उपस्थित कान्तामुख कान्ति (चमक) छीन लिया है। अतः इस स्थिति में कान्ति प्राप्ति वैर का फल होगा और सम्भावना करने पर फलोत्प्रेक्षा हो जायेगी।

वस्तूत्प्रेक्षा - चनद्रमा के आते ही स्वाभाविक रूप् से कमल संकुचित (सिकुड़) हो जाता है। इस वस्तु (बात) के आधार पर चन्द्रमा और कमल का वैर दिखलाया गया है। अतः वस्तूत्प्रेक्षा का उदाहरण है। चन्द्रालोककार ने उपर्युक्त भेद के अतिरिक्त गूढ़ोत्प्रेक्षा का लक्षण उदाहरण दिया है-

इवादिकपदाभावे गूढ़ोत्प्रेक्षा प्रचक्षते।

त्वत्कीर्तिर्विभ्रमभ्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम्।। (चन्द्रालोक ।।5/29।।)

अर्थात् - जिस अलंकार में वाचक शब्दों, इव, मन्ये, शङ्के ध्रुवं, प्रायः और नूनं आदि पदो के रहनेपर भी हेतु, फल, स्वरूपगत संभावना और नूनं आदि पदो के रहने पर भी हेतु, फल स्वरूपगत संभावना की जाय वह गूढ़ोत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उदाहरणार्थ यहाँ देखा जा सकता है- **त्वत्कीर्तिर्विभ्रमभ्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम्।।** अर्थात् हे राजन! आपकी कीर्ति समसत भुवन में

भ्रमण करने से थककर (श्रान्त) स्वर्ग गंगा में स्नान करने के उद्देश्य से प्रविष्ट हुयी (प्रवेश किया) अर्थात् उापकी कीर्ति स्वर्ग लोक तक पहुंच गयी। स्पष्ट है, जैसे अत्यन्त भ्रमण से थका हुआ प्राणी अपनी थकावट को दूर करने के लिए नदी का आश्रय (शरण) लेता है वैसे ही समस्त लोकों के भ्रमण से थकी हुयी आपकी कीर्ति मानो अपनी थकावट दूर करने के लिए आकाश गंगा में प्रवेश किया। यहाँ गूढ़ोत्प्रेक्षा है । विश्वनाथ आचार्य का मत है -

'' उत्प्रेक्षा वह अलंकार है जिसे अप्रकृत (उपमान) के रूप में प्रकृत (उपमेय) की सम्भवना कहा करते हैं।'' (साहित्यदर्पण 10/40-41)भवेत्सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकश उत्प्रेक्षा का लक्षण करते हुए लिखा है -

संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् (काव्यप्रकाश 10 / 127)

अर्थात् उत्प्रेक्षा उस अलंकार को कहते हैं जिसमें प्रकृत (उपमेय) की उसके समान अप्रकृत (उपमान) के साथ तादात्म्य (परस्पर) सम्भावना की जाती है ।

जैसे- **लिम्पतीव तमोडङ्गानि वर्षतीवांजनं नभः।**

असत्पुरूषेवेव दृष्टि र्विफलतां गता ।।

अर्थात् -ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे अंधेरा अंग-अंग मे लेप लगा रहा हो, आकाश काजल बरसा रहा हो और आँखें दुष्ट सेवा की भांति व्यर्थ हो गयी हो ।

यहां पर उपमेय (अंधकार) के प्रसार की उपमान (लेपन, काजल, वर्षण) आदि के साथ एकरूपता की संभावना की गयी है।

अभ्यास प्रश्न -2

1. निम्नलिखित में से सही उत्तर चुनिए।

क. चन्द्रालोक में रूपक के भेद है-

क- तीन ख- चार ग- दो घ- पाँच

ख. जिस अलंकार में वाचक शब्द न रहने पर भी फल, हेतु, स्वरूप की सम्भावना की जाती है, वहाँ होता है ?

क हेतुत्प्रेक्षा ख- ; गूढ़ोत्प्रेक्षा ग- फलोत्प्रेक्षा घ- वस्तूत्प्रेक्षा

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिए

क. वस्तूत्प्रेक्षा किसे कहते है?

ख. आशाघर भट्ट ने रूपक शब्द की व्युत्पत्ति किस प्रकार की है?

ग. आभास रूपक लक्षण बताइए।

घ. '**त्वत्कीर्तिर्विभ्रमभ्रान्ता विवेश स्वर्ग निम्नगाम्**' इसमें कौन सा अलंकार है? उसका लक्षण लिखिए।

3. निम्नलिखित वाकयों में सत्य-असत्य का निर्धारण करें।

क. जहाँ साधारण धर्म सम्बंध से प्रकृत आरोप सिद्ध हो वहाँ सोपाधि रूपक होता है।

ख. अपमान के द्वारा उपमये को आत्मसात किए जाने पर गूढ़ोत्प्रेक्षा होती है।

ग. मन्ये, शंके, ध्रुवं, प्रायः आदि उत्प्रेक्षा के व्यंजक शब्द हैं।

10.6. विशेषोक्ति अलंकार

सामान्यतः समस्त जगत् में बिना कारण के कभी कार्य नहीं होते दार्शनिकों , चिन्तकों आदि सबने कार्य-कारण सम्बंध परखा है तथा सांख्य दर्शन के अन्तर्गत इसकी विशद विवेचना भी की गयी है, आप भी जानते है कि, लोक व्यवहार में भी कार्य और कारण की प्रधानता व्यवस्थित है। किन्तु हमारे साहित्यिकों ने एक तरफ जहाँ पर किसी भी कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति का होना असम्भव है उसे भी अपनी प्रतिभा के द्वारा विना कारण के कार्य की उत्पत्ति होना बताया है, और अनेक कारणों के होते हुए भी किसी कार्य का न होना बताया तथा दोनों स्थितियाँ में विभावना और विशेषोक्ति अलंकार की सृष्टि की है। आचार्य जयदेव भी इस संकल्पना से अछूते नहीं हैं, विशेषोक्ति अलंकार का लक्षण और उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

लक्षण- विशेषोक्तिरनुत्पत्ति कार्यस्य सति कारणे।

नमनतमापि धीमन्तं न लंघयति कश्चन।। (चन्द्रालोक ।।5/78।।)

अर्थात-जहाँ पर कारण के विद्यमान रहते हुए भी कार्य उत्पन्न ने हो वहाँ पर विशेषोक्ति नामक अलंकार होता है। उदाहरण के लिए-" **नमन्तमपि धीमन्तं च लंघयति कश्चन''अर्थात्** बुद्धिमान के झुक जाने पर भी उन्हे कोई लाँघ नही सकता। प्रस्तुत उदाहरण में झुकना कारण रूप् में विद्यमान है, फिर भी उल्लंघन (लाँघना) आदि कारण उत्पन्न नहीं हो रहा है।यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि सामान्य व्यवहार में सबको ज्ञात है कि कारण रहेंगे तो कार्य उत्पन्न होगा ही किन्तु कारणों के उपस्थित रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति का ख्यापन (प्रकटीकरण) न करना हो विशेषोक्ति अलंकार

का स्वभाव है। विद्वान निश्चित रूप से बड़ा होता है, उसके झूकने का तात्पर्य उसकी नम्रता से है तो बुद्धिमत्ता और विनम्रता दोनों की ऊँचाइयों का पार करना किसी के लिए भी असम्भव है। इसीलिए यहाँ पर लंघित (लाँघने) होने के सभी कारण हैं किन्तु कोई कार्य नहीं होने से विशेषोक्ति है।

शब्दार्थ - कारणे - निमित्त या हेतु सति-विघमानता कार्यस्य- कार्य के, अनुत्पत्तिः- उद्भव का अभाव, विशेषोक्ति- विशेष अर्थात् कि अनुत्पत्ति की उक्ति को विशेषोक्ति कहते हैं। उक्तिः-कथन, नमन्तं- नत मस्तक, न लंघयति- नहीं लाँघ सकता।

संस्कृत लक्षणकारों ने अपने लक्षण ग्रंथों में अलंकार वर्णन करते हुए कहीं भी इन तथ्यों को नकारा नहीं है। यदि विशेषोक्ति अलंकार को और विस्तार से समझना हो तो उदाहरण स्वरूप् कतिपय प्रसिद्ध आचार्यों के लक्षणों का अध्ययन किया जा सकता है -

इसी सन्दर्भ में आचार्य मम्मट ने विशेषोक्ति का लक्षण अर्थात्-कारणों के होने पर जहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है।

जैसे - **निद्रानिवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारपदं पराप्ते।**

श्लथीकुताश्लेषरसे भुजड़ेग चचाल नालिड्गनतोड्गना सा।।

इस उदाहरण में यह बताया गया कि-नायिका नींद के टूटने पर भी, भगवान् सूर्य के उदित होने पर भी, सखियाँ के शयन-कक्ष के द्वार पर भी, और आलिड्गन के आनंद में अपने प्रेमी के ढ़ीले पड़ जाने पर भी, वह आलिड्गन करना नहीं छोड पायी। अर्थात् यहाँ आलिड्गन परितयाग के सभी कारण नींद टुटना, सूर्योदय, सखियों का शयन-कक्ष के बाहर उपस्थित होने पर कार्य रूप नायिका आलिड्गन से अलग नही हो सकी। अतः यहां विशोषोक्ति अलंकार है। इन्होने विशेषोक्ति के तीन प्रकार भी बताये है- ; अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति ; उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति ; अचिन्त्यनिमित्ता विशेषोक्ति।

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने भी विशेषोक्ति का लक्षण और उदाहरण करते हुए कहा है कि- **सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा। (साहित्यदर्पण, 10 परिच्छेद, 35)**

अर्थात जहाँ कारण रूप सारे तथ्य विद्यमान हो फिर भी कार्य की उत्पत्ति न हो वहाँ में विशेषोक्ति अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है-(प) उक्त निमित्ता विशेषोक्ति (पप) अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति।

अन्तर-लक्षण और उदहरण के क्रम में व्याख्यात्मक रूप से उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, और विशेषोक्ति अलंकारों के उध्ययन से आपने उनके स्वभावों को अवश्यक जान लिया होगा, किन्तु समस्त अलंकार एक जैसे नहीं होते यद्पि अर्थालंकार में उपमेय एवं उपमानों के ही वर्णन दिए जाते है किन्तु

इनकी प्रयोग धर्मिता से तथ्य परिवर्तित होकर विभिन्न अलंकारों का स्वरूप धारण कर लेते हैं। अब आप इन अलंकारों में मूलभूत अन्तर क्या होते हैं इसका अध्ययन करेंगे।

उपमा एवं रूपक -उपमेय तथा उपमान रूपक में भी होते और उपमा में भी किन्तु उपमा अलंकार में उपमेय तथा उपमान दोनों में सादृश्य अथवा साधर्म्य वर्णित होता है। जिसके साधारण धर्म और वाचक शब्द होते हैं इसकी उपेक्षा रूपक अलंकार में उपमेय का उपमान ढ़क लेता है अर्थात् उपमान के द्वारा उपमेय को आत्मसात् कर लिया जाता है। उपमा में उपमेय तथा उपमान का भेद सहित वर्णन होता है किन्तु रूपक में यह वर्णन अभेद होता है। यद्यपि यह अभेद वास्तविक नहीं होता।

उपमा एवं उत्प्रेक्षा- उपमा और उत्प्रेक्षा दोनो का वाचक शब्द इवह ै। उपमा में समानता का अर्थ निकलता है, किन्तु उत्प्रेक्षा में मानों का अर्थ निकलता है। उपमा सादृश्यमूलक भेदाभेद प्रधान अलंकार है, तथा उत्प्रेक्षा सादृश्यमूलक में अध्यवसाय मूलक अभेद प्रधान अलंकार है। इनका स्वभागत अंतर निम्न प्रकार है-

1. उपमा का प्राण सादृश्य (समानता) है, उत्प्रेक्षा का प्राण सम्भावना है।

2. उत्प्रक्षा में मन्ये, शंके, प्रायों, नून इत्यादि का वाचक शब्द की रूप में प्रयोग होता है, किन्तु उपमा में इनका प्रयोग नहीं होता।

3. उपमा में इव का प्रयोग संज्ञा के साथ होता जबकि उत्प्रेक्षा में इव का प्रयोग क्रिया पद के साथ होता हैं

4. उपमामें उपमान लोक प्रसिद्ध होता है और उत्प्रेक्षा में उपमान कवि कल्पित होता है।

इसके बाद की इकाई में विभावना अलंकार का लक्षण एवं उदाहरण आपके अध्ययन हेतु प्रसतुत होगा वही आप विशेषोक्ति एवं विभावना के स्पष्ट अंतर का बोध कर सकेंगे।

अभ्यास प्रश्न-3

1.निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द में दो।

क. सभी कारण उपस्थित रहने पर कार्य की उत्पत्ति न होना अलंकार है

ख. आचार्य मम्मट ने विशेषोक्ति के कितने प्रकार माने हैं ?

ग. आर्चय जयदेव ने विशेषोक्ति का क्या लक्षण दिया है ?

घ. साहित्य दर्पण में विशेषोक्ति के कितने भेद है?

10.7. सारांश

उपमेय, उपमान, वाचक शब्द साधारण धर्म आदि से निर्मित होने वाले और उत्प्रेक्षा अलंकारों के साथ ही कार्य-कारण से संबंधित विशेषोक्ति अलंकार का अध्ययन इस इकाई के अन्तर्गत किया। प्रस्तुत इकाई में लक्षणकार जयदेव रचित चन्द्रालोक के आधार पर मूलरूप में इन 4 अलंकारों के व्याख्यात्मक वर्णन दिए गये हैं। उपमा वर्णन में जयदेव ने सादृश्य को ग्रहण किया है, और मम्मट ने साधर्म्य को। रूपक अलंकार में जिस प्रकार की उद्धावना चन्द्रालोककार की है, आर्चाय मम्मट भी लगभग उसी प्रकार मानते हैं। क्योंकि उपमान के द्वारा उपमेय को आत्मसात् कर लेने पर रूपक अलंकार के बनने की बात जयदेव ने की है, और उपमेय तथा उपमान के अभेद वर्णन में रूपक अलंकार मम्मट ने माना है। यही उपमेय और उपमान विशेषोक्ति मे कार्य-कारण कहे जाते हैं। जिनका अध्ययन आपने इस इकाई में किया है। विशेषोक्ति अलंकार की उद्धावना अन्य लक्षणकारों में लगभग एक समान दिखाई देती है। सम्भावना के अर्थ में प्रयुक्त उत्प्रेक्षा को जयदेव ने कारण कार्य तथा वस्तु में अतिशय संदेह के द्वारा प्रकट किया है।

10.8. पारिभाषिक शब्दावली

1. शैलूषी - नटी
2. चित्रभूमिकाभेदान - विचित्रभूमिकाओं को अपना कर
3. रन्जयति - मनोरंजन करती है।
4. समरेषु - युद्ध में
5. क्षितीश्वर - राजा
6. प्रतीप - विपरीत
7. यष्टि - छड़ी
8. श्रितोऽस्मि - आश्रय लेता हूँ

10.9. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1.

1. क 5 (पाँच)

ख- स्तबकोपमा

2. क-सत्य

ख-असत्य

ग-सत्य

अभ्यास प्रश्न -2

1. क - तीन

ख - गूढ़ोत्प्रेक्षा

2. क. वस्तूत्प्रेक्षा-चन्द्रमा के आते ही स्वाभाविक रूप से कमल संकुचित हो जाता है। इस वस्तु के आधार पर चन्द्रमा और कमल का वैर दिखलाया गया है। अतः यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा है।

ख. रूपवत् करोतिरूपयतिवारूपकोलक्षणाविशेषःसोऽस्मिन्नस्तीति रूपकमलड़्कारः।।18।।

अर्थात्, जिस अलंकार द्वारा उपमेय और उपमान समान रूप वाला बना दिया जाता है, वह रूपक होता है।

ग. आभास रूपक- यदि शरीर में छड़ी का आरोप किया जाय तो वहाँ आभास रूपक होता है। शरीर की लम्बाई देखकर उसमें लम्बायमान छड़ी का आरोप किया है अतः आभास रूपक है।

3. क. सत्य ख. सत्य ग. सत्य घ. गूढ़ोत्प्रेक्षा

अभ्यास प्रश्न - 3

1. क. विशेषोक्ति अलंकार।

ख. तीन।

ग. विशेषोक्तिरनुत्पत्ति कार्यस्य सति कारणे।

घ. दो।

10.10.सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्रालोक, जयदेव, व्याख्याकार डॉ0 श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, संस्करण 2010 ई0

10.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. काव्य प्रकाश, आचार्य मम्मट, व्याख्याकर डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी,

पुनर्मुदित संस्करण-2007 2. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ व्या ाख्याकार डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा, विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण- 2007

10.12. निबंधात्मक प्रश्न

1. उत्प्रेक्षा अलंकार की लक्षणोदाहरण सहित व्याख्या कीजिए तथा उसके भेदों को स्पष्ट कीजिए।

2. रूपक तथा उपमा के अन्तर को स्पष्ट करते हुए, इनकी व्याख्या कीजिए।

3. उपमा एवं उत्प्रेक्षा के व्यंजक शब्दों को बताते हुए दोनों के लक्षण - उदाहरण भी लिखिए।

4. विशेषोक्ति अलंकार का विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई 11:अतिशयोक्ति, निदर्शना, तुल्ययोगिता,अर्थापत्ति (लक्षण,उदाहरण- व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2. उद्देश्य
11.3. अतिशयोक्ति अलंकार
11.3.1. अक्रमातिशयोक्ति अलंकार
11.3.2. अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार
11.3.3. चपलातिशयोक्ति अलंकार
11.3.4. सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार
11.3.5. भेदकातिशयोक्ति एवम् रूपकातिशयोक्ति
11.4. निदर्शना अलंकार
11.5. तुल्ययोगिता अलंकार
11.6. अर्थापत्ति एवं काव्यलिंग अलंकार
11.7. सरांश
11.8 पारिभाषिक शब्दावली
11.9. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10. सन्दर्भ ग्रंथ सूची
11.11. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.12. निबन्धात्मक प्रश्न

11.1. प्रस्तावना

अलंकारों से सम्बंधित यह पाँचवीं इकाई है इसके पूर्व की इकाईयों में आपने शब्दालंकारों के पश्चात् कतिपय अर्थालंकारों का भी उध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में आप अतिशयोक्ति निदर्शना, तुल्ययोगिता और अर्थापत्ति अलंकारों का अध्ययन करेंगे।

प्रसिद्धि का उलंघन करने वाली उक्ति को अतिशयोक्ति कहा जाता है। निदर्शना अलंकार में वस्तु के असम्भव सम्बंध से उपमा की परिकल्पना होती है। इसी प्रकार प्रस्तुत और अप्रस्तुत के एक क्रियाओं की समानता में तुल्ययोगिता होती है। किन्तु एक पदार्थ के वर्णन करते समय जब दूसरे पदार्थ का अस्तित्व स्वतः सिद्ध हो जाय तो वहाँ पर अर्थापत्ति अलंकार होता है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप क्रिया गुण की समानता, उपमा की परिकल्पना, तथा कार्य-कारण के पौर्वापर्य आदि का उल्लेख कर सकेंगे।

11.2.उद्देश्य

इकाई में पृथक-पृथक स्वभाव वाले अलंकारों के व्याख्यात्मक वर्णन प्रस्तुत हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. अतिशयोक्ति अलंकार के विभिन्न स्वरूपों को बता सकेंगे।

2. वस्तुओं के असम्भव सम्बंध में कवि द्वारा कल्पित उपमा क्या होती है इसका उल्लेख कर सकेंगे।

3. अनेक उपमेय तथा अनेक उपमान में क्रियाओं की समानता को बता सकेंगे।

4. अलंकारों में किसी एक के वर्णन के पश्चात् अपने आप कोई दूसरा कैसे उपस्थित होता है इसका उल्लेख भी कर सकेंगे।

5. इस इकाई में वर्णित समस्त अलंकारों में अंतर स्थापित कर सकेंगे।

11.3 अतिशयोक्ति अलंकार

यहाँ पर चन्द्रलोक में वर्णित अतिशयोक्ति अलंकार के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन करने से पूर्व अतिशयोक्ति का अर्थ और तात्पर्य जान लेना आवश्यक है। " अतिशयिता-प्रसिद्धिमतिक्रान्ता चासौ उक्तिः चेति अतिशयोक्तिः'' इस व्युत्पत्ति परक अर्थ के अनुसार प्रसिद्धि का अतिक्रमण या उल्लंघन करने वाली उक्तियों को अतिशयोक्ति कहा करते है। प्रसिद्धि का अर्थ होता सीमित। यदि यहाँ कवि प्रसिद्धि माना जाय तो दोष हो जायेगा। किन्तु व्यापक अर्थ यह है कि केवल लोक या शास्त्र की उन

प्रसिद्धियों का उल्लंघन किया जा सकता है जो परम्परया कवियों द्वारा उल्लंघित होती चली आ रही है । ऐसी प्रसिद्धि है कि कारण-के पश्चात् ही कार्य होता है। किन्तु कहीं पर कार्य-कारण एक साथ दिखाए जाय तो आचार्य जयदेव ने उसी को अक्रमातिशयोक्ति माना है। इन्होंनं कुल छः प्रकार की अतिशयोक्तियों का वर्णन किया है, जिनके क्रमिक वर्णन प्रस्तुत है-

11.3.1 अक्रमातिशयोक्ति-

इसका लक्षण एवं उदाहरण करते हुए चन्द्रालोक में कहा गया है-

अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे।

आलिङ्न्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्चते।। (चन्द्रालोक ।।5.41।।)

अर्थ- जहाँ कार्य और कारण एक ही समय एक साथ उपस्थित हों वहाँ अक्रमातिशयोक्ति होता है। उदाहरण के लिए-

'**आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्चते।**' अर्थात् हे राजन । आपके बाण और शत्रु लोग एक ही समय में ज्या (प्रत्यन्चा और पृथ्वी) का आलिङ्गन कर लेते हैं । प्रस्तुत उदाहरण में प्रत्यन्चा पर बणों का चढ़ना और शत्रुओं का भूमि पर गिरना एक ही समय में हो रहा है। यहाँ पर शत्रु मरण कार्य और बाणों प्रत्यन्चा पर चढ़ना कारण है। इस लिए इनका एक समय में होना ही अक्रमातिशयोक्ति है।

शब्दार्थ-चेत्-यदि, कार्यकारणें युगपद्- कार्य और कारण का एक साथ होना, ते-आपके शराः -बाण, पराः-शत्रु ज्यां-पृथ्वी और प्रत्यन्चा, आलिङ्गन्ति-समाभ्रयण करते हैं ।

व्याख्या- उपर्युक्त अलंकार में यह उदाहृत है कि, वाण का धनुष की डोरी से स्पर्श करना कारण तथा शत्रुओं का भूमि पर गिरना कार्य हैं । इन दोनों को एक साथ दिखाना हाथ की स्फुर्ति औ चमत्कारिता का द्योतक है। अक्रमातिशयोक्ति में अक्रमण शब्द से यह संकेतित है कि यहाँ क्रम का अभाव होता है। क्रम के अभाव का अर्थ है कार्य और कारण में उलटफेर। जब उपमान उपमेय को आत्मसात् कर लिया जाता है, तब अतिशयोकित होती है ।

चन्द्रालोक में अतिशयोक्ति का सामान्य लक्षण नहीं दिया गया है । किन्तु अन्य लाक्षणिकों ने अतिशयोक्ति को स्पष्ट रूप से वर्णित किया है, जिनमें कुछ के विचार यहाँ द्रष्टव्य है - पण्डित राज जगन्नाथ ने अतिशय की परिभाषा विषयी (उपमान) के द्वारा विषय (उपमेय) का निगरण (निगल जाना) दी है, और अतिशय की उक्ति को अतिशयोक्ति माना है । दण्डी अतिशयोक्ति को अलंकारों में सबसे उत्तम मानते है। कवि वर्णन तभी चमत्कारिक होता है जब किसी न किसी रूप में उसमें अतिशयोक्ति का हटा दी जाय तो सामान्य भाषा और काव्य भाषा में कोई अन्तर न रह जाय । उपमा

की प्रशंसा इसलिए होती है कि वह अलंकारों के मूल में होती है, किन्तु इतना होने के बावजूद भी अतिशयोक्ति को काव्य का सर्वस्व माना गया है।

11.3.2. अत्यन्तातिशयोक्ति

चन्द्रलोक में इसका लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार है -

अत्यन्तातिशयोक्तिस्तत्पौर्वापर्यव्यतिक्रमे।

अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा ।। (चन्द्रालोक ।। 5 / 42 ।।)

अर्थ- जहाँ पर कारण के पूर्व ही कार्य का वर्णन कर दिया गया हो, वहाँ पर अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार होता है। इसका उदाहरण है-अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेग सा अर्थात् मानिनी नायिका का मान पहले ही चला गया बाद में उसके प्रिय ने उसे मनाया। यह सर्वत्र नियम है, कि पहले कारण होता है बाद में कार्य। और यह भी नियम है, कि पहले कार्य भी होता है, बाद में कारण, किन्तु प्रस्तुत उदाहरण में प्रिय के द्वारा विनय पूर्वक मानिनी को मनाना कारण है और उसके मान का मिट जाना कार्य है। इस तरह से कार्य से पूर्व कारण का वर्णन तो उचित है। यहाँ पर इसके विपरीत वर्णन किया गया है, अतः अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार है।

शब्दार्थ - पौर्वापर्य- पहले और बाद में कार्य-कारण व्यतिवमः-क्रम के विपरीत मानिन्या मानः- मानिनी (नायिका) का क्रोध, पश्चात् -बाद में प्रियोण-प्रियतम के द्वारा, अनुनीता-मनायी गयी।

व्याख्या - कारण सर्वदा कार्य के पूर्व होता है, किन्तु यदा-कदा शीघ्रता से जब कार्य का होना दिखाया जाता है, तो कारण को कार्य के बाद प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि यह असम्भव है, कि कारण कार्य के बाद हो, तथापि ऐसा होने पर अत्यन्ततिशयोकित अलंकार के द्वारा चमत्कारकारी अर्थ उपस्थित होता है । इस उदाहरण में अनुनय एवं मानभंग क्रमशः कारण एवं कार्य है, पहले अनुनय नहीं किया गया उसके पहले ही मान भंग हो गया। अगर यहाँ कारण बाद में न आता तो यही कारण-कार्य दोनों साथ-साथ आते है, किन्तु कोई क्रम नही होता, जबकि उत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार में क्रम रहता है, किनतु उलटा होता है।

11.3.3 चपलातिशयोक्ति

चन्द्रलोक में इसका लक्षण एवं उदाहरण निम्नवत् है-

चपलातिशयोक्तिस्तु कार्यो हेतुप्रसाक्तिजे।

यामीति प्रियपृष्टाया बलयोऽभवदूर्मिका ।। (चन्द्रालोका ।।5/43।।)

अर्थ जहाँ पर कारण के कथन मात्र से ही कार्य की उत्पत्ति हो वहाँ पर चपलातिशयोक्ति अलंकार

होता होता है।

उदाहरण-" यामीति प्रियपृष्टाया: वलयोऽभवदूर्मिका ।।

अर्थात् - पति के ' मैं जा रहा हूं ' कथन सुनने मात्र से ही नायिका की अँगूठी हाथ का कंगन बन गयी।

शब्दार्थ- यामि- (अहं गच्छामि), मै जा रहा हूँ

प्रिय पृष्टा- प्रिय के द्वारा कहे जाने पर या पूछे जाने पर , **उर्मिका**-अंगुलीयक (अँगूठी), वलय-कंगन (कणा) अभवत्-हो गया।

व्याख्या- प्रस्तुत उदाहरण में नायक के प्रवास-गमन का श्रवन मात्र हो से ही नायिका का दुर्बल होना और उसकी अँगूठी का कंगन की तरह हो जाना बताया गया है, ध्यान देने योग्य है, कि परदेश गमन कारण है, और इसके कथन मात्र से विरहावस्था की दुर्बलता उत्पन्न है, जो कार्य है। इसीलिए यहाँ चपलातिशयोक्ति बतायी गयी है। पढ़ा, सुना और अनुभव किया जाता है, कि कारण से कार्य होता है। कारण के संदर्भ मात्र से नहीं। किन्तु में कारण के संदर्भ मात्र से ही कार्य उत्पन्न हो जा रहा है। ऐसी विशेष स्थिति में ही चपलातिशयोक्ति होती है। उदाहरण के अन्तर्गत अँगूठी का कंगन बनना कार्य है, और इसका कारण प्रिय के प्रवास की है, कि भविष्य में विरह की सम्भावना मात्र से ही नायिका इतनी दुबली हो गयी कि उसकी उर्मिका बढ़ कर कंगन के आकार की हो गयी है। यहाँ पर कार्य की शीघ्रता के कथन मात्र से चमत्कारिक अर्थ निष्पन्न है, इसी- लिए चपलातिशयोक्ति है। इस अलंकार में कारण और कार्य का क्रम तो सही है, लेकिन कारण का प्रसंग आते ही कार्य अतिशीघ्र हो रहा है, यही तथ्य अन्य अतिशयोक्ति अलंकारों से पृथक है।

11.3.4. सम्बन्धातिशयोक्ति

सम्बन्धातिशयोक्तिः स्यात्तदभावेऽपि तद्वचः।

पश्य सौधाग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम ।। (चन्द्रालोका ।।5/44।।)

अर्थ- सम्बन्ध के अभाव में संबंध का कथन करना सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार होता है।

जैसे- पश्य सौधाग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम् ।। अर्थात्- कोई किसी से कहता है कि- देखो राज प्रासाद अट्टालिका के अग्रभाग में स्थित चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है। इस उदाहरण में अट्टालिका के अग्रभाग से चन्द्रमा का कोई सम्बन्ध न रहने पर भी उसके साथ चन्द्रमा का सम्बन्ध दिखाया गया है, अतः सम्बन्धातिशयोक्ति है।

शब्दार्थ- पश्य- देखो, विधुमण्डलं-चन्द्रमा मण्डल, सौघग्रे - महल के अग्रभाग में विभाति-

सुशोभित होता है।

व्याख्या- जहाँ सम्बन्ध का अवसर नहीं वहाँ सम्बन्ध कहना यद्यपि गलत है, किन्तु अर्थ की चमत्कारिता के लिए ऐसा वर्णन किया गया है। प्रस्तुत उदाहरण में चन्द्र बिम्ब का राजमहल से सम्पृक्त रहना दिखाया गया है। जबकि चन्द्रमा उससे बहुत ऊँचाइ पर है। राजप्रासाद की ऊँचाई को चमत्कार पूर्वक अधिक बताने के लिए चन्द्रमा का सम्बन्ध उसके अग्रभाग से जोड़ दिया गया है। जबकि ऐसा सम्बन्ध सम्भव नहीं है। कवि द्वारा चन्द्रमा का महल के साथ निकट सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताया गया है, इसीलिए यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

11.3.5. भेदकातिशयोक्ति एवं रूपकातिशयोक्ति

भेदकातिशयोक्तिष्चेदेकस्यैवान्यतोच्यते।

अहो अन्यैव लावण्यलीला बालाकुचमण्डले ।। (चन्द्रालोक ।। 5 / 45 ।।)

रूपकातिशयोक्तिष्चेद् रूप्यं रूपकमध्यगम्।

पश्य नीलोत्पलद्वन्दान्निः सरन्ति शिताः शराः।। (चन्द्रालोक ।। 5 / 46 ।।)

अर्थ-जब एक पदार्थ भिन्न न हो और उसका भिन्न रूप से वर्णन किया जाय तो भेदकातिशयोक्ति होती है।

जैसे-अहो अनयैव लावण्यलीला बालाकुचमण्डले ।।

अर्थात् - बाला के वक्षस्थल के सौन्दर्य लीला कुछ और ही है अतः भेदकातिशयोक्ति है।

इसी प्रकार- जहाँ पर रूप्य अर्थात् उपमेय रूपक अर्थात् - उपमान के मध्य में स्थित हो वहीं पर रूपकातिशयोक्ति होती है।

जैसे- पश्य नीलोत्पल द्वन्दान्निःसरन्ति शितः शराः।।

अर्थात् - देखो ! नीलकमल के जोड़े से पैने बाण निकल रहे है।

शब्दार्थ - अहो - आश्चर्य, बालाकुचस्थले-बालेके वक्षस्थल पर ,लावण्यलीला- सौन्दर्य शीला, रूप्यं -उपमेय, शिताः तीक्ष्ण बाण, नीलोत्पलद्वन्द्वाल्- नीलकमल के सेयोग से, निःसरन्ति-निकलते हैं।

व्याख्या- भेदकातिशयोक्ति के उदाहरणों में भेद न रहने पर भी दिखाया गया है जैसे-बाला के वक्षस्थल की जो लीला है वह लोक प्रसिद्ध लीला है, किन्तु भिन्न रूप से उसका अलौकिकत्व

वर्णित है। ऐसा सम्भव न होने पर भी चमत्कार जनक अर्थ उत्पन्न करते हुए इस अलंकार का वर्णन किया गया है।रूपकातिशयोक्ति के उदाहरण में नीलकमल का प्रयोग आँखों के लिए और बाण का प्रयोग कटाक्षों के लिए किया गया है। में दोनों उपमान है, उपमेय के अर्थ का बोध भी कराते है। यहाँ रूप्य नेत्र एवं कटाक्ष कमल बाण रूपी रूपक में अन्तर्हित हैं अतः रूपकातिशयोक्ति अलंकार है। विशेष जानने योग्य बात यह है कि जयदेव ने चन्द्रालोक में प्रौढ़ोक्ति और सम्भवना अलंकारों को भी बताया है जिन्हें अतिशयोक्ति के अन्तर्गत ही माना जाता है।

अभ्यास प्रश्न -1

निम्नलिखित में से सही विकल्प छाँटिए-

क. जयदेव ने अतिशयोक्ति के भेद माने हैं-

1. तीन ( )
2. चार ( )
3. दो ( )
4. छः ( )

ख.कारण से पूर्व (पहले) कार्य का वर्णन होने पर, होता है-

1. भेदातिशयोक्ति ( )
2. रूपकातिशयोक्त ( )
3. अत्यन्तातिशयोक्ति ( )
4. अक्रमातिशयोक्ति ( )

ग. यामीति प्रियपृष्टाया: वलयोऽभवदूर्मिका ' किस अलंकार का उदाहरण है-

1. सम्बन्धातिशयोक्ति ( )
2. चपलातिशयोक्ति ( )
3. अत्यन्तातिशयोक्ति ( )
4. रूपकातिशयोक्ति ( )

घ. उपमेय, उपमान के मध्य स्थित हो तो वहाँ पर होता है-

1. रूपकातिशयोक्ति ( )

2. भेदातिशयोक्ति ( )

3. अक्रमातिशयोक्ति ( )

4. रूपकातिशयोक्ति ( )

2. निम्नलिखित वाक्यों में सत्य-असत्य का निर्धारण करें।

क. प्रसिद्ध का अतिक्रमण करने वाली उक्तियाँ अतिशयोक्ति होती हैं।

ख. कार्य और कारण के एक साथ उपस्थित होने पर अक्रमातिशयोक्ति होता है।

ग. कारण के कथन मात्र से कार्य की उत्पत्ति होने पर भेदातिशयोक्ति होता है।

घ. जयदेव ने प्रौढ़ोक्ति और सम्भावना अलंकारों को भी अतिशयोक्ति के अन्तर्गत माना है।

3. निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक वाक्य में दीजिए।

क. अत्यन्तातिशयोक्ति का उदाहरण लिखिए।

ख. सम्बन्धातिशयोक्ति का लक्षण लिखिए।

ग. अक्रमातिशयोक्ति का लक्षणोदाहरण लिखिए।

4.स्तम्भ 'क' को स्तम्भ ' ख' से मिलाएँ

1. पश्य नीलोत्पल द्वन्द्वान्निः सरन्ति शिराः शराः।	अ. अक्रमातिशयोक्ति
2. पश्य सौधा ग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम्।	ब. रूपकातिशयोक्ति
3. अग्रेमाना गतः पश्यादनुनीता प्रियेण सा।	स. सम्बन्धातिशयोक्ति
4. आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्च ते।	द. अत्यन्तातिशयोक्ति

11.4. निदर्शना अलंकार

निदर्शना अलंकार का वर्णन चन्द्रालोक में दृष्टान्त के पश्चात् किया गया है। इसका लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार प्रदर्शित है-

वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्षना।।

या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलंकता।। (चन्द्रालोक।।5./58।।)

अर्थ- जिस कविता में भिन्न दो वाक्यों में समानता होने के कारण एकता का आरोप बताया जाय वहाँ निदर्शना होती है।

जैसे-या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलंकता ।।

शब्दार्थ-सदृशयोः-दो की समानता में, वाक्यार्थयोः - वाच्य, वाचक के ऐक्यारोपः-एकता का आरोप निदर्शना-निश्चित करके दिखाना दातुः -दानी की सुधांशोः -चन्द्रमा की अकलंकता-कलंक शून्यता।

व्याख्या-प्रस्तुत उदाहरण में समान वाक्यार्थ है- दानी की सौम्यता और चन्द्रमा की कलंक शून्यता। इन दोनों या और 'सेयं' के शब्दों के प्रयोग से एकता बतायी गयी है। यहाँ पर दोनो वाक्य स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि उद्देश्य तथा विधेय के रूप में प्रयुक्त हैं। प्रथम वाक्य उपमेय है द्वितीय वाक्य उपमान है। ये दोनों एक दूसरे के आश्रय में हैं। यहाँ एक बात विशेष विचारणीय है कि मम्मट ने 'नि' से निश्चय तथा ' दर्शन' से सादृश्य प्रकटन अर्थ ग्रहण करते हुए निदर्शना माना है। शाब्दिक अभिन्नता के प्रयोग के नाते पण्डित राज जगन्नाथ इसे रूपक मानते हैं। रूपक और निदर्शना का भेद यह है कि रूपक में उपमेय और उपमान एक रूप प्रयुक्त होते हैं जबकि निदर्शना में पृथक् सहायता लेकर एकता का आरोप किया जाता है। रूपक में एक ही वाक्य होता है, निदर्शना में दो वाक्य होते है, तथा दोनों परस्पर आश्रित भी रहते हैं।

आचार्य जयदेव के इस निदर्शना वर्णन को और विस्तार से जानने के लिए प्रसिद्ध लक्षणकार आचार्य मम्मट वर्णित निदर्शना अलंकार का यहाँ स्मरण करना यहाँ समीचीन लगता है। उन्होंने निदर्शना का लक्षण करते हुए कहा है कि-

निदर्शना अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः (काव्यप्रकाश 10.97)

अर्थात्- निदर्शना होती है, जहाँ पर वस्तुओं के असम्भव समबन्ध में उपमानोपमेय भाव वर्णित हो, अथवा वस्तुओं के असम्भव सम्बन्ध जो असम्भव हो अथवा उपमा का परिकल्पक हो। वे उदाहरण प्रस्तुत हैं कि-

क्व सूर्यप्रभवोवंशः क्व चाल्पविषयामतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।।

कहाँ वह सूर्य सम्भूत रघुवंश और कहाँ मेरी सीमिति बुद्धि, मोह के वश आकर मैं जो करना चाह रहा हूँ वह तो केवल उडुप (डोंगी नाव) के द्वारा दुरस्तर समुद्र को पार करना हुआ। इस उदाहरण में उडुप के द्वारा दुस्तर सागर का पार करना औ र कहाँ सूर्य वंश और अल्पविषयामति इनमें अर्थ असम्बद्ध है, किन्तु उपमानोपमेय भाव मान लेने पर निदर्शना बन जाती है।

11.5 तुल्ययोगिता अलंकार

जिस कविता में अनेक क्रियाओं की समानता अनेक प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत पदार्थो के साथ दिखाई जाय उस कविता में तुल्ययोगिता अलंकार होता है। इसका लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत करते समय

जयदेव ने निम्नलिखित विधि का आश्रय ग्रहण किया है-

क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यता तुल्ययोगिता

संकुचन्ति सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च ।

प्राचीनाचल चूडाग्रचुम्बिबिम्बे सुधाकरे ॥ (चन्द्रालोक ॥ 5./51,52 ॥)

अर्थ-जहाँ क्रिया और गुण आदि के आधार पर अनेक प्रस्तुत अथवा अनेक अप्रस्तुत पदार्थो की समानता का वर्णन किया जाता है, वहाँ पर तुल्योगिता अलंकार होता है।

जैसे- चन्द्रमण्डल के उदयाचल के शिखरस्थ होने पर कमल और व्यभिचारिणी संकुचित होते हैं , **शब्दार्थ** - क्रियादिभिः-क्रिया, गुण आदि के आधार पर अनेकस्य-अनेक प्रस्तुत पदार्थो अथवा अनेक अप्रस्तुत पदार्थो की । तुल्यता- समानता का वर्णन होने पर, तुल्ययोगिता- तुल्ययोगिता अलंकार होता है। सुधाकरे-चन्द्रमा के । प्राचीन- पूर्व, अचल- पर्वत, चूड़ाग्र- शिखर के अग्रभाग पर। सरोजानि-कमल, स्वरेणीवदनानि-व्यभिचारिणी स्त्रियों के मुख, संकुचन्ति- संकुचित हो जाते है ।

व्याख्या-तुल्ययोगिता अलंकार की विशेषता है कि इसमें अनेक प्रस्तुत और अनेक अप्रस्तुत पदार्थो की समानता, क्रिया-गुण आदि-आदि के आधार पर की जाती है । जैसे-

संकुचन्ति सरोजानि......................। इस उदाहरण में सरोज (कमल स्वैरिणीवदन व्यभिचारिणी स्त्रियाँ) दोनों प्रस्तुत हैं। इन दोनों प्रस्तुतों की समानता क्रिया के आधार पर की गई है। प्रस्तुत उदाहरण में प्राचीन का अर्थ पुराना न होकर प्राची (पूर्व दिशा) है। इसी प्रकार अनेक शब्द का अर्थ दो प्रस्तुत या दो अप्रस्तुत हो सकता है। दोनों उपमेय और उपमान होते हुए भी प्रस्तुत हैं तथा संकुचित होने की क्रिया के समानता के आधार पर तुलित भी हो रहें हैं। इसी लिए यहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होगा। क्रियादि पद में आया हुआ, आदि पद गुण के लिए या विशेषण के लिए प्रयुक्त है। क्रिया के समान हो जाने पर जिन दो पदों में समानता बनेगी वे उस क्रिया के कर्ता कर्म या करण कहला सकते हैं। तुल्ययोगिता का मूल स्वभाव उपमा प्रदर्शित करना है।

सरस्वतीकष्ठाभरण में भोजराज ने मित्र और शत्रु और के प्रति समान व्यवहार को तुल्ययोगिता अलंकार माना है। इसी प्राकर लक्षणकार आचार्य दण्डी ने भी काव्यादर्श में उत्कृष्ठ गुण युक्त व्याक्तियाँ की समानता को तुल्ययोगिता अलंकार कहा है। इस अलंकार की विशेषता है कि इसमें दोनों या तो अप्रसतुत होते है या प्रस्तुत । इस अलंकार में उपमा वाची शब्द की आवश्यकता नहीं होती। इसके दो भेद हो सकते हैं। जब ऐसे दो पद समान महत्व के होते हैं जहाँ दो प्रस्तुतो की तुलना की जाय वह द्वितीय भेद हो सकता है । चन्द्रमा के उदित होने पर प्रकाश होता है, अतः इस कारण लोक-लज्जा वश व्याभिचारिणी स्त्रियाँ निकल नहीं पाती जिससे उदासीन हो जाती हैं । चन्द्रोदय में

कमलो का मुरझा जाना तो कवि सम्प्रदाय में सिद्ध ही है। व्युत्पत्ति परक यदि अर्थ किया जाय तो तुल्ययोगिता की व्युत्पत्ति होती है-**' तुल्यधर्मेणयोगो सम्बन्धो जातो अस्यामिति अन्वर्थनामा तुल्ययोगिता '**। तुल्ययोगिता वह अलंकार है जिसे केवल प्रस्तुत पदार्थो अथवा अप्रस्तुत पदार्थो का एक धर्म से अभिसम्बन्ध कहा गया है-

पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।
एक धर्माभिसम्बन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ।। (साहित्य दर्पण 10/47)

यद्यपि साहित्यदर्पणकार नें तुल्ययोगिता के वर्णन में यह स्पष्ट नहीं किया है कि औपम्य, अभिवयंग्य रहा करता है या नहीं। अलंकारसर्वस्व में रूप्यक ने बताया है कि तुल्ययोगिता अलंकार में उपमानोपमेय भाव (औपम्य) की अभिव्यंग्यता आवश्यक होती है-

'औपम्यस्य गम्यत्वे पदार्थत्वेन प्रस्तुतानामप्रसतुतानां वा समान धर्माभिसम्बन्धे तुल्ययोगिता। इवाधप्रयोगे ह्यौपम्स्य गम्यत्वम् ' (अलंकारसर्वस्व पृष्ट 89)

इस प्रकार तुल्ययोगिता उन अलंकारों में आता है जो गम्यमान औपम्यान्य है। अर्थात्- उसमें उपमानोपमेय भाव की अभिव्यन्जना होती है । इस अलंकार में प्राकरणिक (प्रस्तुत) पदार्थों अथवा अप्रकरणिक (अप्रस्तुत) पदार्थो में क्रिया अथवा गुणरूप धर्म का योग पदार्थगत रूप से प्रतीत होता है, तभी तो प्रतिवस्तूपमान अलंकार से इसका भेद स्थापित किया जाता है, उपमानोपमेय भाव की अभिव्यन्जना में तुल्ययोगिता अलंकार जानने के लिए उदाहरण स्वरूप कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार देखने योग्य है -

शम्भोर्यन्नखरश्मिभिः प्रणमतश्चूड़ामणित्वे स्थिता।
गंगा चन्द्रकला च सर्वजगतां वन्द्यत्वमापादिता।
युक्तायाः परतापदावविपदः कन्या पितृणामसौ
दूरीकार्यहिमालया कथमुमापादद्वयी प्राप्यते ।।

यहाँ पार्वती की पादद्वयी के वर्णन-प्रसंग में, गंगा और चन्द्रकला अप्रकृत पदार्थो में 'अपादान' की क्रिया का सम्बंध स्पष्ट है एवं गंगा और चन्द्रकला में 'बन्धत्व' आदिरूप औपम्य भी झलक रहा है।

अभ्यास-प्रश्न -2

1. निम्नलिखित में से सही उत्तर छाँटिए।

क. भिन्नवाक्यों में समानता होने के कारण जहाँ एकता का आरोप हो वहाँ होता है-

1. रूपक 2. निदर्शना 3. उत्प्रेक्षा 4. अक्रमातिशयोक्ति

ख. निदर्शना अलंकार में 'नि' का तात्पर्य है-

1. निश्चय 2. निषेध

3. निःसर्ग 4. निःसंदेह

ग. अनेक पदार्थो के साथ समानता अनेक प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत पदार्थो के साथ दिखाई जाय उस कविता में होते है-

1. निदर्शना 2. सम्बन्धातिश्योक्ति

3. तुल्ययोगिता 4. अर्थापत्ति

घ. 'स्वैरिणी' का अर्थ है-

1. राजरानी 2. विदुषी

3. नेत्री 4. व्यभिचारी स्त्री

ड़. ' निदर्शना अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः' निदर्शना का यह लक्षण किस विद्वान किया है?

1. आचार्य मम्मट 2. आर्चाय दण्डी

3. आर्चाय विश्वनाथ 4. जयदेव

2. निम्नलिखित वाक्यों की उचित शब्द से पूर्ण करे -

क. तुल्ययोगिता उन अलंकारो में आता हैं जो गम्यमान....................है।

ख. ' दर्शन ' का अर्थ...................है।

ग. भोजराज ने...ग्रंथ लिखा है।

घ. निदर्शना को .... पण्डित राजजगन्नाथ रूप मानते है।

ड़. तुल्ययोगितामें ....की अभिवयग्यता आवश्यक होती है।

11.6 अर्थापत्ति अलंकार एवं काव्यलिंग

चन्द्रलोक में वर्णित अर्थापत्ति एवं काव्यलिंग दोनों न्याय परक अलंकार कहलाते है, किन्तु अर्थ की चमकत्कादिकता भी इनमें बहुत है, जयदेव के अनुसार अर्थापत्ति का लक्षण है-

अर्थापत्तिः स्वयं सिध्येत् पदार्थन्तरवर्णनम्।

स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्ता सरसीरूहाम्॥ (चन्द्रालोक ॥5/37॥)

अर्थ- जिस काव्य में एक वस्तु के वर्णन कर देने से दूसरे का वर्णन अपने ही सिद्ध हो जाय उसमें अर्थापत्ति अलंकार होता है। जैसे- स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्ता सरसीरूहाम॥ अर्थात्-वह चन्द्रमा तुम्हारे मुख द्वारा जीत लिया गया तो कमलों पर विजय की बात क्या रह गयी।

शब्दार्थ- पदार्थान्तरवर्णम-अन्य पदार्थ का वर्णन स्वयं-स्वतः सिध्येत्-सिद्ध। अर्थापत्ति -अर्थापत्ति अलंकार स इन्दुः-वह चन्द्रमा त्वन्मुखेन-तुम्हारे मुख द्वारा जितः-जीत लिया गया सरसीरूहाम्-कमलों की, का वार्ता- क्या बात।

व्याख्या-अर्थापत्ति शब्द के दो अभिप्राय बताये जाते है-

1. अर्थस्यापत्तिर्यस्मात् 2. अर्थस्यापत्तिः अर्थापत्ति एक प्रमाण है, जो मीमांसा सम्मत है किन्तु उसमें अर्थापत्ति रूपी वाच्य सौन्दर्य का अन्तर्भाव नहीं है। जहाँ पर स्वतः कोई बात आ जाय वहाँ अर्थापत्ति होती है, उक्त उदाहरण में यह प्रतीत होता है, कि कमलों का विजेता चन्द्रमा है। जो हार गया इस अन्य पदार्थ का वर्णन मुख द्वारा चन्द्रमा के पराजित होने के वर्णन के साथ अपने आप सिद्ध है। इसी लिए अर्थापत्ति है। जब सर्वाधिक सुन्दर कमल वैसे ही हार जायेगा। नायिका के मुख द्वारा चन्द्रमा विजित है, तो इस प्रकार की विजय के समक्ष कमल के सौन्दर्य भी पराजित हैं। यह तथ्य कौमुतिक तथा दण्डापूसिक न्यायादि से सम्बंधित है, अतः यह अलंकार भी न्याय परक कहा जा सकता है।

काव्यलिंग अलंकार - जयदेव ने काव्यलिग का लक्षण एवं उदाहरण चन्द्रलोक के पंचम् मयूख में इस प्रकार किया है-

स्यात् काव्यलिंग वागर्थो नूतनार्थसमर्पकः।

जितोऽसि मन्दकन्दर्प मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः ॥ (चन्द्रलोक 5/38)

अर्थ- जब नवीन अर्थ का बोध कराने वाला वाक्यार्थ हो तब काव्यलिंग अलंकार होता है जैसे-

जितोऽसि मन्दकन्दर्प मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः। अर्थात् - हे मंद (मूढ़) कामदेव मेरे चित्त में त्रिलोचन विराजमान है अतः मैने तुझे जीत लिया।

शब्दार्थ- नूतनार्थसमर्पकः- नूतन अर्थ का बोध कराने वाले। **वागर्थ**- वाक्य रूपी पदार्थ स्यात्- मेरे चित्त में मन्द-मूर्ख (मूढ़) कन्दर्प-कामदेव , जित: असि- जीत लिये गये हो मच्चित्ते-मेरे चित्त में

त्रिलोचन- भगवान शंकर अस्ति- हैं। काव्यलिंग-काव्यलिंग अलंकार।

व्याख्या-इस अलंकार नाम अन्वर्थ है। काव्यलिंग हेतुः इस व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ है, काव्य का हेतु। प्रस्तुत उदाहरण में कामदाहक शंकर के तृतीय नेत्र रूपी नये अर्थ की प्रतीति है। मेरे हृदय में त्रिलोचन रूद्र है, यही वाक्य नवीन अर्थ दे रहा कि मेरे हृदय में वर्तमान रूद्र के तीसरे नेत्र से कामदेव भस्मसात् होगा। नैयायिक लोक उसी को लिंग कहते है जिस हेतु से साध्य का अनुमान किया जाता है। साध्य वह है जिसकी सिद्धि अनुमान प्रमाण से की जाती है यहाँ पर 'जितोऽसि मन्दकन्दर्प' इस वाक्य का समर्थन मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः इस वाक्य से किया गया है। कामदेव जीत लिया गया इसके लिए हृदय मे रूद्र का होना ही नवीनार्थ है। अतः नवीन अर्थ का समर्पक होने से यहाँ काव्यलिंग अलंकार है।

यहाँ एक विशेष बात यह है, कि आचार्य भामह और दण्डी आदि प्राचीन आचार्य काव्यलिंग अलंकार को नहीं मानते है। उनके मतानुसार वैचित्र्य ही अलंकार है और काव्यलिंग को अलंकार में कोई वैचित्र्य नहीं। अतएवं यहाँ किसी प्रकार का अलंकारत्व नहीं है। पण्डितराज जगन्नाथ का भी अभिमत है कि काव्यलिंग को अलंकार मानना अनुचित है क्योकि काव्यलिंग में वह शोभा नहीं जिसे विचित्रता कहा जाया करता है काव्यलिंग में न तो कवि प्रतिभा का हाथ है जिससे उसे अलंकार माना जाय और न किसी चमत्कार विशेष का ही कोई पुट है न तो कविप्रतिभा का हाथ है जिससे उसमें किसी वैचित्र्य का पता चले।

अभ्यास-प्रश्न-3

1. निम्नलिखित वाक्यों का सत्य-असत्य निर्धारण करें।

क. अर्थापत्ति एवं काव्यलिंग दोनों न्यायपरक अलंकार है।

ख. अर्थापत्ति शब्द के जयदेव ने तीन अर्थ बताये है।

ग. नवीन अर्थ का बोध कराने वाले वाक्यार्थ को काव्यलिंग अलंकार होता है।

घ. अर्थापत्ति कौमूतिक और दण्डापूपिक न्यायादि से सम्बन्धित है।

2. निम्नलिखित वाक्यों को उचित शब्द से पूर्ण करें-

क. अलंकारसर्वस्वकार ने...............................लिखा है।

ख. तुल्ययोगिता में...................................शब्द को आवश्यकता नहीं होती है।

ग. अर्थापत्ति एक प्रमाण है, जो ....है।

11.7. सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि अर्थालंकारों में उपमेय तथा उपमान का वर्णन प्रधान होता है, इन्ही दोनो को प्रस्तुत-अप्रस्तुत, कार्य-कारण आदि रूपों में व्यवहत्त किया जाता है। कहीं उपमान उपमेय पृथक होते है, तो कहीं उपमान और उपमेय दोनों एक होते हैं। अतिशयोक्ति अलंकार में जयदेव ने छः भेदों में कार्य-कारण को विभिन्न रूपों में चित्रित करके अलग-वस्तुओं के असम्भव सम्बन्ध को द्योतित करते हुए उपमा का परिकल्पक होती है। इस अलंकार में सम्बन्ध सम्बन्ध सम्भव न रहने पर भी सम्बन्ध बताया जाता है, जिससे अर्थ में चमत्कार उत्पन्न हो। अनेक क्रिया-गुण आदि का धर्म प्रधान है। पदार्थान्तर वर्णन में अर्थापत्ति का स्वयं सिद्ध होना माना जाता है। अर्थात् एक पदार्थ के वर्णन से दूसरे का वर्णन स्वयं उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त काव्यलिंग अलंकार वाक्यार्थ में नवीन अर्थ प्रदान करता है। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप इसमें वर्णित अलंकारों के स्वभाव से परिचित करा सकेंगे।

11.8. पारिभाषिक शब्दावली

1. प्रस्तुत - उपमेय
2. अप्रस्तुत - उपमान
3. कार्य - कभी उपमेय
4. कारण - कभी उपमान
5. अक्रम - विनाक्रम के
6. चपल - चंचल, शीघ्रता
7. ऐक्यारोप - एकता का आरोप
8. सम्बन्ध - संयोग
9. प्रासाद - महल
10. भेद- अन्तर, पार्थक्य, प्रकार
11. रूपक - उपमान
12. तितीर्षु - पार कारने का इच्छुक

13. पादद्वयी - दो पैर

11.9. अभयास प्रश्नों के उत्तर

1. क. (4) - छः

ख. (3) - अत्यन्तातिशयोक्ति

ग. (2) - चपलातिशयोक्ति

घ. (1) - रूपकातिशयोक्ति

2. क. सत्य

ख. सत्य

ग. असत्य

घ सत्य

3. क. अग्र मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा।

ख. सम्बन्धतिशयोक्तिः स्यात्तदभावेऽपि तद्वचः।

ग. अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे।

घ. आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्चते।

4. क ख

1. ब

2. स

3.-द

4.-अ

अभ्यास- प्रश्न- 2

1. क. (2) निदर्शना, ख. (1) निश्चय, ग. (3) तुल्ययोगिता, घ. (4) व्यभिचारिणी स्त्री,

ड़ (1) आचार्य मम्मट

2. क. औपम्याश्रय ख. सादृश्य प्रकटन, ग. सरस्वतीकण्ठाभरण
घ. शाब्दिक अभिन्नता ड़. उपमानोपमेय भाव (औपम्य)

अभ्यास-प्रश्न-3

1. क. सत्य ख. असत्य, ग. सत्य, घ. सत्य

2. क. रूय्यक ख. उपमावाची ग. मीमांसा।

11.10 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट , व्याख्याकार डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अतिशयोक्ति अलंकार के समस्त भेदों का उदाहरण लक्षण सहित निरूपण कीजिए।

2. लक्षणोदाहरण सहित निदर्शना अलंकार की व्याख्या कीजिए।

3. चन्द्रालोक के अनुसार तुल्ययोगिता अलंकार का विस्तृत विवेचन कीजिए।

4. अर्थापत्ति एवं काव्यलिंग के लक्षण एवं उदाहरण पर प्रकाश डालिए।

इकाई 12 . स्मृति, भ्रांति, सन्देह, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास (लक्षण, उदाहरण, व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

12.1. प्रस्तावना
12.2. उद्देश्य
12.3. स्मृति, भ्रांति, सन्देह अलंकार
12.4. दृष्टान्त अलंकार
12.5. अर्थान्तरन्यास अलंकार
12.6. सारांश
12.7. पारिभाषिक शब्दावली
12.8. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9. सन्दर्भ पुस्तकें
12.10. सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री
12.11. निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

वर्णित क्रम में यह बारहवीं इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आपने उपमेय, उपमान के अनेक धर्म सम्बन्धों से सम्बन्धित अलंकारों का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में आपके अध्ययनार्थ स्मृति, भ्रांति के पक्षों को उपस्थित किया गया हैं।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से सम्बन्धित हो कर उपमानों-पमेय भाव में दृष्टान्त आदि अलंकारों की सृष्टि होती है। इसी प्रकार सामान्य से विशेष और विशेष से सामान्य के समर्थन द्वारा तथा साधर्म्य एवं वैधर्म्य द्वारा अर्थान्तरन्यास अलंकार निरूपित होता है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप औपम्याश्रित स्मृति-भ्रान्ति संदेह, दृष्टान्त और अर्थान्तर- न्यास अलंकारों के लक्षणोदाहरण का ज्ञान करते हुए इनका उल्लेख भी कर सकेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई में पृथक्-पृथक् स्वरूप वाले अलंकारों के व्याख्यात्मक वर्णन प्रस्तुत हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

1. स्मृति अलंकार के लक्षण एवं उदाहरण को जान सकेंगे।
2. स्मरण और उसकी प्रकृति को पहचानेंगे।
3. भ्रांति एवं संदेह का अंतर जान पायेगे।
4. उपमेय तथा उपमान के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव आश्रित दृष्टान्त का उल्लेख कर सकेंगे।
5. अर्थान्तरन्यास के स्वरूप से परिचित होंगे।

12.3 स्मृति,भ्रान्ति,एवं सन्देह अलंकार

लोकव्यवहार में भी भ्रम में पड़ना, शंका करना आदि समस्त कार्य कलापों में व्याप्त होते हैं। सन्देह भ्रम और स्मृति इन तीनों को बुद्धि के सामान्य संस्कार से हम नहीं जान पाते हैं, यद्यपि बहुत सारे स्थलों पर इन्हे परिभाषित किया गया है। तथापि हमारे साहित्य शास्त्रियों ने जिस प्रकार स्मृति, भ्रान्ति और सन्देह का स्पष्टीकरण किया है उतना आनन्द पूर्ण स्पष्ट विवेचन अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। जयदेव ने चन्द्रालोक में इन्हें पृथक उपस्थित न कर इनका लक्षण स्पष्ट न कर ऐसे उदाहरणों की सृष्टिकिया है, जिनसे इन अलंकारों के पृथक् -पृथक् स्वभाव का ज्ञान उदाहरणों द्वारा ही हो जाता है। यहाँ पर सर्वप्रथम चन्द्रालोक में एक साथ वर्णित इन अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य है-

स्यात्स्मृति-भ्रान्ति सन्देहैस्तदेवालङ्कृतित्रयम्।
पंकजं पश्यतस्याःमुखं मे गाहते मनः।।

अयं प्रमत्तमधुपरत्त्वन्मुखं वेद पंकजम् ।
पंकजं वा सुधांशुर्वेत्यस्मांकं तु न निर्णयः।। (चन्द्रालोक 5/31,32)

अर्थ - स्मृति, भ्रान्ति और संदंह अलंकार होते है, कारण यह कि इनमें स्मृति, भ्रान्ति और सन्देह होते हैं। स्मृति- जब किसी वस्तु को देखकर उसके सदृश पहले देखी गयी वस्तु के स्मरण का वर्णन होता है, तो व हाँ स्मृति अलंकार कहा जाता है। जैसे- **पंकजं पश्यतस्यस्तस्याः मुखं मे गाहते मनः**।

अर्थात-कमल को देखकर मेरा मन उसके मुख को याद करता है। प्रस्तुत उदहाहरण में प्रिया कामुख पहले से देखा गया है, कमल को देखकर उसके मुख का स्मरण हो रहा है । यहाँ पर

शब्दार्थ - पंकजं -कमल को , पश्यतः-देखते हुए, मुखं-मुख को तस्या-उसके, मे मनःगाहते- मेरा मन याद करता है। तत्सदृश वस्तु का ज्ञान पूर्व ज्ञान का स्मरण कराता है। इसीलिए यहाँ स्मृति अलंकार है।

अलंकारसर्वस्व और काव्य प्रकाश में ' सदृशानुभव' से वस्त्वन्तर की समृति' को स्मरण अलंकार कहा गया है- सदृशा-नुभवाद् वस्त्वन्तरस्मृतिः स्मरणम् (अलंकार सर्वस्व), 'यथानुभवमर्यस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः स्मरणम्। (काव्य प्रकाश) । स्मरण अलंकार केवल स्मृति नहीं अपितु सादृश्योत्थापित स्मृति हैं। अलंकार सर्वस्वकार आचार्य रूप्यक का स्पष्ट कथन है -

सादृश्यं बिना तु स्मृतिर्नाऽमलंकारः

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार स्मरण का लक्षण है - सादृश्यज्ञानोद्बुद्धसंस्कार प्रयोज्यं स्मरणालंकारः। पण्डित राज सदृशज्ञान से उद्बुद्ध स्मृति को स्मरण अलंकार मानते हैं। स्मरण अलंकार की जन्मभूमि वस्तुतः उपमा है। उपमा में साधारण धर्म की एक रूपता और भिन्नरूपता में बिम्ब प्रतिबिम्बभाव तथा वस्तुप्रतिवस्तुभाव की कतिपय स्म्भावनाएँ 'स्मरण' के लिए भी लागू है।

इन्ही बातों को आचार्य विश्वनाथ ने कुछ और खोलने का प्रयास करते हुए स्मरण अलंकार के रूप में चित्रित किया है उन्होने कहा है कि -

सदृश्यानुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते (सा0द0पृ. 713)

अर्थात-स्मरण अलंकार वहाँ होता है, जहाँ समान गुण धर्म वाली एक वस्तु के अनुभव से, उसी के समान दूसरी वस्तु के स्मरण का निबन्ध होता है।

इस प्रकार भिन्न -भिन्न लक्षणकारों ने स्मृति अलंकार को अलग-अलग उदाहरणों द्वारा एक ही भाव में प्रस्तुत किया है।

भ्रान्ति- वस्तुओं के विषय में मिथ्या ज्ञान भ्रान्ति कहलाता है। यद्यपि इसे मिथ्या ज्ञान कहा गया है,

तथापि किसी भी वस्तु के बारे में भ्रम होना उस ज्ञान की निश्चिता का द्योतक होता है। अतः कहा जा सकता है, कि एक वस्तु को सादृश्य के नाते निश्चय पूर्वक कुछ दूसरा समझ लेना भ्रांति है।

जैसे- 'अयं प्रमत्त मधुपः त्वन्मुखं वेद पंकजम् '

अर्थात् - यह मतवाला भौंरा तुम्हारे मुख को ही कमल समझ बैठा है। इस उदाहरण में कमल के सादृश्य के कारण मुख को कमल समझ लेने का वर्णन किया गया है, अतः भ्रांतिमान अलंकार एक भ्रांति है, जो कवियों की प्रतिभा द्वारा उत्थापित होती है, जैसे " सीप में चाँदी'' इस प्रकार की भ्रांति को भ्रांतिमान अलंकार नही कह सकते हैं। प्रयुक्त उदाहरण में मुख तथा कमल में अत्यन्त सादृश्य है, इसलिए भ्रमर को मुख में कमल की भ्रांति हो रही है।

शब्दार्थ-अयं-यह, प्रमतमधुपः मतवाला या मदोन्मत्त भौंरा भ्रांतिमान अलंकार को ठीक से समझने के लिए दो प्रसिद्ध लक्षणकारों यथा-मम्मट, एवं विश्वनाथ के अनुसार जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है। यद्यपि अन्यों ने भी इसके वर्णन किए हैं तथापि स्थान संकोच के नाते उन्हें उपस्थित नहीं किया जा सकता। काव्य प्रकाश में मम्मट नें भ्रांतिमान का लक्षण इस प्रकार किया है- ' ' भ्रान्तिमानन्यसंवित्तत्तुल्यदर्शनें ।। (क्रा0 प्र0 10/132)

अर्थात् -भ्रांतिमान वह अलंकार होता है जिसमें प्राकरणिक के दर्शन में अप्राकरणिक के साथ उसके सादृष्य के नाते प्रतीति का वर्णन किया जाय। भ्रांतिमान शब्द में ही भ्रान्ति का शब्द निर्विवाद सिद्ध होता है। इनका उदाहरण है, " आश्चर्य पूर्ण बात है, कि अपने सौन्दर्य के अभिमान में चन्द्रमा सारे जगत् को भ्रानत बनाते दिखायी देता है। कही पर बिल्लियाँ खप्परों में पड़ी चाँदनी समझकर चाट रही है। कहीं पर हाथी झाड़ियों से छनी हुयी चाँदनी को कमलनाल समझ रही हैं, और कहीं पर कोई रमणी अपनी शैय्या पर श्वेत वस्त्र समझ कर उठा रही है।''

उपर्युक्त उदाहरण में सादृश्य ज्ञान के कारण ही इतनी भ्रान्तियों उपस्थित हैं। अतः भ्रान्ति मान है।

विश्वनाथ ने भी साहित्यदर्पण में सादृश्य के कारण एक वस्तु में दूसरी वस्तु के अनुभव को जो कवि प्रतिभा से उत्थापित हो उसे भ्रान्तिमान अलंकार माना है। अतः इसे सादृश्य मूलक अलंकार कहा जा सकता है।

सन्देह- संदेह अलंकार को परिभाषित करने के लिए जयदेव ने जो उदाहरण ग्रहण किया है, वह इस प्रकार है- **पंकजं वा सुधांशुः वा इति अस्माकं तु न निर्णयः**।

अर्थात- यह कमल है या चन्द्रमा इसका निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ। अतः इस उदाहरण में यह देखा जा रहा है, कि जैसे कोई नायक किसी नायिका के मुख को देख कर कह रहा है, कि यह उसका मुखकमल है, या चन्द्रमा इसका मैं निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ इस प्रकार अनिर्णय की स्थिति में संदेह

अलंकार की प्रकृति व्यवस्थित रहती है।

शब्दार्थ- वा-या, सुधांशुः-चन्द्रमा अस्माकं-मेरा, हमारा न निर्णयः-निर्णय नहीं हो पा रहा है।

इस उदाहरण में कमल और चन्द्रमा दो पक्ष हैं और दोनों का ज्ञान हो रहा है, और दोनों का ज्ञान हो रहा है। किन्तु निर्णय नहीं हो पा रहा है, कि कौन ज्ञान ठीक है, और कौन ज्ञान गलत है, अथवा दोनों ठीक हैं। अतः यह बात भी सामने आती हैं, कि समान वस्तु के होने पर ही सन्देह हो सकता है।

संदेह अलंकार को विस्तार से जानने के लिए कतिपय लक्षणकारों के मतों का अवलम्ब प्राप्त करना आवश्यक होता है। अतः सर्वप्रथम हम मम्मट के मत का अनुसार करते है। मम्मट ने इसको ससन्देह से इसको विभूषित करते हुए इसका लक्षण इस प्रकार किया है-

ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः (का 0 प्र0 10/92)

अर्थात् सन्देह अलंकार वहाँ होता है जहाँ उपमेय की उपमान के साथ एक रूपता (सादृश्यमूलकता) के साथ संशय रहा करता है, जिसमें भेदोक्ति हो, किसी वैद्यर्म्य का कथन हो और किसी वै धर्म्य का कथन न हो। मम्मट का उदाहरण है कि- क्या यह सूर्य तो नहीं है? परन्तु उसके रथ में तो सात घोड़े जुते रहते हैं ! तब क्या यह अग्नि तो नहीं ? किन्तु वह तो महिषवाहन है ! इस प्रकार, है महाराज! आपके शत्रु - सैनिक आपको संग्राम में देख-देख कर संकल्प-विकल्प किया करते हैं।''

इस उदाहरण में जो संशयात्मक प्रतीति है, वह संदिग्ध तादात्म्य भेद वैधर्म्य की उक्ति तथा भेद वैधर्म्य की उनुक्ति में सन्निहित है, इस लिए यहाँ ससन्देह अलंकार माना गया है। इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने भी साहित्यदर्पण में भी निश्चयगर्भ और निश्चयान्त संदेह माना है। इसके अतिरिक्त उन्होंने शुद्ध संन्देह को प्रथम माना है। उनका लक्षण है-सन्देहः प्रकृते न्यस्य संशय प्रतिभोत्थितः। शुद्धोनिश्चयगर्भोसौ निश्चयान्त इति त्रिधा ॥ (स0द0) अर्थात्-सन्देह अलंकार वह है जिसमें उपमेय (प्रकृत) में अप्रकृत (उपमान) का कवि प्रतिभा से उत्थापित संशय कहा जाता है। शुद्ध संशय में वाक्य आदि मध्य और अन्त में वाक्य आदि अन्त में संशय किन्तु मध्य में निश्चयता का ज्ञान कराता है। निश्चयान्त सन्देह में आदि में संशय किन्तु अन्त में निश्चय होता है।

अभ्यास-प्रश्न-1

1. निम्नलिखित में से सही विकल्प छाँटिए-

क. पहले देखी हुयी वस्तु के सदृश वसतु का दर्शन से स्मरण होने पर उस वाक्य में अलंकार है-

1. भ्रान्ति

2. सन्देह

3. समृति

4. भ्रानित सन्देह

ख. ' अयं प्रमत्तमधुपस्त्वन्मुखं वेद पंकजम्’ मे अलंकार है-

1. भ्रान्ति 2. सन्देह

3. स्मृति 4. भ्रान्ति सन्देह

ग. आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में सन्देह अलंकार के भेद माने हैं-

1. दो 2. तीन

3. चार 4. पाँ

घ. पंकजं वा सुधांशु वा इति अस्माकं तु न निर्णयः में अलंकार है-

1. सन्देह 2. भ्रान्तिमान

3. स्मृति 4. दृष्टान्त

2. निम्नलिखित रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

क. जहाँ उपमेय की उपमान के साथ एक रूपता होती.....................के साथ संशय रहा करता है, वहाँ ....अलंकार होता है।

ख. स्मृति अलंकार की जन्मभूमि वस्तुतः................................है।

ग. भ्रान्तिमान.........................अलंकार है।

घ. अनिर्णय की स्थिति में....................................अलंकार होता है।

ड़ ' सन्देहः प्रकृतेन्यस्थ संशय प्रतिभोत्थितः सन्देह का यह लक्षण ....ने किया है।

च. ' सदृशानुभवाद् वस्त्वन्तरस्मृतिः स्मरणम् स्मृति अलंकार का यह लक्षण.................में मिलता है।

12.4 दृष्टान्त अलंकार

यह अलंकार बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव से सम्बन्धित है। चन्द्रालोक में इसके लक्षण एवं उदाहरण को इस प्रकार उपस्थित किया गया है -

चेद् बिम्ब प्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलंकृतिः

स्यान्मल्लप्रतिमल्लत्वे संग्रामोद्दामहुंकृतिः।। (चन्द्रालोक 5/56)

अर्थ-जहाँ पर वाक्यों का परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। जैसे- स्यान्मल्लप्रतिल्लत्वे संग्रामो-द्दामहुंकृतिः। अर्थात्-संग्राम में मल्ल-प्रतिमल्ल होने से हुंकार होने लगता है। उसी प्रकार बिम्ब-प्रतिबिम्ब होने से दृष्टान्त होने लगता है।

शब्दार्थ- मल्लः-योद्धा, युद्ध प्रतिमल्ल- प्रतियोद्धा, संग्रामे-युद्ध में उद्दाम्नी-घोर, जोर से, हुंकृतिः- हुंकार स्यात्- होती है ।

व्याख्या-दर्पण में जिस प्रकार वस्तु के सम्मान परछाई होती है, उसी प्रकार एक वाक्य के समान दूसरा वाक्य आता है; तो उन दोनों वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव माना जाता है। प्रस्तुत उदाहरण में अर्थ की दृष्टि से बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। यद्यपि जयदेव को इस उदाहरण से स्वतः संतुष्टि नहीं हुयी होगी। इस उदाहरण में बिम्ब-प्रतिबिम्ब और मल्ल-प्रतिमल्लत्व, अलंकृति एवं हुंकृति ये पृथक् जोड़े है, जिनमें बिम्ब भाव किया जाता है, उनमें से एक तो उपमेय का चित्रण करता है, और दूसरा उपमान का दो भिन्न प्रकार के धर्म समान होने के कारण एक जैसे प्रतीत हो और उनका उल्लेख अलग-अलग किया जाय बत बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव कहलाता है। दिए गए उदाहरण में अलंकृति और समान होने से तुल्य है। यदि दृष्टान्त को इस प्रकार परिभाषित किया जाय-दृष्टः सुष्ठः अवलोकितः अन्तः निश्चयों यस्य स दृष्टान्तः अर्थात् इस व्युत्पत्ति से वाक्यार्थ का निश्चय उदाहरण के द्वारा भली-भाँति कर लिया जाय तो वही पर दृष्टान्त अलंकार हो जाता है। दृष्टान्त अलंकार का जो दूसरा उदाहरण जो चन्द्रालोक में वर्णित है, वह इस प्रकार है-

दृष्टान्तश्चेद्भवन्मूर्तिस्तन्मृष्टा दैवदुर्लिपिः

जाता चेत्प्राक् प्रभा भानोस्तर्हि याता विभावरी।। (चन्द्रालोक 5/57)

अर्थ- जिस प्रकार पूर्व दिशा में उदित सूर्य की शोभा से अँधेरी रात स्वयं विनष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आप की मूर्ति का अन्तः करण में साक्षात्कार करने से दुर्भाग्य (दैवदुर्लिपि) नष्ट हो जाता है।

शब्दार्थ- चेत्-यदि, भवन्मूर्ति - आपकी मूर्ति, अन्तः-अन्तःकरण में दृष्टा-देखली, तत्- तो, दैवदुर्लिपिः भाग्य की दुर्लिपि, मृष्टा -मिट गयी, प्राक्- पूर्व दिशा में, भानोः-भनु की , प्रभा-दीप्ति , जाता-उत्पन्न हो गयी। तर्हि - तो विभावरी - निशा, माता-चली गयी।

प्रस्तुत उदाहरण दृष्टान्त का बिल्कुल स्पष्ट उदाहरण है। उपमेय वाक्य के 'मूर्तिः अन्तःप्रविष्टा चेत्तद् दैवदुर्लिपिः और मृष्टा पद बिम्ब है, तथा इनका प्रतिबिम्ब उपमान वाक्य में क्रमशः 'प्रभा प्राक् जाता चेत तर्हि विभावरी' और माता पदों के रूप में है, केवल भवत् और भानु शब्दों में अर्थ मात्र की दृष्टि से साम्य है, वाह्य रूप से नहीं। दुर्लिपि का मिटना और रात्रि का जाना ये दोनों धर्म हैं, जो मिलते-जुलते होते हुए भी अलग-अलग हैं।

दृष्टान्त अलंकार को नितानत स्पष्ट रूप से समझने हेतु कतिपय आचार्यों के मन्तव्य द्रष्टव्य है-

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार दृष्टान्त में दोनो वाक्यों के धर्मो का बिम्बप्रतिबिम्ब भाव आवश्यक है, किन्तु प्रतिवस्तुपमा के सन्दर्भ में दोनों वाक्यों में भिन्न पदों द्वारा प्रतिपादित एक साधारण धर्म की नितान्त अपेक्षा होती है।

काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट कहते हैं-'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्' (का0प्र0 10/102) अर्थात् उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों में उपमान उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों में उपमान उपमेय और साधरण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रहने पर दृष्टान्त अलंकार होता है। इनकी दृष्टि में वाकयार्थो का औपम्य अभिप्रेत है। दृष्टान्त वाक्य का उपमान, उपमेय और साधारण-धर्म के दृष्टान्त वाक्य का उपमान, उपमेय और साधारण-धर्म के दृष्टान्त योग्य वाक्य में प्रबिम्बित होने का अभिप्राय है कि दोनों पक्षों में बिम्बप्रतिम्बि भाव होता हैं। दो वस्तुओं के (दो अर्थो) के दो ' द्वयोरर्थयोर्दिरूपादानं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावः यह परिभाषा प्रतापरूद्रयषोभूषण में कही गयी है। यह भाव तभी सम्भव होता है जब विशेष्य तथा विशेषण दोनों में सादृश्य का कथन हो न कि एकत्त्व का।

12.5.अर्थान्तरन्यास अलंकार

चन्द्रालोकार ने अनुषक्त अर्थ में अर्थान्तरन्यास अलंकार को परिभाषित करने के लिए उसका लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार किया है-

भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा।

हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम्।। (चन्द्रालोक 5/68)

अर्थ-जहाँ पर मुचयार्थ से सम्बद्ध अर्थान्तर का अभिधान किया है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। उदाहरण है- हनुमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम् अर्थात् हनुमान् समुद्र पार कर गये, महात्माओं के लिए दुष्कर क्या है ?

शब्दार्थ- भवेत् होता है , अन्यः अर्थ अर्थान्तर तस्य-उसका, अभिधा- कथन, न्यास-सम्बद्ध।

व्याख्या- अनुषक्त पद का अर्थ प्रस्तुत अर्थ से सम्बद्ध और अर्थान्तर का अर्थ अप्रस्तुत है। उदाहरण के प्रथम चरण में कही गयी विशेष बात 'हनुमान् ने सागर का पार किया का समर्थन सामान्य बात 'महापुरूषों के लिए क्या कठिन है, से किया गया है। इसमें पहली बात प्रस्तुत है और दूसरी अप्रस्तुत। यह भी कहा जा सकता है कि सामान्य बात का समर्थन विशेष बात के उदाहरण से किया गया है। प्रस्तुत सामान्य बात है और अप्रस्तुत विशेष बात है। अर्थान्तर का अर्थ प्रस्तुतका समर्थक अप्रस्तुत धर्म और न्यास का अर्थ समर्थन है। इस प्रकार अर्थान्तरन्यास अलंकार का नाम सार्थक है।

जनसाधारण और कवि दोनों में यह अलंकार प्रिय होता है। अर्थान्तरन्यास लोकोक्ति में प्रचलित होता है।

विशिष्ट तथ्य- अर्थान्तरल्यास अत्यन्त प्रसिद्ध अलंकार है। आचार्य भामह ने भी इसका निरूपण किया है। भामह इसका लक्षण करते हैं -

उपमन्यसनमन्यस्य यदर्थस्योदितादृते।

ज्ञेयस्सोऽर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतो तथा।। (काव्यालंकार 2/11)

अर्थान्तरन्यास अलंकार को आचार्य दण्डी भी मानते हैं-

ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुतस्य किन्चन।

तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुतः।। (काव्यादर्श, 2 /169)

अर्थान्तरन्यास अलंकार के लक्षण से भी अर्थान्तरन्यास शब्द की व्युत्पत्ति का यही अभिप्राय स्पष्ट होता है- अर्थ्यत इति अर्थः प्रस्तुत इति यावत्, अन्यः अर्थः अर्थान्तरं तस्य न्यास। अर्थात् प्रस्तुत से विलग अप्रस्तुत अर्थ का ऐसा उपनिबन्ध जो अन्ततः प्रस्तुत का समथ्रक हो 'अर्थान्तरन्यास' है। ' अर्थान्तरन्यास ' वाच्य चमत्कार है। इसमें उपपादन की अपेक्षा रखने वाले प्रकृट का, चाहे वह पहलं निर्दिष्ट हो अथवा बाद में निर्दिष्ट हो , समर्थक वाक्य द्वारा उपपादन अथवा समर्थन कहा जाता है।

अर्थान्तरन्यास में प्रकृत का समर्थन होता है न कि अनुमानित नवीन अनुभव का। काव्य प्रकाश में इस अलंकार को अत्यन्त विस्तार प्राप्त होता है। वहाँ पर इसे प्रकार चित्रित किया गया है-
सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यतु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा। (का0 प्र0 10/109)
अर्थात्- मम्मट की दृष्टि में अर्थान्तरन्यास सवह अलंकार है जिसे साधर्म्य और वैधर्म्य की दृष्टि से सामान्य किया जाता है। इसमें विशेष तथ्य यह है कि जो समर्थन की बात कही गयी है, वह इस प्रकार होती है-
सामान्य का साधर्म्य द्वारा विशेष से समर्थन, सामान्य का वैधर्म्य द्वारा विशेष से समर्थन, विशेष का साधर्म्य द्वारा सामान्य से समर्थन,विशेष का वैधर्म्य द्वारा सामान्य से समर्थन -इस प्रकार दोनों समर्थन हेतुओं के दोनों प्रकारों के समर्थनों में अनुगत होने के कारण यह अर्थान्तरन्यास चार प्रकार का होता है।

1. स्मृति , भ्रान्ति , सन्देह में अन्तर

क. तत्सदृशवस्तु के पूर्व परिचित आकार का स्मरण स्मृति अलंकार होता है। जब किसी वस्तु को देखकर तत्सदृश वस्तु का निश्चित ज्ञान हो जाता है, तब भ्रान्तिमान अलंकार होता है सन्देह तब होता है, जब निर्णय नहीं हो पाता है कि उक्त वस्तु क्या है ?

ख. स्मरण अलंकार सामान्यरूप से स्पष्ट होता है, क्योंकि इसमें किसी वस्तु को देखकर उसी के जैसी पूर्व में देखी गयी वस्तु का स्मरण होता है, किन्तु भ्रान्ति में किसी वस्तु को देखकर उसके समान वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान होता है, भले ही वह उलटा हो। सन्देह अलंकार में एक ही वस्तु को देखकर भिन्न-भिन्न वस्तुओं के होने कि उलझन होती है, जिसमें निर्णय नहीं हो पाता है, कि वह क्या है ?

ग. समान वस्तुओं के होने पर ही संन्देह हो सकता है एक वस्तु को देखकर तत्सदृश दो वस्तुओं का ज्ञान सन्देह परक है किन्तु स्मृति और भ्रान्तिमान में इस प्रकार की ज्ञानात्मक स्थितियाँ नही होता है।

2. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास - ये दोनों अलंकार भिन्न-भिन्न स्वरूपों वाले अलंकार हैं इनमें निम्निलखित अंतर स्थापित किए जा सकते है -

क. अर्थान्तरन्यास में सामान्य रूप से सम्भाव्य अर्थ के समर्थन के लिए विशेष रूप अर्थान्तर का तथा विशेष रूप सम्भाव्य अर्थ के समर्थन की खातिर सामान्य रूप अर्थान्तर का उपन्यास या उपस्थापन हुआ करता है। किन्तु दृष्टान्त अलंकार में मूलबात यह होती है कि इसमें सामान्य का समर्थन सामान्य द्वारा किया जाता है, तथा विशेष का समर्थन विशेष द्वारा किया जाता है। अतः इन अलंकारों की दो कोटियाँ है।

ख. वाक्यों के बिम्ब-प्रतिबिम्वत्व में दृष्टान्त होता है, जबकि सामान्य और विशेष वाक्यों द्वारा परस्पर समर्थन से अर्थान्तरन्यास होता है।

ग. अर्थान्तरन्यास में सामान्य से विशेष की और विशेष से सामान्य की समर्थन द्वारा पृष्टि होती है, किन्तु दृष्टान्त अलंकार में इस प्रकार का कोई समर्थन नहीं होता है।

घ. दृष्टान्त अलंकार में दो धर्म होते है जो एक समान नहीं होते वे समान प्रतीत होते है, किन्तु अर्थान्तरन्यास में दो धर्मो में दो धर्मो का परस्पर समर्थन दर्शाया जाता है।

ड. अर्थान्तरन्यास का अभिप्राय होता है, कि अनुपपन्न होने के कारण सम्भाव्य किसी दूसरे अर्थ का न्यास (स्थापन) करना किन्तु दृष्टान्त में इस प्रकार का कोई स्थापन नहीं होता

च. अर्थान्तरन्यास अलंकार में समर्थ्य-समर्थक भाव सम्बन्ध होता है, जबकि दृष्टान्त अलंकार में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है।

अभ्यास-प्रश्न-2

निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प चुनकर लिखें-

क. जिन वाक्यों में परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है, उन वाक्यों में अलंकार होता है-

1. प्रतिवस्तूपमा 2. दृष्टान्त
3. स्मृति 4. सन्देह

ख. ' हनूमानब्धिमतरत्' उदाहरण में यह कथन है-

1. अप्रस्तुत 2. प्रस्तुताप्रस्तुत

3. प्रस्तुत 4. इनमें से कोई नहीं

ग. 'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम् ' यह दृष्टान्त अलंकार का है-

1. लक्षण 2. उदाहरण

3. लक्षणोदाहरण 4. न्याय

घ. मम्मट ने अर्थान्तरन्यास अलंकार के भेद माने है-

1. छः 2. पाँच

3. तीन 4. चार

ड. 'द्वयोरर्थयोर्द्विरूपादानं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावः' यह दृष्टान्त की है-

1. परिभाषा 2.उक्ति

3. न्यास 4.उपपादन

च. 'द्वयोरर्थयोर्द्विरूपादानं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावः' यह परिभषा किस ग्रंथ में वर्णित है-

1. काव्यादर्श 2. प्रतापरूद्रयशोभूषण

3. काव्यप्रकाश 3. काव्यालंकार

छः सामान्य से विशेष का समर्थन नहीं होता है-

1. अर्थान्तरन्यास में 2. दृष्टान्त में

3. अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त दोनो 4. कोई नहीं

ज. बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव नहीं होता है-

1. दृष्टान्त में 2. अर्थान्तरन्यास में

3. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास दोनों में

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

क. दृष्टान्त अलंकार में ....धर्म होते है।

ख. अर्थान्तरन्यास अलंकार में............................भाव सम्बन्ध होता है।

ग. अर्थान्तरन्यास में..................................का समर्थन होता है।

घ. दृष्टः सुष्टुः अवलोकितः अन्तः निश्चयौः यस्य स दृष्टान्त।

3. सत्यासत्य निर्धारण करें-

क. दृष्टान्त अलंकार में बिम्ब-प्रतिभाव माना जाता है।

ख. मम्मट अर्थान्तरन्यास के पाँच भेद माने हैं।

ग. अर्थान्तरन्यास अलंकार में मुख्यार्थ से समद्ध का अभिधान किया जाता है।

घ. पण्डितराज दृष्टान्त में दोनों वाक्यों के धर्मो का बिम्बप्रतिबिम्बभाव मानते है।

12.6. सारांश

अलंकार वर्णन की इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि-स्मृति भ्रान्ति एवं सन्देह अलंकारों के स्वरूप किस प्रकार एक दूसरे से पृथक् है। स्मृति अलंकार तत्सदृश वस्तु के स्मरण पर आधारित है, एक वस्तु की देखकर उसी के समान देखी हुयी पूर्व वस्तु का तदाकार निश्चयात्मक ज्ञान भ्रान्ति कहलाता हे। समानता में जब एक वस्तु को देखकर दो वस्तुओं का ज्ञान हो किन्तु यह निर्णय न हो पाये कि कौन सा ज्ञान सत्य है तो उस स्थिति को सन्देह अलंकार की प्रकृति में रखा जाता है। दृष्टान्त मूलतः बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव पर आधारित है, जिस प्रकार योद्धाओं का परस्पर हं ुकार होता है उसी प्रकार उपमेय और उपमान वाक्यों के बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से अलंकृति होती है। अर्थान्तरन्यास अलंकार की स्थिति यह है कि इसमें सामान्य का विद्वोष द्वारा और विशेष का सामान्य का समर्थन सामान्य से ही होता है।

12.7. पारिभाषिक शब्दावली

1. **औपम्याश्रित** - उपमा के आश्रित। जो अलंकार उपमेय उपमान धर्म के आश्रय में रहते हैं उन्हें औपाम्याश्रित कहते हैं।

2. **मल्ल-प्रतिमल्ल** - आलंकारिक भाषा में मल्ल को योद्धा कहते है। उसके प्रतिबिम्ब भाव को बिम्ब-प्रतिबिम्ब कहते हैं।

4. दैव दुर्लिपि - भाग्य को दैव शब्द से व्यक्त किया जाता है। दुर्भाग्य को दुर्लिपि शब्द से अथवा भाग्य के बुरे लेख को दर्लिपि कहा जाता है।

5. सम्भाव्य- ऐसा हो सकता है या ऐसी सम्भावना है।

6. तत् - उसके

7. सदृश - समान

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अ 0 प्र0 1.

1. क.-3

 ख.-1

 ग.-1

 घ.-1

2. क - भ्रान्तिमान ख - उपमा ग.- सादृश्यमूलक घ- सन्देह

 ङ- आचार्य विश्नाथ

 च. - अलंकार सर्वस्व

अ0प्र0-2

1. क-2 ख. 3 ग. 1 घ. 4ङ. 1 च. 2 छ.2 ज.2

2. क . 2 ख- समर्थ्य समर्थक , ग-प्रकृत , घ . दृष्टान्त

3. क - सत्य ख- असत्य ग-सत्य घ-सत्य

12.9. सन्दर्भ पुस्तकें

1. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट , व्याख्याकार डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

2. चन्द्रालोक ,श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी , चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

12.10. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट , व्याख्याकार डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

2 .चन्द्रालोक ,श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी , चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

12.11. निबन्धात्मक प्रश्न

1. उपमा के आश्रित अंलकारों पर निबन्ध लिखिये।

2. स्मृति, भ्रान्ति और सन्देह की तुलनात्मक विवेचना कीजिये।

इकाई 13 . छन्दों के लक्षण एवम् उदाहरण

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 अनुष्टुप, आर्या, इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा, उपजाति
वंशस्थ,स्रग्धरा (लक्षण, गणचिन्ह सहित उदाहरण)
13.4 वसन्ततिलका, शिखरिणी एवं शार्दूलविक्रीडित
मालिनी, भुजंगप्रयात एवं मन्दाक्रान्ता (लक्षण एवं उदाहरण)
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 सहायक एवं उपयोगी पुस्तकें
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

छन्द से सम्बन्धित यह इकाई है। प्रस्तुत इकाई में आप अनुष्टुप, आर्या, इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ,स्रग्धरा बसन्ततिलका, शिखरिणी एवं शार्दूलविक्रीडत मालिनी, भुजंगप्रयात, स्रग्धरा एवं मन्दाक्रान्ता छन्द के लक्षण एवं उदाहरण का अध्ययन करेगें।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता पायेगें कि किस श्लोक में किस छन्द का प्रयोग होता है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता पायेगें कि –

- अनुष्टुप छन्द का क्या लक्षण है।
- उपजाति छन्द किसे कहते हैं।
- किस छन्द में चार यगण होते हैं।
- विविध छन्दों के क्या लक्षण है
- किस प्रकार श्लोक में वर्णित छन्द को पहचाना जा सकता है।

13.3 आर्या, अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ,स्रग्धरा (लक्षण, गणचिन्ह सहित उदाहरण)

1 . आर्या (मात्रावृत्त) - यस्या: प्रथमे पादे द्वादश मात्रा: तथा तृतीयेऽपि
अष्टादशद्वितीये,चतुर्थे च पञ्चदश सार्या ।।

यह आर्या छन्द का लक्षण है। इसका अर्थ है कि जिस छन्द के पहले और तीसरे पाद (चरण) में बारह मात्रायें हों, दूसरे में अट्ठारह तथा चौथे में पन्द्रह मात्रायें हो वह छन्द आर्या कहलाता है। इस प्रकार आर्या के पूर्वार्द्ध में तीस और उत्तरार्द्ध में सत्ताइस मात्रायें होती हैं , कुल 57 मात्रायें होती हैं।

उदाहरण - आगे देखें ....

2 2 1 2 1 1 1 2 = 12 , 2 1 1 2 1 1 1 2 1 2 2 2 = 18

क: पौरवे वसुमतीं शासति, शासितरि दुर्विनीतानाम्।

1 1 2 1 2 1 1 1 2 =12, 2 2 1 1 2 1 1 2 2 =15

अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ॥ शाकुन्तलम् 1.25

अन्य उदाहरण –

कृष्ण: शिशु सुतो में वल्लवकुलटाभिराहृतो न गृहे ।

क्षणमपि वसत्यसाविति जगाद् गोष्ठ्यिां यशोदार्या ॥

2. अनुष्टुप् (वर्णिक छन्द)

इसको लौकिक साहित्य में पद्य तथा श्लोक भी कहते है। इसका लक्षण इस प्रकार है –

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयो: ।

षष्ठं गुरू विजानीयात् एतत्पद्यस्य लक्षणम् ॥

अनुष्टुप के आठ-आठ अक्षर के चार पादों में पाँचवाँ अक्षर चारों पादो में लघु होना चाहिए तथा दूसरे और चौथे पाद का सातवाँ वर्ण भी लघु होना चाहिये एवं छठा अक्षर सभी पादों में गुरू होना चाहिये।

अनुष्टुप छन्द दो प्रकार के हैं

1. अष्टाक्षरवृत्ति: जिसके एक-एक पाद में 8-8 अक्षर हो।

2. एकादशाक्षरा वृत्ति जिसके प्रत्येक पाद में ग्यारह अक्षर हों।

उदाहरण – ।ऽ । ऽ।

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते ।

। ऽ । ऽ।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

चारों पादों के पाँचवें वर्ण म ,ण , न्म तथा ग लघु है तथा दूसरे पाद का च और चौथे पाद का य ये सातवें वर्ण भी लघु हैं और चारों पादों के छठें वर्ण यी, रो, भू तथा री गुरू हैं इसलिए यह अनुष्टुप छन्द का उदाहरण है।

3. इन्द्रवज्रा -

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग: ।

यदि प्रत्येक चरण में दो तगण, जगण और दो गुरू वर्ण क्रमश: हों तो इन्द्रवज्रा छन्द होता है। इस

प्रकार प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण और चारों चरण मिलाकर 44 वर्ण होते हैं।

उदाहरण –

गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा रूष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्त वृष्टौ

ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, । ऽ।,ऽ ऽ, ऽ ऽ । ऽऽ। । ऽ। ऽ ऽ

यो गोकुलं गोपुकलं च सुस्थं चक्रे स नः रक्षतु चक्रपाणि ।।

ऽ ऽ ।,ऽ ऽ।, । ऽ । ऽ ऽ, ऽ ऽ । ऽ ऽ।। ऽ । ऽऽ

4. उपेन्द्रवज्रा - उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।

जिस छन्द के चारो पादों में क्रमपूर्वक जगण, तगण, जगण हो तथा पादों के अन्त में गुरू वर्ण हों उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहते हैं।

उदाहरण –

अथात्मनः शब्द गुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः।

रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच ।।

इस प्रकार इसमें क्रमशः जगण ,तगण, जगण तथा दो गुरू होने से उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

5. उपजाति

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्तिजातिष्विदमेव नाम ।।

जाति पद छन्द का वाचक है, उपजाति का अर्थ है मिश्रित छन्द। यद्यपि लक्षणकारों ने इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्र को ही उपजाति कहा है तथापि सामान्यतः दो छन्दों में बने सभी पद्यों में उपजाति छन्द माना जाता है।

छन्द का उपर्युक्त लक्षण ही उदाहरण है। इसका प्रथम तथा चतुर्थ चरण उपेन्द्रवज्रा है और द्वितीय तथा तृतीय चरण इन्द्रवज्रा है।

अनन्त रोदीरि तलक्ष्म भा जौ

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

पादौय दीयावु पजात यस्ता:

ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ

इत्थंकि लान्यास्व पिमिश्रि ता सु

ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

वदन्ति जातिष्वि दमेव नाम

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽऽ

उदाहरण –

शम प्रधानेषु तपोधनेषु ,गूढ़ं हि दाहात्मकमस्ति तेज: ।

स्पर्शानुकूला अपि चन्द्रकान्ता,स्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ।। शाकुन्तलम् 2.7

शमप्र धानेषु तपोध ने षु

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

गूढ़ंहि दाहात्म कमस्ति ते ज:

ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

6. वंशस्थ

वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ ।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में जगण , तगण , जगण ,रगण हो उसे वंशस्थ छन्द कहते हैं । छन्द का उपर्युक्त लक्षण ही उदाहरण है ।

वदन्ति वंशस्थ विलंज तौजरौ

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ

जगण तगण जगण रगण

उदाहरण – **भवन्ति नम्रास्तरव: फलोद् गमै: र्नवाम्बुभि र्दूरविलम्बिनो घना: ।**

अनुद्धता: सत्पुरूषा: समृद्धिभि: स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।

शाकुन्तलम् 5.12

नवाम्बु भिर्दूर विलम्बि नोघना:

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ

7. स्रग्धरा

एकविंशत्यक्षराजाति: (21 अक्षरों वाला छन्द)

म्रम्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, रगण, भगण, नगण, और अन्त में तीन यगण हो और प्रत्येक सातवें वर्ण पर यति क्रमश: होती है उसे स्रग्धरा छन्द कहते हैं।

म्रम्नैर्या नांत्रये णत्रिमुनियति युतास्र ग्धराकी र्तितेयम्

ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ।।। ।ऽऽ ।ऽ ऽ ।ऽऽ

मगण रगण भगण नगण यगण यगण यगण

लक्षण ही उदाहरण है।

उदाहरण –

या स्रष्टि: स्रष्टुराद्या, वहतिविधिहुतं, याहविर्या च होत्री

ये द्वे कालं विधत्त: श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्यविश्वम्

यामाहु: सर्वबीज प्रकृतिरिति यया प्राणिन: प्राणवन्त:,

प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतुवस्ताभिरष्टाभिरीश: ॥

13.4 वसन्ततिलका, शिखरिणी एवं शार्दूलविक्रीडित,मालिनी, भुजंगप्रयात एवं मन्दाक्रान्ता (लक्षण एवं उदाहरण)

1. बसन्ततिलका

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग: ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश: तगण,भगण और दो जगण तथा दो गुरू हों वहाँ वसन्ततिलका छन्द होता है।

उक्ताव वसन्तति लकात भजाज गौ ग:

ऽऽ। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

तगण भगण जगण जगण गु गु

इस छन्द का लक्षण ही उदाहरण है।

उदाहरण –

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् , पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।

तच्चेतसा स्मरति नूनं मबोधपूर्वं , भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ॥

ऽऽ।	ऽ।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ ऽ
रम्याणि	वीक्ष्यम्	मधुरांश्च	निशम्य	शब्दान्

2. शिखरिणी -

रसैरूद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ॥

जिस छन्द के प्रत्येक पाद(चरण) में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा अन्त में एक लघु एक गुरू हो उसे शिखरिणी छन्द कहते है। इसमें छः तथा ग्यारहवें वर्णो पर यति होती है।

रसैरू	द्रैश्छिन्ना	यमन		सभला	ग:शिख	रिणी
।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।		।।ऽ	ऽ।।	।ऽ
यगण	मगण	नगण	सगण		भगण	ल गु

लक्षण ही उदाहरण है।

उदाहरण –

महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ न कश्चिद्वर्णानामपथमपकुष्टोऽपि भजते।

तथापीदं शस्वन्परिचितविविक्तेन मनसा जनाकीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव ॥

जनाकी	र्णमन्ये	हुतव	हपरी	तंगृह	मिव
।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।।	। ऽ

3. शार्दूलविक्रीडित

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ॥

अथवा

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण तथा गुरू वर्ण हों ,

बारहवें और तदनन्तर सातवें वर्ण पर यति होती है , उसे शार्दूलविक्रीडित छन्द कहते हैं।

सूर्याश्वै	र्यदिम:	सजौस	ततगा:	शार्दूल	विक्रीड	तम्
ऽऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ
मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण	गु

उदाहरण -

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामधः

प्रस्निग्धाः क्वचिदिऽगुंदी फलमिदः सूच्यन्त एवोपलाः।

विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा

-स्तोयाधारपयाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाऽ.किंता

प्रस्निग्धा: क्वचिदिं गुदीफ लमिद: सूच्यन्त एवोप ला:।

ऽऽऽ ।।ऽ ।ऽ। ।।ऽ ऽऽ। ऽऽ। ऽ

4. मालिनी

ननमयययुतेयं मालिनी भौगिलोकैः ।।

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमश: दो नगण, मगण, दो यगण हों तथा आठवें और तदनन्तर सातवें वर्ण के बाद यति हो वह मालिनी छनद कहलाता है।

ननम	यययु	तेयंमा	लिनीभो	गिलोकै:
।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ
नगण	नगण	मगण	यगण	यगण

लक्षण ही उदाहरण है।

उदाहरण -

स्व सुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवं विधैव।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ।।

अनुभ वतिहि मूर्ध्नापा दपस्ती व्रमुष्णम्

।।। ।।। ऽऽऽ ।ऽऽ ।ऽऽ

5. **भुजंगप्रयात- भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः।**

भुजंगप्रयात में चार यगण होते है।

भुजंग प्रयातं चतुर्भि र्यकारै:

ISS ISS ISS ISS

यगण यगण यगण यगण

छन्द का उपुर्यक्त लक्षण ही उदाहरण है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ किस छन्द का लक्षण है ?

(क) मालिनी (ख) आर्या

(ग) अनुष्टुप (घ) वंशस्थ

2. चार यगण किस छन्द में होते हैं ?

(क) मालिनी (ख) अनुष्टुप

(ग) भुजंगप्रयात (घ) आर्या

3.स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ ------------ ग:।

4. ननुमयययुतेयं ——— भोगिलोकै:।

अभ्यास प्रश्न 2

1. आर्या छन्द का लक्षण उदाहरण सहित लिखिये।
2. उपजाति छन्द का लक्षण लिखिये।

मन्दाक्रान्ता - मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भो नतौ ताद् गुरू: चेत।

जिस छन्द के चारों पादों में से प्रत्येक पाद में क्रमश: मगण,भगण,नगण तथा दो तगण और अन्त में दो गुरू हों उसे मन्दाक्रान्ता कहते हैं। इसमें चार, छ: तथा सात अक्षरों पर यति होती है।

उदाहरण-

अध्याक्रांता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये, रक्षायोगादयमपि तप: प्रत्यहं संचिनोति

अस्यापि द्यां स्पृशति वंशिनश्चारणद्वन्द्वगीतिः पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः ॥

अध्याक्रा	न्तावस	तिरमु	नाप्याश्र	मेसर्व	भोग्ये
ऽ ऽ ऽ	ऽ ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ ऽ
मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गु गु

13.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने यह जाना कि वर्णिक और मात्रिक दो प्रकार के छन्द होते हैं। आर्या नामक मात्राछन्द एवं वर्णिक इन्द्रवज्रा,उपेन्द्रवज्रा, अनुष्टुप ,उपजाति आदि विविध छन्दों को उदाहरण के साथ जाना। इसके अध्ययनोपरान्त आप किसी भी पद्य अथवा श्लोक में प्रयुक्त छन्द को समझा सकेगें।

13.6 शब्दावली

जाति . मात्रिक छन्दों को जाति कहा जाता हैं।

वृत्त. वर्णित छन्दों को वृत्त कहा जाता हैं।

पाद . चरण, छनद के चतुर्थांश को पाद अथवा चरण कहा जाता है।

13.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 – 1. घ 2. ग 3. जगौ 4. मालिनी
अभ्यास प्रश्न 2- उत्तर इकाई में देखें।

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अलंकार तथा छन्द , डॉ0 श्रीधर मिश्र एवं डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी ,पी0के0 पब्लिकेशन, गोरखपुर।
2. छन्दोलंकार दीपिका ,श्री भवभूति शर्मा , डॉ0 हरिदत्त शास्त्री , साहित्य निकेतन , कानपुर।

13.8 सहायक एवं उपयोगी पुस्तकें

1. अलंकार तथा छन्द , डॉ0 श्रीधर मिश्र एवं डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी ,पी0के0 पब्लिकेशन, गोरखपुर।

2. छन्दोलंकार दीपिका ,श्री भवभूति शर्मा , डॉ0 हरिदत्त शास्त्री , साहित्य निकेतन , कानपुर।

13.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विविध छन्दों को लक्षण एवं उदाहरण सहित लिखिये।

2. किन्हीं दश श्लोकों को चुनकर लिखिये जिसमें वंशस्थ छन्द हो।